

# वैदिक-यज्ञदर्शन

आचार्य ब्रह्मनाथ शास्त्री

This book belongs to

{ Lushet Kumar Chye  
Sripur Kalyan Singh  
Ad. Labad. (C.P.)  
204296

by



# वैदिक-यज्ञदर्शन

□

लेखक—  
आचार्य वंद्यनाथ शास्त्री

□

मूल्य ६०-०० रु०

प्रकाशक :

पंडिता उर्मिलादेवी शास्त्री

४१ जयेश कालोनी

फत्तेगंज, बड़ौदा-२

सर्वाधिकार लेखकाधीन

मुद्रक—

श्रीमो प्रिन्टर्स, पहाड़ी धीरज,

दिल्ली-६

प्रथमावृत्ति.....

ओ३म्

## लेखक के कुछ शब्द

प्रस्तुत पुस्तक जिसका नाम वैदिक यज्ञदर्शन है मुद्रित एवं प्रकाशित होकर शीघ्र ही पाठकों के हाथ में जाने वाली है। पुस्तक का विषय जहाँ अति जन-योगी है वहाँ इसकी साज-सज्जा और छपाई आदि भी सुन्दर है। पुस्तक को हर प्रकार से सुन्दरतापूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया है जबकि कामज छपाई और जित्दबन्दी आदि का भाव अत्यधिक बढ़ गया है। आजकल के समय में पुस्तक छापना छपाना बड़ा ही कठिन है। फिर भी प्रयत्न किया गया है कि यह अत्युपादेय पुस्तक पाठकों तक पहुंचे और उनकी मानसिक ज्ञानपिपासा को मृप्त करे।

पुस्तक के लिखने में मेरी पण्डिता पत्नी श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री और मेरी पुत्री आयुष्मती शर्मिष्ठा शास्त्री एडवोकेट (जो मूहस्थ होने के बाद जब शमी शास्त्री जलुंग, एडवोकेट के नाम से प्रसिद्ध हैं और दिल्ली रहती हैं) का बहुत बड़ा सहयोग रहा है। मेरे मामाता चि० रोशन जी जलुंग ने अच्छा कामज चुनकर लगाने का यत्न किया। इनके सहयोग की सराहना करना ही अपना कर्तव्य समझता हूँ।

इस यज्ञदर्शन और यह भी वैदिक यज्ञदर्शन के लिखने का विचार मेरे मन में वर्तमान यज्ञों के स्वरूप को देखकर समय-समय पर उठता रहता था। परन्तु यह धारणा और भी अधिक दृढ़ तब बनी जब मैं और मेरे मित्र बम्बई निवासी श्री प० दयाशंकर जी शर्मा आयोपदेशक एक बार अति परिचित अपने घासिक मित्र स्वर्गीय श्री रामप्रकाश जी मेहरा बम्बई से मिलने गये। मेहरा जी का अपने साथ बड़ा ही प्रेम था और यही बात जब उनके परिवार की भी अपने साथ है। मेहरा जी ने भी इस विचार का समर्थन किया और कहा कि वैदिक यज्ञदर्शन लिखा जाना चाहिए और मेरी लेखनी से लिखा जाना चाहिए। पुस्तक तो उनके जीवन काल में ही तैयार हो गई थी। परन्तु आज वह इस पुस्तक को देखने को विद्यमान नहीं है। स्वर्गीय मेहरा जी को यज्ञ से बहुत प्रेम था और उनके परिवार में भी यह भावना दृढ़ है।

श्री रामप्रकाश जी मेहरा का जन्म ३० नवम्बर १९१२ को पंजाब प्रान्त में



हुआ था। उनकी शिक्षा दीक्षा अमृतसर में हुई थी। उन्होंने व्यापार में लगना अपना लक्ष्य बनाया और पंजाब से बम्बई आ गये। भारत में आर्ट सिल्क की छपाई का कार्य सर्वप्रथम १९३२ ईस्वी में उन्होंने ही किया। सन् १९४५ से १९४६ तक वे सिल्क सर्वेण्ट असोसिएशन के मन्त्री, सदस्य आदि पदों पर आसीन रहे। १९४६ में वे इस असोसिएशन के प्रधान बने और उत्तमता से इस पद की गरिमा को निभाया।

स्वर्गीय मेहरा जी मेसर्स सिल्क एण्ड आर्ट सिल्क मिल्स असोसिएशन लिमिटेड तथा मेसर्स सिल्क एण्ड आर्ट सिल्क रिसर्च असोसिएशन लिमिटेड के डायरेक्टर पद पर रहे और १९६६ में सिल्क एण्ड आर्ट सिल्क एसोसिएशन लिमिटेड के चेयरमैन रहे। इतना ही नहीं वे भारत सरकार की मैनमेड फाइवर्स डेवलपमेण्ट कौंसिल के सदस्य भी रहे। श्री मेहरा जी का सम्बन्ध अन्य अनेक सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों से भी था। वे परोपकार के कार्यों में भी अपनी आय का अच्छा खासा भाग व्यय करते रहे। श्री मेहरा जी श्री साहा साजपत राय कालेज ट्रस्ट के प्रबन्धक ट्रस्टी रहे और बड़ी योग्यता तथा तत्परता से कार्य किया।

स्वर्गीय श्री रामप्रकाशजी मेहरा के परिवार में उनकी पत्नी बहन इन्डो-बती जी मेहरा हैं जो स्वयं बहुत ही धार्मिक हैं और परिवार में धार्मिकता को बनाये रखने में स्तम्भ का कार्य करती हैं। श्री मेहरा जी के ज्येष्ठ पुत्र श्री कपिल मेहरा हैं। वे और उनकी पत्नी श्रीमती मोना मेहरा तथा श्री कपिल जी के लघु भ्राता श्री जितेन्द्र मेहरा और इनकी पत्नी श्रीमती पवन मेहरा पिता के चरण चिह्नों पर चलते हुये उनके सभी कार्यों को बड़ी योग्यता और तत्परता से संभाल रहे हैं। भगवान् इन्हें ललित और सफलता दे।

पहले लिखा जा चुका है कि श्री रामप्रकाश जी मेहरा मेरे एक परम मित्र थे। उनकी मैत्री का और कोई प्रतिफल क्या दिया जा सकता है। उनकी स्मृति में उनका फोटो इस पुस्तक के साथ प्रकाशित किया जाता है। इससे बढ़कर किसी मित्र की जबर स्मृति और क्या हो सकती है?

प्रिय पंडित रविशंकर जी जर्मा, बम्बई महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त हैं। महर्षि के सिद्धान्तों में उनकी अटूट धृष्टा है। मेरे प्रति सदा आदर भाव रखते हुए वे मेरे प्रत्येक कार्य में सहानुभूति और सहयोग देते हैं। इस पुस्तक में भी उन्होंने बहुरूपी अपेक्षा पूरी की है। परमेश्वर उन्हें महर्षि के कार्य की पूर्ति में सदा असर रहे, दीर्घायु और वस प्रदान करें - वही मेरी अन्तर्-आर्चना है।

प्रिय पंडित रविशंकर द्विवेदी महर्षि दयानन्द के सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में सगे रहते हैं। मेरे प्रति उनकी भी अटूट धृष्टा है। उनके सहानुभूति और सहयोग भी दृष्टि से ओझल नहीं किए जा सकते हैं। वे सदा महर्षि के कार्य में व्यस्त रहें, यही मेरी कामना है।

आर्य समाज काकड़वाड़ी बम्बई और उसके अधिकारियों, श्री ओम्प्रकाश जी मेहरा बम्बई और उनकी धर्म परायणा पत्नी श्रीमती कमलावती मेहरा, श्री भार० डी० जर्मा वैदिक परमार्थाश्रम बम्बई, प्रिय आदित्य सिंह प्रताप सिंह शूर जी बल्लभदास, श्री के० रामकृष्णप्पा, श्री विजय कुमार, श्री सुरेन्द्र जी गोयल, श्री बलवीर जी गोयल आदि महानुभावों ने सहानुभूति और सहृदयता मेरे प्रति दिखाई उसके लिए मैं आभार प्रकट करता हूँ।

मेसर्स सीनी प्रिण्टर्स, पहाड़ी घीरज, दिल्ली के मालिक श्री चन्द्रमोहन जी शास्त्री ने पुस्तक के मुद्रण, प्रूफ शोधन, साज सज्जा के कार्यों में हृदय से सहयोग दिया तदर्थ धन्यवाद देता हूँ।

मेरी सभी पुस्तकों का पठित, विचारक, अन्वेषक वर्ग और साधारण पाठकों में बड़ा सम्मान हुआ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक का भी वैसा ही समादर होगा।

बंछनाथ शास्त्री

बड़ोदा

८ अगस्त १९७६

श्रावण पूर्णिमा

वैदिक यज्ञदर्शन

प्रीति



स्व० रामप्रकाश मेहरा

जन्म १९१२

मृत्यु २४ जुलाई १९७७



## विषयानुप्रवेश

प्रस्तुत पुस्तक का नाम वैदिक-यज्ञदर्शन है। इसमें वैदिक यज्ञों का दर्शन वर्णित किया गया है—यह नाम से ही विदित हो जाता है। दर्शन यथार्थ ज्ञान है अतः यज्ञों का यथार्थ ज्ञान इस पुस्तक का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। जहाँ यह समझना एक भारी भूल है कि वेदों का मुख्य विषय केवल कर्मकाण्ड और संस्कार आदि हैं वहाँ उससे भी अधिक महती भूल यह है कि वेदों को केवल आद्यपारमविषयक ही समझा जावे। तथा यज्ञ आदि को बाद की कल्पना वा कल्पित क्रियाकलाप ही समझा जावे। वेद जहाँ कर्मकाण्ड के उन्नायक हैं वहाँ ज्ञान-विज्ञान के आकर हैं। वेदों के यज्ञ और कर्मकाण्ड भी ज्ञान-विज्ञान से ओतप्रोत हैं। यह धारणा इस पुस्तक के अध्ययन से परिपुष्ट होगी।

मैंने जहाँ अनेक ग्रन्थ विविध विद्याओं सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों को लेकर आर्यभाषा और आम्लभाषा आदि में लिखे हैं वहाँ इस ग्रन्थ को लिखने की मेरी इच्छा प्रबल हुई जब मैंने कर्मकाण्ड के वर्तमान बिगड़ते रूप को देखा। जो चाहता है वही और जैसा चाहता है मनमाना कर्मकाण्ड बना लेता है। यज्ञ की तो अनेकों विधियाँ लोगों ने अपनी बना रखी हैं। महर्षि की विधि को न समझने वालों ने भी उनके नाम पर अपनी विधियाँ चालू कर रखी हैं। संस्कारविधि का कोई भी संस्कार समझने की क्षमता हो या नहीं परन्तु संस्कार कराने का ठेका ले रखना और महा पुरोहित बन जाना। इन बातों को देखकर वास्तविकता को प्रकट करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की गई। ग्रन्थ के विषय को सरलता से समझाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु विषय को दृष्टि में पूरे सच्चे रूप में रखने के लिए कितना भी यत्न किया जावे कुछ न कुछ गुड़ता तो रहती ही है। इसलिए कि यह एक दर्शन है, रहस्य है। इस तथ्य को यहाँ दृष्टि से ओझल नहीं होने देना चाहिए कि जिस वेदाङ्ग अर्थात् कल्पविज्ञान ने यज्ञादि को बताया है उसी ने दर्शन विद्या के आकर उपाङ्ग का भी उपस्थापन किया है। भारतीय छः दर्शन उपाङ्ग हैं। ये किस अङ्ग से संबद्ध उपाङ्ग है—यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिसका समाधान आवश्यक है। महर्षि दयानन्द के विचार इस प्रश्न का समाधान करते हैं। अर्थात् दर्शनरूपी उपाङ्ग कल्प अङ्ग से सम्बद्ध है। कल्प अङ्ग में जहाँ गृह्य, श्रौत आदि कर्मों, यज्ञ और यज्ञाङ्गों का प्रतिपादन है वहाँ धर्मसूत्र वाले कलांश से दर्शन-विद्या का भी उद्भव होता है। गृह्यसूत्र गृह्यकर्म, श्रौतसूत्र श्रौतकर्म का प्रतिपादन करते हैं।



सुन्दरमूत्र वैज्ञानिक तथ्यों का और वर्णित एवं रेखागणित का प्रतिपादन करते हैं। धर्मसूत्र दार्शनिक दृष्टि का पल्लवन करते हैं।

दर्शन-विद्या के मुख्य केन्द्र बिन्दु ईश्वर, जीव, जगत्, कर्म, कर्मफल, वर्णाश्रम-धर्म, इह लोक, परलोक, भोग और अपवर्ग तथा उसकी सिद्धि आदि हैं। इनमें किसको प्रमाणविद्या अर्थात् ज्ञानशास्त्र और किसको प्रमेय-विद्या अर्थात् सत्ताशास्त्र कहा जावे इसका भी वर्गीकरण किया जाता है। साथ ही नीति-सीमासा भी है—इस पर भी दर्शन ही विचार करता है। इसका वर्णन धर्मसूत्रों में बीज रूप से मिलता है, धर्म सूत्र ही स्मृतियों के भी आधार हैं। त्रिनक्षत्रियों के गृह्य, श्रौत और धर्मसूत्र आदि पाये जाते हैं बहुधा स्मृतियाँ भी इन्हीं की पाई जाती हैं।

### वायुदूषण आदि की समस्या और यज्ञ

वर्तमान समय में जल और वायु के दूषण की समस्याएँ सामने उपस्थित हैं। और साथ ही सबसे बड़ी समस्या बुद्धिदूषण की भी है। यज्ञ से इन सबका ही समाधान हो सकता है। यज्ञ एक ऐसा माध्यम है कि वायु और जल आदि के दूषणों का निवारण इससे हो सकता है। बुद्धिदूषण को भी यह दूर कर सकता है।

प्रश्न यह उठाया जाता है कि प्रतिदिन थोड़ा सा भी और सामग्री द्वारा किया जाने वाला यह यज्ञ वायुदूषण के महान् ओष को कैसे दूर कर सकता है। प्रतिदिन फैक्टरियों का जितना धुआँ वायु को दूषित करता है उसमें यह छोटी सी मात्रा का यज्ञधूम समुद्र में बिन्दु के बराबर अर्थात् न के समान होगा। परन्तु प्रश्न करने वाले यह नहीं जानते कि यज्ञ कितने बड़े बड़े होते हैं। यदि इन बड़े बड़े यज्ञों की स्थान-स्थान पर किया जावे तो यह यज्ञधूम इतना अधिक होगा कि उस दूषक वायु को मिटा सकेगा। फैक्टरियों आदि के द्वारा उत्पादित सहस्र मात्रा की दूषित वायु को यज्ञधूम की एक मात्रा जुड़ कर सकती है।

इसके अतिरिक्त यह भी तो सोचना चाहिए कि संसार में मानव की आबादी कितनी है। यदि दो अरब मनुष्य सभी यह थोड़ा थोड़ा यज्ञ प्रतिदिन करें तो यह कितना बड़ा धूम समूह प्रतिदिन उत्पन्न होगा। यह तो इतना अधिक होगा कि इन प्रदूषणों को भी मिटावेगा और अपना प्रचुर अवशिष्ट प्रभाव आगे के दूषणों को भी दूर करने के लिए जमा रखेगा। वृक्ष, वल्ली, वनस्पति आदि को इतना प्रभावशाली बनावेगा कि बहुत सा वायुदूषण ये वृक्ष आदि ही चूस लेंगे।

बुद्धि के दूषण क्या हैं ?

- १—किसी निश्चय वा निर्णय का समय पर न होना
- २—अच्छे बुरे का, कार्य अकार्य का, परिज्ञान न कर सकना।
- ३—ठीक समझ का न होना।
- ४—स्मृति का समय पर ठीक कार्य न करना।
- ५—व्रत का जीवन में अभाव होना।
- ६—अनुशासन का जीवन न होना। आदि।

यज्ञ एक ऐसा धर्मानुशासन है जो बुद्धि के इन सभी प्रदूषणों को दूर करने की क्षमता रखता है।

### यज्ञ का ज्ञान-विज्ञान से सम्बन्ध कैसे

यज्ञ एक विचार पूर्वक कर्म है—यह तो आपत्ति करने वाला भी स्वीकार करेगा। मानव जिन कर्मों को करता है वे दो प्रकार के होते हैं। एक विचार-पूर्वक और दूसरा स्वतः। एक इच्छापूर्वक और दूसरा अनिच्छा-पूर्वक। स्वास आदि का लेना शरीर की रक्षा करने के लिए आवश्यक कियावे हैं। इनके सम्पादन में हमें इच्छा करने वा विचार करने की आवश्यकता नहीं होती। ये हमारी इच्छा पर निर्भर भी नहीं। जो कियाएँ अच्छा करने और बुरा करने से सम्बन्ध रखती हैं उनमें हमारी इच्छा और विचार का पूरा स्थान है। हम चाहे करें और चाहे न करें। हम अच्छा करें वा बुरा करें। यज्ञ भी एक उत्तम और इच्छापूर्वक किया जाने वाला कर्म है। यह विचार-पूर्वक संपादित किया जाता है। जहाँ विचार है वहाँ ज्ञान और विज्ञान का अभाव हो यह सम्भव नहीं।

यज्ञों में जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें उदात्त विचार पाए जाते हैं। समस्त वेद मन्त्रों से भी यज्ञ किया जा सकता है। सभी मन्त्रों को यदि देखा जावे तो उनमें ज्ञान-विज्ञान का वर्णन मिलेगा ही। इस विषय का इस ग्रन्थ में सम्बद्ध प्रकरण में प्रतिपादन किया गया है। उसे पढ़ने से इस विषय का पूरा परिज्ञान मिलेगा। यहाँ पर विषय के स्पष्टीकरण के लिए कुछ विचार दिए जाते हैं।

नीचे निम्नलिखित वाक्य जो वेदों से उद्धृत किए जाते हैं ध्यान देने योग्य हैं—

१. ऋतस्य देवा अनुवता युः (ऋ० १-६५-२)
२. दण च मे शतं च मे (अथर्व ५-१०-१०)
३. भिनदलस्य परिधीरिव पितः (ऋ० १-५२-५)



४. ईशानहस्तो धुनयो रिशादसो वातान् विद्युतस्तविषेभिरकृत ।

(ऋ० १-६४-५)

५. (मित्रावरुणौ) धियं धृताक्षी साधन्ता । (ऋ० १-२-७)

६. विश्वसि सप्तपुत्रम् (ऋ० १-१६४-१)

इनका अर्थ क्रमशः इस प्रकार है :—

१. विश्व ब्रह्माण्ड की समस्त दिव्य शक्ति सारवत सृष्टि-नियम का अनु-गमन करती है ।

२. हमारे लिए दश संख्या और सप्त संख्या हो ।

३. विद्युत् मेघ को इस प्रकार छिन्न-भिन्न करती है जिस प्रकार त्रिकोण वस्तु की परिधि को काट देता है ।

४. मघदण उत्तर पूर्व दिशा के कोण को बनाते हुए लहर को प्रकट करते हुए और मृत कर्णों को समाप्त करते हुए अपने कार्यकलाप से वायु और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं ।

५. मित्र और वरुण सप्त किये गये और संयुक्त किए गये जल के उत्पन्न करने की क्रिया को संपन्न करते हैं ।

६. सूर्य सात प्रकार की किरणों वाला है ।

इन उपर्युक्त मंत्र खण्डों का अध्ययन यह स्पष्ट बताता है कि ये विज्ञान से गन्धित हैं । यदि इनमें प्रकट किये गये विचार विज्ञान नहीं तो और क्या कहे जा सकते हैं । कोई भी व्यक्ति इनको पढ़कर इसी परिणाम पर पहुँचेगा कि इनमें विज्ञान की शिक्षा दी गई है । यही स्थिति वेद के सभी मन्त्रों की है । उनमें किसी न किसी प्रकार का विज्ञान पाया जाता है ।

यज्ञों के प्रसंग में जो शान्तिकरण के मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें यजुर्वेद का निम्न मन्त्र संगृहीत है :—

शान्ति वातः पचतां शन्नस्तपतु सूर्यः ।

शन्नः कनिकदहृषः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥

यजुः ३६।८

इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार है —

हमारे लिए कल्याणकारी वायु बहे, सूर्य हमारे लिए सुखद रूप में तपे, दिव्य शक्ति वाला मेघ गर्जता हुआ बरसे और हमारे लिए कल्याणकारी हो ।

यहाँ पर मन्त्र में वायु के बहने और सूर्य के तपने की बात कही गई है । इन दोनों का एक दूसरे से पूरा सम्बन्ध है । बिना इनके सहयोग के सृष्टि का

होना व मेघ का बनना हो ही नहीं सकता है । परन्तु मन्त्र में एक तथ्य और भी खोला गया है । वह यह है कि मेघ गर्जता हुआ बरसे, वर्षा हो परन्तु गरजते हुये मेघ से वर्षा हो । यदि मेघ का गर्जना और विद्युत् की चमकाहट आदि न हो तो रोग के कुमियों का विनाश न हो, भूमि और खाद आदि में उपजाऊ शक्ति नहीं आती है । विद्युत् के पतन से प्राणवायु तथा ओजोन अधिक मात्रा में उत्पन्न होकर वायुमण्डल में फैलता है । इस लिए मन्त्र में कहा गया कि बादल बरसे ही नहीं अपितु गरजता हुआ बरसे ।

यज्ञों और कर्मकाण्ड के प्रसंग में जो स्वस्तिवाचन किया जाता है उसमें सामवेद का निम्न मंत्र भी आता है । मंत्र इस प्रकार है :—

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

निहोता ससि बहिषि ॥ साम० १।१

सामवेद उपासना-काण्ड है ! मन्त्र में उपासना की भावना है । परन्तु उपासना के साथ साम का अर्थ समन्वय भी है । सृष्टि में एक समन्वय पाया जाता है । अतः प्रसंग से इस मन्त्र में सृष्टि-रचना से सम्बन्ध रखने वाले एक दार्शनिक एवं वैज्ञानिक तथ्य पर भी प्रकाश डाला गया है । उसे भी आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता है । इस दृष्टि से भी इस मन्त्र का अर्थ होगा । दोनों ही अर्थ नीचे क्रमशः दिये जाते हैं ।

१. हे स्वयं प्रकाश परमेश्वर ! आप हमारे द्वारा प्राप्ति हुये हमारी आत्मा को अपने प्रकाश से प्रकाशित करने हेतु और समस्त उत्तम पदार्थों को प्रदान करने के लिए हमारे अन्दर प्रकाशित हूँजिये । आप हमारे हृदय में सदा विराजमान हैं ।

२. यह अग्नि अच्छी प्रकार जलाना गया भोम्य पदार्थों को देने के लिए तथा एक साथ लगे अपृथक् स्रोतों को पृथक् करने के लिए सली प्रकार से सर्वत्र व्याप्त होता है । यह यज्ञ का होता है और अन्तरिक्ष में व्यापक है ।

वैज्ञानिकी प्रज्ञा के सभी यज्ञ-व्याख्याकार भाषाओं और ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिताओं ने इस रहस्य को समझा और उद्घाटित किया । वे इस तथ्य को प्रकट करते हैं कि पूर्वावस्था में सूर्य और पृथिवी स्रोत एक दूसरे से पृथक् नहीं होते हैं । अग्नि उन्हें पृथक् करता है । अतः तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि यह “अग्न आयाहि वीतये” जो कहा है, वह इन दोनों स्रोतों को पृथक् करने के लिए कहा गया है । यह तथ्य तैत्तिरीय ब्राह्मण ५।१।५ और शतपथ ब्राह्मण १।४।१।२२-२३ में प्रकट किया गया है ।



यही कारण है कि यज्ञ की स्थापना करने हुए ब्राह्मण और शास्त्रा ग्रन्थ इन वैज्ञानिक रहस्यों का भी उद्घाटन करने हैं। यज्ञ स्वयं भी एक वैज्ञानिक रूप है। अतः उनका उद्घाटन का सम्बन्ध है ही। यज्ञ में जो सामग्री जलाई जाती है उसका भी वैज्ञानिक दृष्टि से ही निर्धारित किया गया है। ग्रन्थ में प्रयोग में विचार के साथ यह स्पष्ट कर दिया गया है।

### ऋत और यज्ञ

वेदा में ऋत पद का अनेक अर्थों में प्रयोग है। परन्तु सभी अर्थ किसी न किसी विभाग महत्त्व को लिए हुए हैं। ऋत का अर्थ महत्त्वपूर्ण अर्थ सृष्टि का शासक नियम है। इस नियम पर सृष्टि के प्रसार कायं कर रहा है। यह नियम अर्थ है। इस नियम का प्रवर्तक हान में भगवान् का शासन मात्र। अर्थात् शासक नियम का पालन कहा जाता है। ऋत के अन्वयन में अनेक विचारों प्रकाश में आती हैं। वेद ऋत का अध्ययन है और परमेश्वर प्रदत्त ब्रह्माण्ड का ज्ञान है।

ऋत पद यज्ञ के अर्थ में भी वेद और वैदिक साहित्य में प्रचुर होता है। जहाँ यज्ञ नाम उसका देवता, समन्वय और दान के कारण है वही ऋत उसका नाम। इससे ज्ञात होता है कि यह नियमों, प्रता, अनुशासन, मन्त्र, नीतिमता के सिद्धांतों और सृष्टि नियमों के आधार पर आधारित है। ऋत पद के साथ जो बताने के लिए जगत्पथ आदि ब्राह्मणों में निम्न शब्द पाए जाते हैं :—

१—(मनु १२।१०; ३२।१०) मन्त्र वा ऋतम् । न० ७।३।१।२३ (यजु १२।१४) ऋतमिति मन्त्रमिच्छन्तम् । न० १।१।३।११

२—ऋतमिच्छेत् (मूर्ध्नि) वे मन्त्रम् । ऐ० १।२०

३—अग्निर्वा ऋतम् । ऐ० २।१।१।१२

४—ब्रह्मराज्यं तन्मन्त्रानां विद्वत्मानयागह अहमनुद्या चतुर्वाङ्मानसि मन्त्रं यजुर्वा । ऐ० २।२०

५—मनो वा ऋतम् । ऐ० ३० ३।३६।५

६—ऋत वा ऋतम् । न० १।३।३।१०

७—हीमन्तः शान्तमन्त्रम् । ऐ० ३० ३।३६।५

यहां उन उद्धृत शब्दों में मन्त्र, मन्त्र अग्नि चतुर् मन, ब्रह्म और 'ओम्' अक्षर का उल्लेख किया गया है। यहाँ ऋत के अनेक अर्थ बताए गए हैं सभी का यज्ञ में सम्बन्ध पाया जाता है। यज्ञ की प्रतिष्ठा सत्य पर है। सत्य-

ज्ञान मन्त्रवाणी, मन्त्रमन्त्र, मन्त्रनिष्ठा, मन्त्रनिष्ठा और मन्त्रनिष्ठा के बिना कोई यज्ञ सम्पन्न नहीं हो सकता है। यह मन्त्र ही सत्य है जिससे यज्ञ का पुनर्निर्माण किया जाता है।

अग्नि और सूर्य का यज्ञ के साथ सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण है। अग्नि के बिना यज्ञ होना नहीं और सूर्य के बिना ही अग्नि के द्वारा यज्ञ में सूर्य के द्वारा का प्रयोग कर आकाश में सूर्योत्पत्ति और सामाजिक व्यवस्था में विविध कार्यों का सम्पादन सम्भव है। अग्निस्वयं वाह्य है। इससे बढकर यज्ञ का और कोई उत्तम मान्यता नहीं है। यह सूर्य की जलाकर उनके सूर्य तन्वाज को सभी देवा का पालना देता है।

चतुर्वाङ्मानी उद्घाटनाना नृत्तमभिष्ट है। यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वेदा की प्रधानता ज्ञान के क्षेत्र में दर्शा जाती है। जब किसी वस्तु पर दो व्यक्ति विवाद करने हैं और यह कह दिया जाता है कि यह वस्तु मैं दर्शा जाता है तब विवाद का स्थान नहीं रह जाता है। चतुर्वाङ्मानी मन्त्र प्रत्यक्ष को साधन इन्द्रियों से है। चतुर्वाङ्मानी पर उल्लेख है। प्रत्यक्ष की प्रामाणिकता सिद्ध है। अतः इसी आधार पर प्रमाणमोक्षमा का ज्ञानमोक्षमा का उद्भव होता है।

यज्ञ मन का विचारपूर्वक कार्य है। मन की पवित्रता के लिए भी यह सम्पन्न किया जाता है। मन के ठीक रहने पर ही यह यज्ञ सभी रूपों में संचालित होता है। मन में विकार हो और यह कार्य पर जम नहीं तो यज्ञ में विघ्न उत्पन्न होगा। शांति और मन के मिश्रण में यह यज्ञ चलता है।

ब्रह्म ब्रह्म भगवान का नाम है वही वेदज्ञान का भी ब्रह्म कहा जाता है। ओम् परमेश्वर का वाचक है और यज्ञ में वेदमन्त्र और परमेश्वर देवता है। ये यज्ञ के प्रधान तत्व हैं। इनके ज्ञान के लिए और इनके उद्घाटन की विलक्षण यज्ञ के साथ ही सम्पन्न होती है।

ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञ का अर्थ मन्त्र है यज्ञ का प्रतिपादन करने हुए उनके स्वरूप को स्पष्ट करने हैं। जो भी मन्त्र के अपने व्याख्यान के प्रयोग में लाते हैं उनके सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थ निम्न व्यवस्था का अनुवर्तन करते हैं :—

१ मन्त्र वा अर्थ।

२. धार्मिक निर्माण जो वेद का मन्त्र पर की जाती है।

३. यज्ञ के रूप की समझ करना और निहित विचारों की वैज्ञानिक व्याख्या करना।

- ४ वेद के शब्दों का सारिगमन गद्यांशों में सम्बन्ध स्थापित करना ।  
 ५ यज्ञ पद के व्यापक अर्थ को लेकर यज्ञ की प्रक्रिया का सम्यक् करना तथा यज्ञार्थ को उसी दृष्टि में मानना ।  
 ६ वेद छन्द है, दृढतामय है, मंत्र है, ज्ञान के आकर है—इन तथ्या की पूर्ण दृष्टि करना ।

जब यज्ञ रिये जाने है तब इन बातों का पूरा ध्यान रखा जाता है । इसी लिए मन्त्रों का क्रिया में विनियोग करने में इन सभी बातों का विचार कर विनियोग निर्धारित किया जाता है । विनियोग निर्धारण करने वाले शास्त्र रचय एक विशाद्वय है और विज्ञान है । प्रमाण में इनका भी ग्रन्थ में वर्णन किया गया है ।

यज्ञ के विज्ञान का नीचे लिखा मन्त्र भली प्रकार मान्यता है —

च शक्ति श्रुत्या त्रयो अस्या पादाः सै शानं मानं इत्यमी भवम् ।  
 त्रिधा ब्रह्मा बृषभो रोहिणी महा देवा मर्यादा विवर्णम् ।

श्रु. १.१.८१

अर्थ चारा वेद जिसमें आश्रय है प्राण, सामान्यजन और मान्य 'रमके' तीन सबन है हविर्धान और प्रथम जिसका नाम 'शानं मानं' है मान्यो यदि मान्य छन्द जिसका इत्य के समान है ऐसा यह समस्त यज्ञमन्त्रों का पूरा यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण और कल्प विज्ञानों में तीन प्रकार से बड़ा हुआ मनुष्यों में विचरि पाये हुए है ।

यहाँ पर यज्ञ सम्बन्धी तीन विज्ञान वर्णित हैं । वे हैं मन्त्र कल्प और ब्राह्मण । चारों वेदों के मन्त्र यज्ञ, यज्ञ और साम रूप में तीन प्रकार की यज्ञ यज्ञ परिभाषा में धारण करने हैं । इन्हीं को त्रयो विद्या भी कहा जाता है ।

यहाँ पर विशेष स्मरण रखने योग्य है कि वेद चार हैं तीन नहीं । परन्तु चारों वेदों के मन्त्रों का प्रकार तीन यज्ञ के अन्तर्गत् किया गया है । ये सत्रायें यज्ञ की परिभाषा के अनुसार हैं । यीमाया आदि में इसका वर्णन किया गया है ।

इन तीन यज्ञ मान्य मन्त्रों का मन्त्रशब्द में बोध आता है । कभी कभी अन्य शास्त्रों के वर्णन भी कहीं में 'विनियोग' किये पाये जाते हैं परन्तु वे इनके आधार पर और यज्ञ की धारणावा को सिद्ध करने वाले होते हैं ।

कल्प वह विज्ञान है जिसके द्वारा मन्त्रों का कर्मकाण्ड में मुनिनिष्ठ विनियोग किया जाता है । पूर्व ज्ञान और यज्ञ उपयोग के म विनियोग के लिए जिन बातों का आवश्यक बनाया गया है वह कल्प विज्ञान उनका पूरा-पूरा विचार करके विनियोग का निर्धारण करता है ।

ब्राह्मण पद में यहाँ पर ब्राह्मण मन्त्र नहीं बल्कि उनमें वर्णित मुख्य विज्ञान को लेना चाहिए । ब्राह्मण क्या विज्ञान है ? इसका वर्णन पूर्व कर दिया गया है । जो इसी प्रकरण में पृष्ठ १६ पर अंकित किया गया है । इसके द्वारा यज्ञ के रूप को समझ और कर्म की सम्पन्नता होती है । ज्ञान और यज्ञ की व्याख्या में यज्ञ के इस समुच्चय को बनाना ही यहाँ पर अभिप्रेत था ।

यज्ञ में पशु वा मनुष्य आदि को डालने का कोई विधान नहीं है :

वैदिक यज्ञों में पशु के दान का विधान तो है परन्तु पशुमार कर डालने का कोई विधान नहीं है । यज्ञवेद के २४ वें अध्याय में बहुत से जलचर स्थलचर और नभश्चर पशुओं के नामों का परिमणन किया गया है । साथ ही 'आत्मभते' क्रिया का प्रयोग किया गया है । उवट और महीधर आदि वाध्यकारों के अनुसार यह आवश्यक पशुओं के वर्णन का अध्ययन है । परन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या ये सभी पशु यज्ञ में डाले जायें, यह अभिप्रेत है । क्योंकि यहाँ पर तो सभी प्रकार के पशु पक्षी, मृक, मुर्गे आदि का वर्णन है । उम्मु का भी वर्णन है । क्या ये सभी पशु यज्ञ में डाले जाने के लिए ही हैं । महीधर और उवट का आज्ञा वाममार्ग के मिश्रान्त में आने प्रांत है परन्तु स्पष्ट रूप में मारन वा यज्ञाग्नि में इनके डालने की बात में भी नहीं रहता है ।

'आत्मभते' क्रिया का अर्थ मारना लिया जाता है । यज्ञ साधारण अर्थ है । परन्तु इस साधारण अर्थ में विनियोग का मन्त्र के लिए अपनाप हो जाने और वह क्रिया ही नहीं जावे ऐसा विधान कहीं पर नहीं है । इन धान्य का अर्थ हिमा भी है और गति भी है । सामान्य अर्थ हिमा और विनियोग गति है । पुरुष स्त्री के जरीर का एक अङ्ग 'जघन' कहा जाता है 'जघा' भी नाम है ही । यह इन धान्य में बना है परन्तु यहाँ पर हिमा अर्थ नहीं, गति अर्थ को ही लेकर शब्द का व्याकरण किया जाता है ।

इसी प्रकार 'आत्मभते' का मन्त्र मारना अर्थ होता है वही उगका आ—समने अर्थात् भली प्रकार शान्त करना अर्थ भी होता है । भली प्रकार में प्राप्त करना अर्थात् इनका ज्ञान करना अभिप्रेत है । 'आत्मभते' क्रिया का अर्थ उवट और महीधर ने भी 'निर्मुक्त' किया है । 'आत्मभते' अर्थ यदि



मारना है तो फिर नियुक्ति अर्थात् नियुक्त करना किस प्रकार से हो गया। इसमें यह तो सिद्ध है ही कि आत्मने वा अर्थ मारना मात्र ही नहीं है। उसका अन्वय भी है।

आत्मने का अर्थ भवों प्रकार प्राप्त करना अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना है। इस सम्बन्ध में मैं प्रचार करने में पूर्व आचार्य यास्क का एक मन्त्रार्थ उद्धृत करते पट दिखाना चाहता हूँ कि यहाँ पशुओं का ज्ञान प्राप्त करना ही आशयेत है। यास्क कहते हैं —

अधोगम सावित्र इति पशुसमाप्ताये विज्ञायते ।

म कस्मान् (गुण) सामान्यान् ? इति

अधस्ताद्विज्ञायाम् तयो भवति एतस्मात्सामान्यान्

अधस्तात्सामान्यान् ॥

अर्थात् पशुपक्षी भी काल आदि का ज्ञान करते हैं। इसलिए वे सूर्य वा अन्य अग्नि आदि पदार्थों को पशु कह गये हैं। उनके निमित्त मारे जान वा मज्जादि में हाल ज्ञान के लिए नहीं।

यास्क के वाक्य का अर्थ यह है कि अधोगम नामक पक्षी सविता अर्थात् सूर्य का है। ऐसा ही पशु समाप्ताये में ज्ञान होता है। किस समानता में यह सविता का पशु है। इस समता में कि समय पर नीच की तरफ अन्धकार होता है और ऊपर की तरफ प्रकाश होता है। यह पशु भी नीच के भाग से काला है। अतः पक्षी समता है।

पुनः यास्क 'ह्रस्वाद्' पक्षी को भी सावित्र अर्थात् सूर्यसम्बन्धी पशु कहता है। यह किस समानता में ? इस का उत्तर यह देना है कि चूँकि यह पक्षी काल का ज्ञान करता है अतः यह सविता का पशु है।

इस प्रकार से यास्क ने इस ग्रन्थ को खोल दिया कि यजुर्वेद के २३ वें २४वें अध्याय में जिन पशुओं आदि को जिन देवताओं के सम्बन्धी गुणों वाला कहा गया है उनमें उसी प्रकार का परिज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

अब 'आत्मने' शब्द पर विचार करना चाहिए। यास्क के उद्धरणों से यह सिद्ध हो गया कि इस पशु समाप्ताये में कहे गए पशुओं को जिन पदार्थों से सम्बद्ध कहा गया है उनके गुणों आदि की किसी समानता को लेकर ही ऐसा कहा गया है। तथा उक्त और महाधर के भाष्य के आधार पर यह सिद्ध है कि 'आत्मने' क्रिया का अर्थ कवन मारना नहीं है। वे शब्द 'नियुक्त करना' अर्थ

भी करते हैं। 'आत्मने' का को मध्यम और परमार्थ के लिए नीचे लिखे उद्धरणों पर विचार करना चाहिए —

अथास्य दक्षिणाममधि हृदयमानयते । पारम्पर-मू० २।१।१

वरा वध्वा दक्षिणाममधि हृदयमानयते । पारम्पर १।१।८

अर्थ — आचार्य गुरुकुल में प्रवेश के समय शिष्य के दाहिने कन्ध के साथ हृदय का स्पर्श करता है।

वर वधू के दाहिने कन्ध के साथ हृदय का स्पर्श करता है। वही 'आत्मने' क्रिया का अर्थ 'स्पर्श करना' है।

इसी प्रकार 'आत्मने' मज्जन, अवदान और विजसन पदों के अर्थों के विषय में भी समझना चाहिए। इनका भी अर्थ सर्वत्र 'मारना' मात्र नहीं हुआ करता है। इनके अन्वय भी हैं। कुछ प्रमाण नीचे दिए जाते हैं :—

१—स्त्रीणां प्रेक्षणान्ममृषाणां परम्य च । मनु० २।१०

२—मज्जनं की मनपोषो मज्जनं हृदः ।

अथो भगव्य यच्छालं तेन सज्जयामि वः ॥ अथर्व ३।१०।६५

अर्थ — १—ब्रह्मचारी को विद्यार्थी जीवन में किसी स्त्री का दर्शन स्पर्शन आदि नहीं करना चाहिए।

२—हे मनुष्य ! तुम्हारा मन अच्छे ज्ञान में पूर्ण हो तुम्हारा हृदय ज्ञान के प्रेम में भरपूर हो, मैं तुम्हें ऐश्वर्य की देने वाला तो पश्चिम्भ है उससे भवों प्रकार ज्ञान कराता हूँ। यहाँ पर इन प्रमाणों में 'आत्मने' का अर्थ स्पर्श और मज्जन का अर्थ जानना और जताना है। इसी प्रकार अवदान आदि शब्दों के अर्थ वही हैं जो उनके शाब्दिक में सगत होते हैं। 'अवदान' का अर्थ देना है और 'विजसन' का अर्थ शक्ति करना है।

कुछ लोग कहते हैं कि ऋग्वेद १०।८५।१३ मंत्र में गाय के मारने का स्पष्ट विधान है। परन्तु वे 'गो' का अर्थ केवल गाय और 'हन्' धातु का अर्थ केवल मारना समझते हैं। अन्य प्रयोगों को हठवादिता और हठधर्मों के आवेग में भूल जाते हैं।

यहाँ पर उक्त मंत्र और उसके अर्थ को दिया जाता है। इससे प्रामाण्य दूर होती।

सूर्याया बहुनु पाणान् सविता यमवासुधन् ।

अथामु हन्यन्ते गावोऽर्धुन्यो पर्युद्यते ॥

ऋ. १०।८५।१३

सूर्य का प्रकाश वा शक्ति जो कि प्रातः और साय की उषाओं को उत्पन्न करती है सूर्य में अपना मूल पाती है। मया नक्षत्र अर्थात् माघ मास में जो अर्थात् सूर्य की किरणें मारी जाती हैं अर्थात् वे तिरछी पड़ती हैं। यही पर हनु धानु का जहा मारा जाना अर्थ है वहां उसमें गन्धर्व भी मिला हुआ है। किरणें तिरछी फैलता है—यह आशय है। यहाँ 'हन्त्यन्ते' क्रिया तिरछी होने (Refraction) का प्रकट करती है। यही गाव का अर्थ सूर्य की किरण है। साय के अर्थ का यहाँ पर कोई प्रसंग नहीं है।

कुछ लोग कहते हैं कि गाया का मारा जाना बर्दावाहृत है और प्राचीन बौद्धिक कार्य सामान्य ज्ञात है। यह धारणा मूलतः पूर्ण है और वेद के अर्थ की वेद की भाषा के माध्यम से न समझने के कारण बहुत से विद्वत्जीय और एतद्देशीय विद्वानों ने इसका उद्भाव, विस्तार और प्रचार किया है। वेद में गाया और बंस अर्थात् संपूर्ण गावश के व्याकृत्याम से किमी के भी मारने वा खाने का विधान नहीं है।

वेद में गाया का अर्थात् कहा गया है। अर्थात् का अर्थ अहन्त्यन्ते है अर्थात् गा का मारा जाना वाला नहीं है। इसी प्रकार वेद की अर्थवत्ता (६-६१७) में 'अर्थात्' कहा गया है। अर्थात् पद खोजने से ज्ञात है अतः गाया वा वाचक है और 'अर्थात्' पद पुनर्गत होने से बंस मार बच्छ आदि का वाचक है। ये सभी वेद की दृष्टि में अहन्त्यन्ते है।

प्राध्यापक धर्मनाथ शास्त्री ने जो रवय भी व्याकरण नहीं है 'अर्थात्' पद के व्याकरण का लेकर एक नयी अटकल बाजा लगाई है। वे गाया अटकल की तर्काशरामाण होने से गम्भीर तर्कों की उपमा से परन्तु यह तर्कों के मूल्य से संबंधी ही बिहीन है। न व्याकरण का आधार ठाक है न तर्कों ही।

वे 'अर्थात्' पद में एक लेख में (जिसका उत्तर मैंने अपनी पुस्तक 'वेदिक भाषा बौद्धिक विवेचन' में अग्रो जी में दिया है) लिखते हैं कि "पहले श्रुतिबद्ध काल में गाया नाम गायश को विशेष पद करत थे। परन्तु बाद में जब उन्होंने गाया के आधिक्य पटनू का मूल्य समझा तो उसके मारने पर रोक लगा दी। तथा उन्होंने उस अर्थात् कहना प्रारम्भ कर दिया। क्योंकि 'अर्थात्' पद ही अपना रचना में प्रकट करता है कि वहन गाया हन्त्यन्ते को बाद में अर्थात् वा अहन्त्यन्ते हूँ।"

श्री शास्त्री जी की यह बात गलत है कि श्रुति के समय में आर्य लोग गोमांस खाते थे। प्रथम तो श्रुति का कोई न कल है जैसा वे मानते हैं और

न उसका कला कोई मनुष्य है। चारों वेद एक ही समय सृष्टि के प्रारम्भ में मानव पर भगवान् की प्रेरणा से आए। वेद में वेद में गाया का वर्णन है नहीं है उसके आधिक्य मूल्य का अनुमान भी है।

दूसरी व्याकरण मान्यता वात तो बड़ी ही शङ्कास्पद है। अर्थात् पद में 'अ' नहीं अर्थ में 'अर्थात्' मारने के अर्थ में है। अतः 'पहले मारने का विधान होगा तब तो निषेध किया गया। क्योंकि प्राप्ति होने पर ही निषेध होता है। परन्तु शास्त्री जी के इस आचार को माना जाने तो वेदों में मनुष्य को 'अर्थात्' अनन्त और अमृत कहा गया है। यहाँ भी फिर इनका तर्क लागू किया जाए तो भगवान् को पहले मारी होता रहा होगा, उसके अनन्त भी होता रहा होगा और वह मरना भी होगा तब उसे बाद में अर्थात्, अनन्त और अमृत कहा गया होगा। यह ऐसे मानवप्रकृत्यपने की बात है जो उनके अतिरिक्त और कोई समझदार व्यक्ति कर नहीं सकता है।

वेद में गाया के मारने का सर्वथा निषेध है और जो गाया को मारता है उसके लिए दण्ड भी बतला दिया गया है। नीचे कुछ प्रमाण उनके अर्थों के साथ दिए जाते हैं :—

१—मा गामनागामदिति अक्षिप्तः । ऋ० १०।१०।१।१५

२—विष गा यातुगाना भग्नामावश्चन्ताम् ।

अदितये दुरेवा परेणान्दव इव मविता उदान् ॥

अथर्व० ८।३।१६

३—अन्तकाय मोचानम् । यजु० ३

४—य वीरयेण क्रिया ममकर्मो अर्थात् पशुना यातुधान । यो अर्थात् मरति और मरत वेदा ग्रीवाणि हरमापि वध ॥

ऋ० १०।८३।१६

५—यदि तो गा हनि यदि अथ यदि पुरुषम् । तत्वा सीमेन विद्यामो यथा नोमो अवीरहा ॥

अथर्व० १।१।३४

भाषां —

१—गाया निरपराध पशु है उसे नहीं मारना चाहिये।

२—जो लोग गाया को विष आदि देकर मारते हैं उन्हें राजा देव से निकाल दे।

३—गाया मारने वाले की अन्तक अर्थात् मृत्यु के देव को दे देना चाहिए।



४—बो मनुष्य के मांस से भाग सता है, जो बोहे के मांस का भागी है और जो गाय के दुध को हर लेता है वह राजस है और हे राजन् ! तू उसके खिर को काट द।

५—हे मनुष्य ! यदि तू हमारे लिए गाय को मारने हो, यदि बोहे को और यदि मनुष्य को तो तुम्हें मांस की गाली न मारूँगा जिससे तू फिर ऐसा पाप न कर सके।

इन उपयुक्त प्रमाणों में जहाँ गाय के मारने का निषेध है वहाँ मारने वाले को सख्त दण्ड का भी विधान किया गया है। इसके अतिरिक्त वद में पशु के मांस के खाने का कोई विधान नहीं है। केवल उसके दुग्ध पीने का ही विधान है।

पयो घेनुना रसमायधाना बभयो य इत्यथ । अथर्व० ४।२७।३

पय पशूना रसमायधाना बृहस्पति साविता म नियच्छान् ।

अथर्व० १६।२१।५

इन उपयुक्त मंत्रों में ओषधी का रस और पशु का केवल दूध ही खाया माना गया है। मांस नहीं।

छाब्द ८।२।११ में क्रमशः 'उशन्नाय' और 'वमान्नाय' पद पाये हैं। इन पर ताग आपत्ति उठाने है। परन्तु इनमें भी कोई ऐसी बात नहीं है। इन दोनों पदों का अर्थ क्रमशः पृतमिक्त अन्न और पृत में पकाया हुआ अन्न है। वे दोनों प्रकार के अन्न खाये गये जाते हैं। न तो उक्षा किसी प्रकार का अन्न है और न वसा ही अन्न है। अतः यहाँ पर विज्ञापार्थ का मानकर अर्थ करना चाहिए।

दूध के तिनक का सहारा - इस उक्ति के अनुसार कुछ लोग यह कहते हैं कि वद में अतीव सख्तता में गोमांस परस्मन का विधान है। परन्तु ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करने में वे समर्थ नहीं। श्री राजा राज-प्रसाद मिश्र, आप्ट, वैदिक एज तथा अन्य पुस्तकों का आश्रय लेकर वे इस प्रकार की बात करते हैं। परन्तु न इन उद्धृतवत्ताओं की ही और न उनका आश्रय लेने वाला को ही वेद का कोई पौरजान है। एक दूसरे के पीछे चलते हुये अपनी भ्रातृता की निष्ठान्त बनाकर जामानस को दूषित करते रहते हैं। इनका प्रधान अस्त्र आचार्य पाणिनि का एक सूत्र (दासगोधनी सप्रदान० अ० ३।४।७३) है। य इस सूत्र का अर्थ तो समझन नहीं केवल 'गोघ्न' पद को लेकर अपनी कल्पना खड़ी करते हैं। वे कहते हैं कि पाणिनि के अनुसार 'गोघ्न'

वह है जिसके लिए गो अर्थात् गाय मारी जाने। तो प्रत्यय अर्थात् इति गोघ्न-यच्छा। इस सूत्र में आये गोघ्न पद का इस प्रकार की व्याख्या किया जा सकता है। १. गाय दी जाने जिसके लिए यह गोघ्न है क्योंकि इन पशु का अर्थ गति है और गति का ज्ञान गमन प्रार्थना और मोक्ष अर्थ है, २. 'गो' अर्थात् गोपी दी जाना है जिसके लिए उसका नाम गोघ्न है।

परन्तु हम यहाँ पर गोघ्न अतिथि है इसा राज का संबंध निरूपण कर देना आवश्यक समझते हैं। प्रश्न यहाँ पर यह होता है कि पाणिनि के सूत्र में तो गोघ्न शब्द है। इसका अर्थ अतिथि है यह कहा न आया। पाणिनि ने तो गोघ्न को अतिथि अर्थात् सूत्रों में बताया नहीं है, 'यत्र उह अतिथि अर्थ कहा न आया। कहना पड़ेगा कि इस सूत्र पर मित्रान्न श्रीमूर्ति आदि के रचयिताओं ने अपने ग्रन्थ में गोघ्न को अतिथि माना है। यत्र उनको मालती है। 'गोघ्न' का अर्थ अतिथि है—यह पाणिनि को कम मन्त्र्य बना दिया। पाणिनि का आशय ब्रह्मचारी भी हो सकता है जिसे गोपी दी जाती है आचार्य के द्वारा। जिसको गाय दी जाने ऐसे राजा या वर का वाङ्मन्य आदि को भी गोघ्न कहा जा सकता है। पाणिनि का आशय इन पशु के प्रयोग में मारने मान का है यह और जिसके लिए गो मारी जावे वह अतीव है य दोनों बाँटें किम प्रकार और किम आश्रय पर मान ली गई। कौन सा ज्ञान का मन्दबुद्धि मिला कि जिसमें पाणिनि यही मानते हैं—ऐसा स्पष्ट हो गया ?

यहाँ पर 'गोघ्न' पद का अर्थ वाण्डाल वा दुष्ट राक्षस जिसके लिए गो मारी जाती है—यह क्यों न माना जावे ?

### गोघ्न पद पर विचार

यहाँ पर 'गोघ्न' पद का स्पष्टीकरण करना आवश्यक प्रतीत होता है। इससे पूर्व की पंक्तियों में इसके अनेक अर्थ दे दिए गए हैं और यत्र भी बना दिया गया है कि 'हन्' धातु का हिमायक मानकर 'गोघ्न' पद का अतीव अर्थ पाणिनि को अनिष्ट हो—ऐसा कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है।

'गोघ्न' पद का व्याकरण दो प्रकार से किया जा सकता है और पाणिनि व्याकरण से दोनों ही प्रकार का बनना। वे दोनों तरीके इस प्रकार हैं—

१. गो हन्ति इति गोघ्न अर्थात् जो गाय को मारता है उसे गोघ्न कहा जाता है।

२. गोहन्-यते इति गोघ्न, अर्थात् गाय इसके लिए मारी जाती है अतः यह गोघ्न है।

इस प्रकार गोघ्न के दो अर्थ हुये—गाय को मारने वाला और गाय जिसके लिए मारी जाती है। श्रुते १।११।१० में गोघ्न पद इस प्रथम अर्थ में अर्थात् गाय को मारने वाले के अर्थ में प्रयुक्त है। मत्र निम्न प्रकार है।—

आरे ने गोघ्नमुत्त पुरुषघ्न क्षयहीर मुत्तमस्मे ने अम्नु।  
महा च नी अग्नि च बृहि देवाणा न जर्म यच्छ द्विवहां ॥

श्रु० १।११।१०

अर्थ—है जघ्नों के नाश करने वाले राजन्। हमसे अपने उस कोष को दूर रखे जिसमें आप गाय और मनुष्य को मारने वाले को मारते हैं। हमें मुक्त करे, हमारी रक्षा करे और परलोक को सुखमय करे।

यहां पर गाय का मारने वालों को दण्डार्थ कहा गया है। दण्ड भी थोड़ा बा छोटा नहीं। मार देने तक दण्ड है परन्तु किसके लिए? उसके लिए जो गाय का प्रत्यक्ष मारने वाला है। क्योंकि वह गाय का स्वयं मारता है। और मारने का किया वा अपराध का वह स्वयं ही कर्त्ता है। मत्र में यह तो सिद्ध है कि गाय का स्वयं मारने वाला दण्डनीय है परन्तु जिसके लिए गाय मारी जाती है वह अपराधी है वा नहीं

पाणिनि ने "दामगोघ्नो मयदान" मंत्र लिख कर और गोघ्न पद को कर्त्ता अर्थ के अनिश्चित मयदान अर्थ में बनाकर इसका समाधान कर दिया। पाणिनि यह कहना चाहते हैं कि जो गाय का मारता है वह वा गोघ्न है ही। परन्तु जिसके लिए गाय मारी जाती है वह भी गोघ्न है। यहाँ पर गाय मारने वाला वा गोघ्न है ही। गाय जिसके लिए मारी जाती है वह भी गोघ्न है। यह गोघ्न अनिश्चित नहीं, चाण्डाल, पापी, राक्षस है। अतिथि, वर, राजा, ब्राह्मण आदि अर्थ तो इस गोघ्न पद का तब हागा जब हन् धातु का अर्थ गति हागा।

एक बात और भी सोचने की है। हाथ में जो हाथ की रक्षाई इस्तेमाल धारण किया जाता है वह हस्तक कहा जाता है। क्या यहाँ पर भी हन् धातु का मारना अर्थ लेकर समाधान बँटाई जा सकेगी? कभी नहीं।

पाणिनि ने अथाध्यायो (३।३।८५) उपघ्न आश्रये मूत्र में उपघ्न पद सिद्ध किया है जिसका अर्थ रक्षा वा पट्ट का स्थान। यहाँ हन् को बिना कर्मव्यय मान यह उपघ्न पद आश्रय अर्थ में बनाया ही नहीं जा सकेगा।

इस प्रकार म वष्, पक्षी आदि को यज्ञ में डालने का कोई भी विधान वेद में नहीं है। लोगो ने अपनी अपनी कल्पनाएँ बना रखी हैं जिनका शास्त्र

में कोई सम्बन्ध नहीं। इस पुस्तक में पुरोहित आदि के हन्-वर्ग में अधिक व्याप्ति-करण कर दिया गया है।

जो नाम वष्, पक्षी आदि के पाये जाते हैं उन्हीं नामों की श्रापधियाँ आदि और अन्न आदि पदार्थ भी पाये जाते हैं। उन सबका जहाँ पर वैसा सम्बन्ध हो वैसा ही अर्थ लेकर चलना चाहिए।

### विश्वकर्मा का सर्वमेघ क्या है?

इस विषय पर विचार करने के प्रथम में ध्यान देने की बात यह है कि यह सर्वमेघ क्या है। वैदिक काव्य के अनुसार 'मेघ' यज्ञ का नाम है। याम्य विश्वट्ट ३।३।१२ में ऐसा लिखते हैं।

सर्व पद का अर्थ करने हुए ब्राह्मण ग्रन्थों में निम्न वाक्य पाये जाते हैं —

यद्वै विश्व तन्मवेम् । श्रु० ३।१।२।११

सर्व वै तद्यन्महसम् । श्रु० १।१।३, २५।१४

सर्व वै महसम् । श्रु० ४।१।१।१५

प्रजापतिरेव सर्वम् । श्रु० ६।१५

विश्व वा ब्रह्माण्ड जो अपने समस्त उपस्थित है उस वैदिक मन्त्रध्वनी में महस और मत्र का नाम से भी पुकारा जाता है। प्रजापति परमेश्वर भी सर्व है। अतः सर्वमेघ वह यज्ञ है। जो प्रजापति परमेश्वर के द्वारा किया है और वह सर्व अर्थात् विश्व की रचना और सृष्टि में सम्बन्ध रखता है। इस लिये यह सर्वमेघ कहा जाता है।

यह सर्वमेघ किसके द्वारा किया जा रहा है? इस पर निरुक्तशास्त्र के प्रणेता याम्य ने लिखा है कि —

तत्रेतिहाममाचक्षते । विश्वकर्मा ह भूवित सर्वमेघे सर्वानि भूतानि जुह्वा-  
उचकार न आत्मानमपि अन्तर्वा जुह्वोचकार ।

अर्थात्—इस वाक्य में आत्मविश्व एक नित्य इतिहास की कल्पना करने हैं। वह यह कि भुवन में आपक वा भुवन के पालक विश्वकर्मा विश्व के इतने और प्रलय करने वाले परमेश्वर ने सर्वमेघ अर्थात् विश्व के सृष्टि काल में सब भूतों को समाप्त कर दिया और अन्त में आत्मा अर्थात् अपने सामर्थ्यभूत प्रकृत्यात्मक सूक्ष्म तारों और नित्य आत्मा का भी प्रलय की गाढ़ में रख दिया। अर्थात् जो भी जिनके भोग बाकी है वे अपने कर्मों महित प्रलय काल में प्रकृति में विद्यमान रहते हैं।



यहाँ पर इतिहास की कल्पना करने हुए 'सृष्टाञ्जनकार' किया का प्रयोग किया गया है। परमात्मन्-जी मनुष्य में भी जगत् किया प्रयुक्त हुई है। यह दोनों ही किया है। जगत् के रूप है। जगत् के दो अर्थ हैं ज्ञान और अज्ञान। परमेश्वर जीवात्मा के समान की रचना का जगत् विश्व की रचना है। परमात्मन् यह जगत् का ज्ञान है। जगत् परमात्मन् में समस्त विश्व का अज्ञान कर जाता है अर्थात् जा जाता है। अथवा कारणरूप में ग्रहण कर जाता है। अज्ञान पद का अर्थ भक्षण और ग्रहण दाता है। इस प्रकार 'सृष्टाञ्जनकार' वा 'जगत्' किया की साधकता सिद्ध है। परमेश्वर के द्वारा सृष्टि करने की दृष्टि वा दृक्षण वा 'निकीर्षा' कहा जाता है। ग्रहण करने अर्थात् प्रलय करने की दृष्टि को 'जिह्वायी' कहा जाता है। जगत् की रचना और प्रलय विश्वमा की सर्वमध्य है।

विश्वकर्म पद के निम्नलिखित अर्थ पाये जाते हैं —

वाग् वै विश्वकर्मा । ञ० ८।१।२।६

प्रजापति विश्वकर्मा । ञ० ७।८।२।५

सम्बन्धो विश्वकर्मा । ञ० ८।०।२

अमो वै विश्वकर्मा यो जगो (गुण) तपति ।

कोषो० ५।५, गो० ७० १।२।१

जगो यो विश्वकर्मा । ञ० ३।५।१।३

विश्वकर्मायमग्नि । ञ० ६।०।२।२

अग्नौ वै वाग्विश्वकर्मा । ञ० ८।१।१।३

इन उपर्युक्त उद्धरणों में वाक्, प्रजापति, सम्बन्ध, गुण, अग्नि और वायु का विश्वकर्मा कहा गया है। ये सभी जगत् के लिए आवश्यक हैं अतः सर्वमध्य इनमें सम्बन्ध है।

यह इतिहास इतिहास विषय आह्वान है जो विषय को समझने के लिए गढ़ा जाता है। यह आह्वान-विषय आह्वान का इतिहास नहीं। वेद में अस्तित्व इतिहास जो आह्वान-विषयों में सम्बन्ध होता है, नहीं है। इस विषय का विवेचन मैंने अपने पुस्तक 'वेद-इतिहास-संश्लेष' में कर दिया है। विस्तार में कहा पर दृष्टता चाहिए। इस प्रकार यह विश्वकर्मा परमेश्वर की जगत् रचना का पक्ष बताया गया। यही सर्वमध्य है।

### पुरुषमेव क्या है ?

वेद में पुरुष को पञ्च में शामिल करने का वही पर कोई विधान नहीं है। सोमह संस्कारों में अन्तर्गृहीत संस्कार अन्तिम माना जाता है। यह संस्कार मृत शरीर

का होता है। कर्मकाण्ड की दृष्टि में हमी का दूसरा नाम नरमेव पुरुषमेव, नरयाग और पुरुषयाग है। इसके अतिरिक्त कर्मकाण्ड की दृष्टि में और कोई पुरुषमेव नहीं है।

वैज्ञानिक और दार्शनिक दृष्टि को लेकर पुरुष और पुरुषमेव की कल्पना का बड़ा ही प्राक्ल रूप वेदों में पाया जाता है। नरयाग आदि आह्वानों में निम्न वर्णन इस विषय में मिलते हैं —

१—इमे वै लोका पुरुषमेव ञ० १३।६।१।६

२—सर्वे पुरुषमेव । ञ० १३।६।१।६

३—सः (प्रजापति) पुरुषमेव नृत्वा विराट् इति नामाधत्त । ञ० ५।८

इन उपर्युक्त संदर्भों का भाव यह है कि ये समस्त लोक ही पुरुषमेव हैं, सर्वे विश्व ही पुरुषमेव हैं और प्रजापति परमेश्वर ने पुरुषमेव के द्वारा विराट् (मर्मपट्टि जगत्) के नाम को धारण किया।

इसमें प्रकट होता है कि पुरुष = परमेश्वर, पुरुष = जीवात्मा और पुरुष = प्रकृतिभूत कारण में जगत् की उत्पत्ति की पूरी प्रक्रिया ही पुरुषमेव है। पुरुष अर्थ का अर्थ है पुरिषो वा पुरी में जयन करने वाला, व्यापक होकर विद्यमान रहने वाला और कार्य मात्र में उपादान रूप में विद्यमान रहने वाला पुरुष है। जयन पद में ये सभी भाव स्पष्ट रूप में आ जाते हैं।

पुरुष का एक कार्य पूरित करना है। परमेश्वर करी पुरुष ही सभी पदार्थों में व्यापक है जगत् को पूर्ण करता है। उसका यह जगत् आह्वानसमय है और पूर्ण है। जीवात्मा सभी पुरुष शरीर में स्थित है वह शरीर में ज्ञान ज्ञान क्षण आदि को भरता है। प्रकृति-रूपात्मक पुरुष अपने प्रत्येक कार्य में उपादान रूप में विद्यमान रहकर उसको पूरित करता है। इस प्रकार यह पुरुष की मर्मपट्टि रूप में साधारण व्याख्या हुई। वस्तुतः परिभाषा के रूप में पुरुष पद में परमात्मा और जीवात्मा का ही ग्रहण किया जाता है। ये पुरुषमेव के मुख्य अर्थ हैं। इनके बिना कबल प्रकृति सभी कारण में जगत् की पहली का समाधान नहीं हो सकता है। सृष्टि-प्रक्रिया के समस्त प्रश्नों का समाधान परमेश्वर में निहित है। समस्त कठिनाइयों का निराकरण करने के लिए ही वेद के कुछ मन्त्रों के समूह की पुरुषसूक्त मन्त्रा रची गई है। यह चारों वेदों में पाया जाता है।

### पुरुषसूक्त क्या है ? और क्यों ?

पुरुषसूक्त के मन्त्रों में पुरुष का वर्णन है। परन्तु पुरुषसूक्त का नहीं। पुरुषसूक्त का नाम बाद में प्राप्त किया गया। यह न वेद में ही सचता है

और न ही हो। वेद के इन मन्त्रों में तो पुरुष का वर्णन है। पुरुष-सम्बन्धी सूक्त को पुरुष सूक्त लोगों ने कहा। क्योंकि इसमें पुरुष का प्रधानतया वर्णन है अतः यह पुरुष सूक्त नाम से प्रसिद्ध किया गया है। सूक्त पद का अर्थ है उत्तमकथन। पुरुष-सूक्त का अर्थ है पुरुषसम्बन्धी उत्तम कथन वा प्रतिपादन।

पुरुष-सूक्त में सृष्टि-प्रक्रिया आदि विषयों का वर्णन यज्ञ मुख से कहा गया है। सृष्टि-रचना, करोर-रचना और स्थिति, समाज-रचना आदि वस्तुतः यज्ञ है। इनका पुरुषसूक्त में विशेष वर्णन है। इस पुस्तक के पृष्ठ १७ और १८ पर एक सन्धि से वर्णन इसका कर दिया गया है।

पुरुष सूक्त का जो यज्ञ वर्णित है उसके देखने से निम्न बातें समझ आती हैं —

१—जगत के कारण (ईश्वर, जीव, प्रकृति) पुरुष उय और प्रकृति तथा जगत् एवं उसकी रचना।

२—जन्म और मरीर अर्थात् जन्माण्ड और पिण्ड की मयता।

३—समाज, परिवार, राष्ट्र आदि की भावना।

४—समाज के प्रति उसी प्रकार मन्त्रेणता वर्तनी पड़ती है जिस प्रकार अपने करोर के अङ्गों के प्रति वर्तनी पड़ती है।

५—समाज में कर्त्तव्य और अधिकार साध चलते हैं और ये नीतिमत्ता के सिद्धान्तों के बिना मयत नही जा सकते।

६—सृष्टि की रचना ईश्वर, जीव और प्रकृति के बिना हो नहीं सकती है।

७—समाज की धारणा, कर्त्तव्य और अधिकार की भावना, जीवन के अन्तिम लक्ष्य का विचार तथा भौतिक वस्तुओं का मूल्यांकन जीव के बिना नहीं हो सकता है।

८—ज्ञान, ज्ञाना और ज्ञेय के बिना समस्या नहीं मूल्य सकती है।

इन सभी का सर्गाकारण इस पुरुषसूक्त के यज्ञ में किया गया है।

सृष्टि रचना को यज्ञ कहकर कई विशेष बातों का संकेत कर दिया है। यज्ञ में न्यूनता नहीं की जाती है। यज्ञ होने से विश्व में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं है। इस पुरुषसूक्त में सृष्टि रचना रूपी यज्ञ का वर्णन कर निम्न बातों का निराकरण कर दिया है —

१—विश्व का कारण केवल एक मात्र वह वा अचेतन नहीं है।

२—विश्व का कारण केवल एक मात्र चेतन नहीं है।

३—विश्व मिथ्या वा भ्रम नहीं है।

४—विश्व का उद्भव वस्तु वा अभाव में नहीं है।

५—विश्व का कोई ऐसा अनिवर्त्तनीयकारण नहीं है जिसे न मान न जबाब, न प्रमाण, न प्रमय, न नन्व, न अनन्व—कहा जा सके। बल्कि उसे निरपेक्ष मात्र कहा जावे। ऐसा कोई निरपेक्ष मान्य नहीं है।

६—जगत् भोग और अपवर्ग के उद्देश्य को लिए हुए है।

७—परमनिराश्वर्य भगवान् के विषय में ज्ञान के लिए सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, ज्ञान का प्रकाश और समन्वय की योजना पर विचार आवश्यक है।

८—जगत् की रचना न आकस्मिक है और न ज्ञान-विकास, जीवन-विकास और सृष्टि-विकास नाम का कोई विकास सम्भव है। जगत् में कर्त्तव्य उद्देश्य, एवम और समजसता पाये जाते हैं।

## यज्ञ और मोमांसाविज्ञान

यज्ञों का ससार वेद के अनुसार बहुत ही विस्तृत है। वैदिक यज्ञों के विस्तार की कल्प सूत्रों, ब्राह्मण ग्रंथों में दिखलाई गया है। इन यज्ञों के बाल्म-विक रहस्य, सगति, अर्थ, समन्वयन, नियमानुसार मपादन, विविध अङ्गों पर विचार आदि को प्रकट करने के लिए जैमिनि ने पूज्यमीमामा (जिसे भीमामा नाम से भी स्मरण किया जाता है), की रचना की। यह छ दशंता में एक वर्णन है। इसमें यज्ञविषयक दशंता का पल्लवन किया गया है।

यज्ञ के विषय में एक सबसे बड़ी बात यह उपस्थित होती है कि उसकी प्रामाणिकता क्या है? यज्ञ वस्तुतः धर्म है। इस धर्म का प्रामाणिकरण वेद से होता है। यही कारण है कि धर्म की परीक्षा के प्रकरण का उठाकर भीमामा दशंता में वेद की प्रामाणिकता और धर्म विषय में उसका आदेश परम प्रमाण है यह सिद्ध किया गया है। जैमिनि अपने गुरु व्यास के निवेदन का दिखाने हुए वेद के शब्दों का सृष्टि के पदार्थों के माप जोताने का माध-प्र मानन है। जिसका तात्पर्य है कि वेदशब्दपूर्विका यह सृष्टि है।

जैमिनि ने इस विषय में यह एक अकाङ्क्षक दावा है कि सृष्टि के जिन पदार्थों का वर्णन वेद में जैसा किया गया है व समान में ही उसी प्रकार के पाये जाते हैं। उनमें किसी प्रकार का काइ संशय नहीं है। अतः वेद को परम

प्रमाणित है। ऐसा होने पर वेद के उपदेश होने से धर्म का प्रामाण्य सिद्ध है। अतः वेद में कहे गए यज्ञ का प्रामाणिकत्व स्वयं सिद्ध है। वेद स्वतः प्रमाण है अन्य शास्त्र पर न प्रमाण है।

यज्ञ क्या है? और याम या होम क्या है? इसकी पूर्ण परिभाषा भी मीमामादर्शन में की गई है।

यज्ञ को धर्म कहकर प्रतिपादन करना ही यह बताता है कि इन यज्ञों का एक नैतिक मूल्य भी है। इस नैतिक मूल्य का भी गभीरता में मीमामादर्शन में विचार किया गया है। किसी भी इच्छापूर्वक दृष्टि किया का क्या नैतिक मूल्य है और माय ही वह किस प्रकार अज्ञान को पैदा करती है, उसका पता होता है—आदि वाता का विचार मीमामादर्शन में उठाया गया है।

महर्षि कणाद ने भी वैज्ञानिक दर्शन का प्रारम्भ धर्म की भावना में किया है। परन्तु वैज्ञानिक का यह वर्णन 'पदार्थ-धर्म' के प्रसंग में किया गया है। इसी लिए भाष्यकार प्रशस्तपाद ने इसे 'पदार्थ-धर्ममय' कहकर नास्तिक कहा है। जैमिनि ने मुख्य रूप से यज्ञधर्म का विचार किया है।

### एक रहस्य

इस प्रसंग में यह जान रहे कि जैमिनि और कणाद दोनों ही वेद की प्रमाणता व विषय में वर्तमान जगत का हवाला देते हैं। उनका ऐसा करना यह सिद्ध करता है कि वे दोनों ही जगत को सत्य मानते हैं और जगत के भेद को स्वीकार करते हैं। ज्ञान का भेद बिना जगत् का भेद माने किसी भी प्रकार सम्भव नहीं। जगत की भिन्नता को स्वीकार करने पर भाषावादी, सून्यावादी और निश्चिन्तावादी आदि सभी उठ जाते हैं।

मीमामादर्शन में यह भी बताया गया है कि विविध वाक्यों की अर्थमगति किस प्रकार लगाई जावे। यह एक अप्रत्यक्ष उपादेय विषय है। यह सभी विद्या के भेदा में उपयोगी है। मीमांसा विज्ञान पर भी इस पुस्तक में इसके प्रकरण में प्रकाश डाला गया है।

### - एक बहुत बड़ा धर्म

यह दो और बार की भीति सिद्ध है कि यज्ञ का उपदेश वेद करते हैं। वेद सभी दर्शनवादों के अनुसार निष्पत्ति है और ईश्वरीय ज्ञान है। यह एक सत्य है कि जिस वाता नहीं जा सकता है। सभी जार्ज दर्शन वेद के सामने नष्ट-

मस्तक हैं। वे वेद की नित्यता और उसके ईश्वरीय ज्ञान होने का पद पद बतलाने करते हैं।

वैदिक धर्म के पुनरुद्धारक पाण्डित्यविदारक, दुरीतिनिवारक, अज्ञानमहारक वेदज्ञान के प्रस्थापक महर्षिदयानन्द ने वेद को ईश्वरीय ज्ञान माना है और उसकी नित्यता मानी है। वेद का ज्ञान प्रत्यक्ष सृष्टि के प्रारम्भ में शक्तियों पर परमेश्वर की प्रेरणा से प्रकट होता है। इसका महर्षि ने सिद्धान्त रूप से प्रतिपादन किया है और स्वीकार किया है।

तात्पर्य यह है कि स्वयं वेद में यह तथ्य सिद्ध है और इत्यादि लेकर जैमिनि अपने ऋषि यह मानने आये हैं। यहाँ तक कि वेदान्तदर्शन के जाम्ब-योनिस्मात् सूत्र पर जकाराचार्य को भी यह तथ्य स्वीकार करना पड़ा और 'अतएव च नित्यत्वम्' आदि सूत्रों पर उन्होंने इस पक्ष का स्पष्ट ही प्रतिपादन किया है। 'शब्द इति चेन्नातः प्रथमात्' सूत्र पर तो लगभग सभी भाष्यकारों ने इन तर्कों को स्वीकार किया है। कारण यह है कि महर्षि व्यास ने स्वयं इन पक्षा व प्रतिपादनार्थ ही इन सूत्रों का प्रणयन किया है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है और वेद ज्ञान की नित्यता है—इसका विशेष प्रतिपादन मैंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'वैदिक म्यानि' में किया है।

परन्तु आश्चर्य और वेद का विषय है कि "दयानन्द मरम्बनी हिन्दू लाइफ एण्ड माइडियाज" के लेखक श्री प्रो० जे० टी० एफ० जोहन्स ने अपनी अन्वेषण वैचित्री दिखाने के प्रयास में एक अनर्थ ही प्रसाध कर डाला है। जिनको रिमच कहना तो दूर की बात है, सर्वथा ही युक्ति प्रमाण और मर्मज्ञान केवल मिथ्या कल्पना ही कहा जा सकता है। रिमच करने का कार्य करने हुए भी ईसा-ईयत का प्रभाव मस्तिष्क पर प्रभावशाली है। सभी ऐसी बात उन्होंने लिखी है।

इ कहते हैं कि महर्षि स्वामी दयानन्द को "वेद ईश्वरीय ज्ञान एवं प्रेरणा है"—यह विचार प्रोटेस्टेण्ट ईसाई विचारधारा में आया। क्योंकि इनमें सामान्य आदि उन्हें करना पड़ा। उनकी पुस्तक की भूमिका (Introduction) और पृष्ठ २०६ को देखा जा सकता है। भूमिका रखने और इन विषय का अनेक स्थलों पर प्रतिपादन देखने में यह अति निमाधारणतया मस्तिष्क पर आ बैठता है कि उन्होंने अपनी कुछ मान्यताओं की कल्पना को साकार रूप देने के लिए ही इस पुस्तक को लिखा। अन्य अनेक बाने सृष्टि रचना, जीव के स्वरूप और ईश्वर आदि विषयों पर उन्होंने लिखी है जो केवल कल्पना मात्र है। मैंने यहाँ प्रसंग में केवल एक ही विषय दिखानेकर सन्तोष किया है। समय पर विस्तृत लिखा जा सकता है।



प्रोफेसर महादेव ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण की पूर्ण पूर्ण प्रशंसा की है। यह 'बकार' उन्होंने स्पष्ट, नही नहीं, अवश्य ही श्री १० युधिष्ठिर जी की प्रशंसा में उधार लिया है। क्योंकि इसमें उनका अपना विकासवादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। उनके लेखक ने मशीन की जीवनी मेमोको को मशीन को अप्रामाणिक और व्यर्थ समझ लिया है। यह कह कर कि ये लेखक सभी आध्यात्मिक और आध्यात्मिक जी का अपना गुरु मानते थे। अतः मुख्य बातों का जो प्रोफेसर जी ने प्रकट की है छिपाया। या विशेष विचार नहीं किया। उनका यह भी कहना है इन लेखकों ने 'महादेव दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' और 'प्रत्येकालीन सभा का इतिहास' आदि कुछ पुस्तकों के आधार पर ये पुस्तक जीवनी नहीं लिखी गई है। इस बातों की पूर्ति श्री प्रोफेसर महादेव की पुस्तक करेंगी।

श्री प्राणेश्वर महादेव ने अपने अनुसन्धान में श्री दामोदर मुन्दर नाथ द्वारा गुजराती में 'नखित बम्बई आर्य समाज' के इतिहास को अपने विचारों में माना है। लिखा है कि ये सौंदर्य प्रभाव उपस्थित रहे। परन्तु इस स्थान में आर्य समाज की स्थापना तिथि सैन्य प्रकृत प्रान्तपदा लिखा है। जब कि प्राणेश्वर महादेव ने १० अर्ध १९७५ लिखा है। बलिहारी है इस अनुसन्धान की कि आर्य समाज बम्बई व साप्ताहिक अधिष्ठाण के राजस्वर और इन प्राणेश्वर जी के माने साधना आदि को प्रमाण मानकर आर्य समाज की स्थापना तिथि ६ अर्ध १९७५ (सैन्य प्रकृत प्रान्तपदा) का एक टुकड़ा हो लिखा गया है जो इस दृष्टिकोण से नहीं हुआ। इन्होंने इस तथ्य का क्या उपयोग किया? मान्य होता है केवल दो व्यक्तियों के उपयोग ग्रन्थों के आधार पर अपनी सम्मान बनाया। मारा आर्य समाज आर्य समाज की स्थापना तिथि सैन्य प्रकृत प्रान्तपदा ही मानता है। उसकी निरामिण मार्कशीणक सभा का निर्णय भी यही है। परन्तु प्रोफेसर महादेव को उनका कोई राज्ञान ही नहीं क्योंकि उनका अनुसन्धान केवल दो एक व्यक्तियों की सम्मान पर आधारित है।

### यज्ञ और मानव जीवन के अन्तिम उद्देश्य की पूर्ति

मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है। यह दृश्य जगत् उसके भाग और अवयवों के लिए है। अवयव ही मानव का परम पुरुषार्थ है। इस जगत् की सिद्धि में यज्ञ कदा तक महावक है—यहाँ यहाँ पर विचारना है। वैदिक कर्म विराजमान और अकर्मण्यता को स्थान नहीं देता है। वह समाज का केवल दलभाष नहीं मानता है। समाज उसकी दृष्टि में जहाँ लोगों का साधक है वहाँ मोक्ष का भी साधक है। बिना समाज में आर्य यदि जीव

को मोक्ष मिलना होता तो फिर जीव के लिए समाज की आवश्यकता ही न पड़ती और समाज की समी आवश्यकता में राज व्यवस्था न रह जाती।

समाज को मिथ्या और भ्रम्य कहने वाले भी यह नहीं बता सकते हैं कि फिर समाज के उत्पन्न होने की आवश्यकता ही क्या है? यह एक ऐसा प्रश्न है कि उसकी सारी दार्शनिक कल्पना की मिलि इस जाती है। इस बातों का निरपेक्ष तत्त्व सापेक्ष के चक्कर में क्या पड़ता है।

मनुष्य कर्म विना बिना भ्रम पर भी नहीं रह सकता है। कर्म उसे करता पड़ता है। यह बुरे कर्म भी करता है और अच्छे भी। परन्तु वह अच्छे ही कर्म करे बुरे कर्म न करे इसकी प्रेरणा वह देता है। व अच्छे ही कर्म प्रेरणा कर्म भी है। क्योंकि यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म का नाम है। श्रेष्ठतम कर्म ज्ञानपूर्वक होता है और ज्ञान के सहायन के लिए किया जाता है।

उत्तम कर्म सकाम और निरकाम भेद में दो प्रकार के हैं। सकाम कर्म कामना के साथ किया जाता है अतः वह स्वयं मूल्य प्राप्ति के लिये न करता है। कारण यह है कि उसमें कामना कभी राग लगा हुआ है। राग मिथ्या-ज्ञान का प्रसार है। उसकी निवृत्ति के लिए यज्ञ आदि कर्मों का कर मारा को पवित्र कर योग आदि के द्वारा आत्मा की निर्मल बनाकर निरकाम कर्म करना चाहिए। निरकाम कर्म बन्धन के कारण नहीं उत्पन्न है।

जब तक चावल में धान का छिन्ना मग है तब तक वह अन्न पैदा करता है। जब तक चने की दान छिन्ने के साथ है तब तक चने में अन्न पैदा होता है। केवल चावल और केवल दान में अन्न नहीं पैदा होता है। इसी प्रकार जब तक राग आदि कर्मों के साथ नग है कर्म रत्न पैदा करता है। बिना राग के कर्म फल पैदा करने में असमर्थ होते हैं। अतः निरकाम कर्म फल नहीं पैदा करते।

इस प्रकार यज्ञ आदि कर्म कर्तव्य समझकर निरकाम भावना में करने पर ज्ञान की सिद्धि कराते हैं। ज्ञान जब उद्भूत हो जाता है तो मिथ्याज्ञान का विनाश हो जाता है। मिथ्याज्ञान का अभाव हो जाने से मोक्ष की सिद्धि ज्ञान से होती है। कर्म जिनमें यज्ञ आदि उत्तम कर्म भी हैं ज्ञान की सिद्धि पर पहुँचाते हैं। ज्ञान में पुनः सुविष्ट होती है। योग में भी ता प्रिया योग है ही। मोक्ष केवल कर्म से नहीं होता है और केवल ज्ञान से नहीं होता है। वह ज्ञान और कर्म के समुच्चय से होता है। इसका भी प्रमाण में इस पुस्तक में विचार किया गया है।

## यज्ञ और ज्योतिष-विज्ञान

यज्ञों के साथ ज्योतिष का भी सम्बन्ध है। ज्योतिषविज्ञान में ग्रहों, नक्षत्रों, राशियों, भूगोल और ज्योतिष आदि विज्ञानों का समावेश है। अतः यज्ञ के करने के साथ ज्योतिष नक्षत्र चार का नाम और अयन आदि का विचार करना पड़ता है। क्योंकि यज्ञ के सम्बन्ध में समय लगा होता है। यज्ञों में नक्षत्र ज्योतिष और यज्ञ का ही विचार होता है। अग्निस्मरण के समय वा सन्तान ज्योतिष आदि के समय मास के और वर्षों में लेकर वर्तमान समय तक का समय पारा है और इसमें मिलते मिलते तक का विज्ञान रखना पड़ता है।

यज्ञ में एक बार यज्ञ में यह कि यज्ञ गणित ज्योतिष मात्र ही वैदिक ज्योतिषविज्ञान है। इसमें नक्षत्रों का ही ज्योतिष का लगा रहता है उसमें यज्ञ का कोई सम्बन्ध नहीं और न ज्योतिष ज्ञान का ही उसमें कोई सम्बन्ध है। यह कल्पना-कल्पना है। यज्ञ में मृत्यु आदि ज्योतिष की कल्पनाओं का कोई स्थान नहीं है। इसी प्रकार यज्ञ और नक्षत्र तथा विविधा और वायु का ज्योतिष नाम रखना भी आडम्बर है और अर्थहीन है।

यज्ञ भी समान रहता चाहिए कि गणित का सम्बन्ध ज्योतिष में केवल समय मात्र और गुणधर्म आदि कल्पना मात्र नहीं। यज्ञ भी है और ज्योतिष विज्ञान, विज्ञान, गणित, नाम अर्थयाम, ज्ञेय, नन्दपण, सूर्यपण, सृष्टि के समय का गणित अनादय आदिमात्र और सभी यज्ञ के दिनमान, वर्ष भ्रमण समय आदि का ज्ञान इसमें समावेश है। इसका सूर्यसिद्धान्त आदि में बड़ा ही विस्तार है।

## सृष्टि के काल के सम्बन्ध में

बहुत साधारण और सरल गणित यह है कि चार लाख बत्तीस हजार वर्षों की कल्पना का मान है। इसका दूना द्वापर, त्रिगुणा त्रेता और चतुर्गुणा कृतयुग है। इन चारों युगों का मिलान पर उत्तरी मज्जा चतुर्गुणी है। चतुर्गुणी में चारों युगों की आयु है और उसकी वर्ष सन्तान विनाशिन लाख बीस हजार वर्ष है। ज्योतिष शास्त्र में अज्ञान में भी हिमाव लगाया जाता है और यज्ञों की कल्पना में भी अज्ञान में ही अज्ञान में वर्ष स्थान लगाया है और यज्ञों की कल्पना में भी अज्ञान में ही अज्ञान में वर्ष स्थान लगाया है और यज्ञों की कल्पना में भी अज्ञान में ही अज्ञान में वर्ष स्थान लगाया है। इसीलए १२ पद में चार पदों में एक, चतुर्दश पदों में एक, सृष्टि पदों में कमजोर आदि नक्षत्रों का बोध होता है। बीस पदों और उसमें अधिक भी नक्षत्रों को आसानी से इस प्रकार लिखा जा सकता है।

जैसा कहा जा चुका है चारों युगों का मान एक चतुर्गुणी है तथा वेदा-नुसार एक समय चतुर्गुणी का समय ही सृष्टि का समय है और इतना ही प्रलय का समय है। इस प्रकार एक हजार चतुर्गुणी अयन चार लाख बत्तीस करोड़ वर्ष सृष्टि है और उतने ही समय तक प्रलय होता है। यह दोनों समय अर्थात् सृष्टि और प्रलय आठ अरब बीसठ करोड़ वर्ष होते हैं परन्तु यह समय एक सृष्टि और एक प्रलय का है।

इसको स्पष्ट करने के लिए सृष्टिकाल को ब्रह्म का एक दिन और प्रलय काल को एक रात्रि कहा गया है। यह इस प्रकार ब्रह्म का एक अक्षय्य (दिन और रात्रि) है। जब यह दिन और रात्रि है और इनके भी मास एवं बनाये जावे तो बहुत बड़ी सख्या वर्षों की हानो। वेद आयु का सीधा हिमाव शतममात्र शत वर्षों का रखता है। इसी प्रकार सूर्यसिद्धान्त में उपलब्ध है उसमें ब्रह्म की भी शत वर्षों की आयु की कल्पना की गई है। यह शतवर्ष जो ब्रह्म व ब्रह्म की आयु कही गई है वही एक परान्तकाल का समय होता है। यह परान्तकाल ३१ नील १० खरब ४० अरब वर्षों का होता है। इस काल में ३६००० बार सृष्टि और उतनी ही बार प्रलय का समय समा-विष्ट है।

भगवान् दयानन्द ने इसका हिमाव लगाकर यह बताया कि ३६००० बार सृष्टि और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय तक यह मुक्त जीव मुक्ति का आनन्द भोगता है और बाद की पुनः मुक्ति से वापस आता है।

वर्तमान सूर्यसिद्धान्त में जो गणित किया गया है वही भगवान् दयानन्द ने सत्यापन प्रकाश के नवम समुन्लास में दिखाया है।

ब्रह्म के ३० प्रहोरायों का एक मास और १२ मासों का एक वर्ष और ऐसे १०० वर्षों की आयु। अतः  $30 \times 12 \times 100 = 36000$  अर्थात् इस प्रकार से वह ३६००० बार सृष्टि और प्रलय का समय परान्तकाल है। यही ब्रह्म की शत वर्षों की आयु है। सूर्यसिद्धान्त में यहाँ तक का हिमाव है। यह परान्तकाल तक का समय ही सूर्यसिद्धान्त का वर्षांतीय विषय काल के सम्बन्ध में है।

## सन्वन्तर आदि क्यों ?

ऊपर की पक्तियों में जो विवरण सृष्टिकाल का दिखाया गया है वह सीधा सरल है। परन्तु जब यहाँ की वर्तमान नाम, भविष्य में कब किस समय कीन यह किस बिन्दु पर होगा और उसका समय क्या होगा, पहचान कब मंगे, और

कितने काल का भुगवान् सृष्टि से लेकर सब तक हो जायेगा और अभी कितना हुआ है आदि विवरणों को केवल समूचे युगों और चतुर्गुणों मात्र में नहीं दिया जा सकता है। उसमें चतुर्गुणी, युग और क्षण में भी निश्चिता पड़ेगा। जैसे आज्ञावत् के व्योमोत हुए सृष्टिकाल को केवल चतुर्गुणी आदि में समूचे पैमाने में नहीं दिया जा सकता है। इसलिए लघु, मधुतर और और लघुतम समय भाग को हिमाव में लाया जा सक और प्रकट किया जा सके इनके लिए प्राजापत्य मान बनाया गया। यह मनु आदि प्रजापतियों की मानविधि है। इसके अनुसार छोटे से छोटे समय भाग का बताया जा सकता है और माय व्यवहार चल सकता है।

यह विधि मन्वन्तर विधि है जो समस्त ऐनोदगियों को हल कर सकती है। सृष्टिकाल को इसमें मन्वन्तरों में बांटा गया है। चार अरब इन्दीम करोड़ वर्ष को सृष्टि का समय है उस जोड़ह मन्वन्तरों में विभक्त किया गया है। एक मन्वन्तर ७१ चतुर्गुणों का होता है। परन्तु एक सृष्टिकाल को चौदह मन्वन्तरों में बाँटे गए भी छ चतुर्गुणों जय रह जाती है। क्योंकि एक माणवान् में चौदह मन्वन्तर (६६४ चतुर्गुणों) और छ चतुर्गुणी होती है। इस प्रकार यह एक मन्वन्तर चतुर्गुणी का सृष्टिकाल होता है।

इस सृष्टिकाल में जो छ चतुर्गुणी १४ मन्वन्तरों में उस काल के विभक्त करने पर शेष रहती है उनमें क्षण में नीचे लिखे विवरण उल्लेख है। इनको मन्वन्तरों के प्रारम्भ होने के पूर्व माना जाये अथवा मन्वन्तरों की समाप्ति पर माना जाये अथवा इनका विभाग करके मन्वन्तरों के माय-माय माना जाये पूर्व मानने और अन्त में मानने की बात प्रारम्भ छ चतुर्गुणों की बनती नहीं। इस व्यवहार में गणित आदि करने में उलझने आवेगी। ये जीत नहीं की जा सकेंगी। फिर तो सृष्टि को केवल १४ मन्वन्तर के जितनी ही मानना पड़ेगा और छ चतुर्गुणी की गिनी रहेगी। यदि सारे चि व्यवहार आदि के लिए १४ मन्वन्तर वाले काल को ही लिया जाता है तो फिर इन छ चतुर्गुणों के काल का उपयोग बनाना पड़ेगा और मन्वन्तरों के साथ सामञ्जस्य और साधनता बनानी पड़ेगी।

इस समस्या का समाधान प्राजापत्य मान वाले ऋषियों ने १५ मधियों का मान स्थापित करके किया है। एक सन्धि का समय एक कृतयुग जितना अर्थात् सत्तरह लाख अष्टादस सहस्र वर्ष का होता है। जितना समय १५ सधियों का होता है उतना ही समय छ चतुर्गुणों का होता है। अतः ज्योतिष शास्त्र के अनुसार पहली सन्धि प्रथम मन्वन्तर के पूर्व प्रारम्भ होती और अन्तिम

पन्द्रहवीं सन्धि चौदहवें मन्वन्तर के बाद चामू होती है। अर्थात् एक सृष्टि का काल केवल १४ मन्वन्तर मात्र ही नहीं अर्थात् उनकी १५ सधियों को मिलाकर है। सन्धिया मन्वन्तरों के माय-माय हिमाव में आती है। यदि चार मन्वन्तर बीता जाय तो पाचवीं सन्धि उसके माय बूझेगी। यदि छ मन्वन्तर आत्र तक बीता है तो सातवीं सन्धि भी बीती है। इस प्रकार आज का काल ६ मन्वन्तर मान सन्धियों और सातवें मन्वन्तर के बीत हुए भाग का जाहिर करना। केवल मन्वन्तर के समय को जाहिर नहीं। अथवा हिमाव में गड़बड़ी रहेगी। इस प्रकार यह प्राजापत्य मान ज्योतिषशास्त्र का वह मान है जिससे लघुतम काल तक का हिमाव लगाया जा सके।

### सृष्टिसम्बन्ध और भगवान् दयानन्द

महर्षि दयानन्द न वर्तमान सृष्टिसम्बन्ध को एक अरब छानवे करोड़ आदि वर्षों का माना है जबकि ज्योतिष शास्त्र के अनुसार यह एक अरब मन्वानवे करोड़ आदि वर्षों का बनता है। कुछ लोग कहते हैं कि एक अरब मन्वानवे करोड़ वर्ष मानना महर्षि के विरुद्ध है और इसके मानने वाले महर्षि को गलत साबित कर रहे हैं। परन्तु उनका यह फटवा गलत है।

महर्षि ने जो सृष्टिसम्बन्ध का समय दिया है उसका मन्वन्तरकाल मात्र जोड़ा गया है। वह जोड़ मर्यादा ठीक है। परन्तु उसमें ७ सधियों का काल नहीं जुड़ा हुआ है। यदि यह जोड़ दिया जाये तो एक अरब सत्तानवे बान्ता हिमाव ही ठीक बैठेगा। बस इतना कहना मात्र कि सन्धिकाल नहीं जुड़ा है कुछ लोग अपराध मान रहे हैं। परन्तु वे भी तो उसी प्रकार अपराधी हैं। यदि महर्षि के हिमाव में दिव्य सृष्टि सम्बन्ध को ही माना जाय तो फिर १४ मन्वन्तरों की ही सृष्टि होगी। इस प्रकार छ चतुर्गुणी कम रह जावेगी। इन छ चतुर्गुणों को कहाँ जोड़ा जाये। पहले या अन्त में। यदि पहले तो फिर वह सृष्टि में बीता हुआ समय है वा नहीं? यदि है तो उसे बिना जोड़े सम्बन्ध कैसे ठीक होगा। यदि जोड़ा जाये तो महर्षि के बनाए सृष्टि सम्बन्ध में मेंन नहीं आवेगा। तथा वर्ष सख्या १ अरब छानवे करोड़ के स्थान में एक अरब अठानवे करोड़ आवि बनेगी। यदि इस काल को नहीं जोड़ा जाये तो क्यों? यदि जोड़ना आवश्यक है तो फिर यह महर्षि के सृष्टि सम्बन्ध में जुड़ा हुआ है वा नहीं। यदि नहीं जुड़ा हो तो आप भी यही मान रहे हैं कि यह रह गया है।

ऐसी स्थिति में दोनों में कोई अन्तर नहीं पड़ता है—एक का कहना है कि



सात सन्धिषा का काम नहीं जुड़ा है, रह गया है और दूसरे का कहना है कि छः सन्धिषा का समय नहीं जुड़ा है। इसमें एक को महर्षि का विराधी कहा जाये और दूसरे को समर्थक यह किस प्रकार ?

महर्षि का दिया हुआ हिमाय केवल सन्ध्यायों मात्र का है। उसमें दोनों सन्धिषा का बान जाड़ देने पर एक अरब सत्ताने का राउ आदि वषों को सृष्टि सम्बन्ध के आवरण वही ठीक होंगे। इस प्रकार सृष्टि सम्बन्ध एक अरब सत्ताने का राउ आदि वषों ही है। इसका भी प्रमाण से परिशिष्ट में विस्तार से उल्लेख कर दिया गया है।

### ज्योतिषशास्त्र की बुद्धिमानता

ज्योतिष शास्त्र बड़ा ही दुर्लभ है। उसकी अपनी परिभाषा भी है जो प्रचलन में नहीं होने में कठिन है। जैमिनी पृथिवी तिस बुल पर सूर्य के चारों तरफ घूमती है उसमें ६० अंग पर शान वाल नगरी के लका यमकाटि आदि नाम दिये गए हैं। इसी प्रकार इसमें निवास करने वाले के देव अमर आदि नाम दिये गये हैं। अब भारतीय लकापुर में सूर्य का उदय होता है तब उस समय यमकोटिपुरी अर्थात् योक्षपथ दशा में जो ६० अंग पर स्थित है दाक्षिण्य होता है। निचले भाग पर स्थित मिथपुर में सूर्यस्तकाल होता है और रायकपालन में रात्रि का अर्धभाग होता है।

एक और जगलता की तरफ यही उदाहरण रूप में पाठकों के ध्यान को आकृष्ट किया जाता है। सूर्यमिद्वान्त के भूगोलाध्याय में एक श्लोक निम्न प्रकार पाया जाता है :—

अथोमश्रुतपथसागरपङ्कनाम,

अथोमाष्टगुण्यममरुपतनाष्टबन्दा ।

ब्रह्माण्डसम्पत्परिचयस्य समन्ता

दध्यन्तरे दिनकरस्य करप्रसारः ॥ सूर्यो ० अ० १२।६१

अर्थात् १८३ १२० ८०८ ६४०००००० योजन ब्रह्माण्ड की बह रक्षा है कि जिसके भीतर चारों तरफ तक एक सूर्य की किरणों का प्रसार होता है अर्थात् ये ब्रह्माण्ड के मोल की परिधि के योजन है। यह ब्रह्माण्ड का सम्पुट है। किसी गाँव की यदि दस गोल कटाहों से जोड़ा जाय तो घुट की परिधि की होती है व उसमें योजन है।

यहां पर यह कितना कठिन विषय है। इसको समझने में कठिनाईना हुई है। बाद में बलका ने इसका वर्णन किया है। भास्कराचार्य ने इसी विषय का

वर्णन कर चुके हैं। मिद्वान्तजिरोमणि में लिखा है कि १८३ यदि योजन का ज्योतिषशास्त्र के ज्ञानन वाले ब्रह्माण्ड का एक मास कहते हैं। कई लोग ब्रह्माण्ड के कटाह के इस सम्पुट की इस परिधि कहते हैं और कुछ लोगनिक विद्वान् इसे 'लोकालोक' पर्यन्त का विस्तार मानते हैं।

यहां पर भास्कराचार्य ने सूर्यमिद्वान्त की एक बात को अर्थान्तरित कर सन्ध्या की परिधि वाले प्रश्न को माना और किसी तद तक आकाशका कट कर प्रथम विचार को माना है। यह वस्तुतः सूर्यमिद्वान्त का मिद्वान्त मास है जिसे भास्कर भी स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु पौराणिकों का मन जोड़कर पौराणिक लोगों ने क्या समझा इसका भी वर्णन कर दिया। सूर्यमिद्वान्त में यह नहीं है। क्योंकि पौराणिक मन का उस समय होता ही सम्भव नहीं। यह तो भक्ति तर्कान्त है।

जिनको न अपने ज्योतिषशास्त्र का परिज्ञान है और न पाश्चात्य ज्योतिष-विज्ञान का बंधन में कुछ थोड़ी सी भिन्नता को देखकर इधर-उधर की कल्पनाएँ कर अपने शास्त्र का ही दोष निकालने बैठ जाते हैं। बहुत है कि भारतीय ज्योतिष में और संस्कृत भाषा में वेदों वार आदि जगदा का न व्यवहार था और न प्रयोग होता था। कई पदों का तो अपनी अतोभजनावश में और भाषा का मान बैठे हैं। पुत्रा जाय कि (इ०) तारीख के एक दिन में हिमाय के लिए २४ घण्टे मान जाते हैं। क्या इसमें दिन और रात्रि दोनों सम्मिलित नहीं हैं ? यदि हैं तो इसी प्रकार निधि में रात्रि और दिन क्यों नहीं सम्मिलित हो सकते हैं।

पृथिवी की परिधि मिद्वान्त जिरोमणि आदि में ४६६३ और व्यास १४८१ योजन माना गया है। योजन को पाँच मील मानकर हिमाय लगान पर परिधि २४८३५ मील और व्यास ७४०२ मील बनता है। वर्तमान विज्ञान के अनुसार यह परिधि २४८३६ मील और व्यास ७६१२ मील है। लोग कहते हैं यह बड़ा भारी अन्तर है। परन्तु यह समझने का प्रयत्न नहीं करने कि योजन का वास्तविक पैमाना क्या है ? यदि योजन को ५ १ मील का माना जाये तो परिधि २४८३६ मील और व्यास ७६१२ मील बनता है।

### फलित ज्योतिष मिथ्या है

पहले कहा जा चुका है कि गणित ज्योतिष वैदिक है और फलित ज्योतिष कपोल कल्पित पाश्चात्य है। सूर्यमिद्वान्त जैमिनी पथ में दोसी सौमोत प्रक्षेप करके इस फलित को सत्य बनाने का प्रयत्न किया है। परन्तु इस पाश्चात्य का

मिथ्यापन वहाँ पूर्वापर का अध्ययन करने से प्रकट हो जाता है। मनुस्मृति, वाल्मीकि रामायण, महाभारत आदि में अनेक प्रक्षेप किए गए हैं। इसी प्रकार पूर्वमिथ्यात जैसे गणित ज्योतिष के आदि यम में भी इन फलित ज्योतिषियों ने अनेक अनगन बाणों के मिसाने का काम किया है। पूर्वमिथ्यात के आदि के परम्परा अथवा मध्यमाधिकार, स्वयंसाधिकार आदि को पढ़ने पर उनमें बड़ी कलित का लज भी नहीं दिखा जाता। बाद में मिलाने का जहाँ यत्न किया गया है वही पर वह दिखावट अलग पड़ती मालूम होने लगती है।

कलित ज्योतिष के यम पूर्वमिथ्यामणि में अथवा गणित मगल जात-कालकार, मानसागरी और लज की लक्ष्मी है। उनकी रचना १८१० विक्रमी सम्बत के आश्विन मास की है। इस ग्रन्थ में ही इनका रचना का लज चल जाता है। तादृशनीलकण्ठी की भी नीलकण्ठ ने १७०६ शालिवाहन अथवा १७८७ ईस्वी में बनाया।

मूलतः शिवामणि की रचना शिवामणि रचित ने की। यह ग्रन्थ १७८९ शक अथवा १८७० ईस्वी में बना। इसमें अन्य कालों में अपने ही महाभू-भुज माला 'अर्थात् महाभूज' के मान्य लिखा है। महाभूजाम् पद का अर्थ करने हुए 'पीपुषागरी' औरकार ने 'पादण्डादीनाम्' अथवा साधनाओं का किया है। इसमें स्पष्ट है कि मगल मगलों के लाल में यह ग्रन्थ बना। कहा जा तापस्य यह है कि यह ग्रन्थ १८०० वर्षों में इधर के रचने हुए है।

(जातकाभरण ग्रन्थ के अनुसार मगल मनुष्य की मृत्यु ११ दिन में ही होती चाहिए। बाकी वर्ष के ३६५ दिनों में बाढ़ मृत्यु नहीं होती चाहिए। मगल मनुष्य ११ ही राशियों के ज्ञात है वृष और शक्र राशि वाला है लिए साधनाओं के निमित्त है जब मगल ११ दिन मृत्यु के लिए है। मगल की बात को दूर रहे एक नगर में ही दिखा जाता है कि रोज कोई न कोई मरता है। एक ही निवत दिन में मृत्यु नहीं है।)

(मानसागरी में कुण्डली के सातवें घर में कोई भी राशि पड़े मगल फल उस मनुष्य की रबी पर ही पड़ाया गया है। परन्तु दखना यह है कि जिसका मगल पल्लव बिबाह हो नहीं हुआ उनको वह किस प्रकार ठीक उत्तरेगा। बहुत से बालक बिबाह में पूर्व ही मृत्यु की प्राप्ति हो जाते हैं। उन्हे यह फल कैसे मिलेगा। बिबाह के सातवें घर में भी तो कोई राशि पड़ेगी ही फिर सिधियों की पत्नी कौन सी होगी? फिर उनके लिए इस राशि का फल क्या मिला? यह सब हाथ है।)

(जातकाभरण में लिखा है कि नूला राशि वाले मनुष्य की मृत्यु २२ वर्ष की आयु में वैशाख नदी अष्टमी शुक्रवार को नैया नक्षत्र में होगी।

ज्योतिषी जी को हिमाचल तो ज्ञात नहीं। वैशाख की पूर्णिमा का बिजाना नक्षत्र होना अनिवार्य है। उसी पर उसका नाम है। कभी एक दो दिन का अन्तर हो जाता है। परन्तु इसमें अधिक अन्तर नहीं पड़ सकता। बड़ी आठमी को अर्थात् पूर्णिमा के आठ दिन बाद अथवा नक्षत्र किस प्रकार जा जवेगा? क्या ज्योतिषी जी वहाँ भी कोई कारीगरी करेंगे? इस प्रकार यह कलित ज्योतिष ग्रन्थ है, अन्य कुछ नहीं। आजकल कुछ राजनीतिक लोग इसे बढ़ावा देने हैं और कहते हैं यह तो एक विज्ञान है। पता नहीं इनके कोप में विज्ञान भी उसी तरह का है वैसे इनकी राजनीतिक नीतिमत्ता है।

(मुहूर्तगण में लिखा है कि बिजाना कृतिका, पूषागरी आदि नक्षत्रों में जनेश्वर का मगल का चल हा तथा जब लाल और दशवें स्थान में मगल हो— तब मुहूर्त में चारा करने में घन लाभ होगा।

इस प्रकार ये कलित ज्योतिषी बारी, मध्यमाष्टी, और कुकृत्य के लिए भी मुहूर्त बनाते हैं। यह है इनके कलित ज्योतिष का हाल।



## विषयानुक्रमिका

सूचना—इस ग्रन्थ की पढ़ने से पूर्व इसका विषयानुप्रवेश अवश्य पढ़ें।

‘विषयानुप्रवेश’ में क्रमशः निम्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है—

- १—पुरुष का नाम, उसके लिखने का कारण आदि
- २—वागुद्घरण आदि की समस्या और यज्ञ
- ३—यज्ञ का विज्ञान में सम्बन्ध कैसे ?
- ४—ऋत और यज्ञ
- ५—यज्ञ में वण आदि बालों का विधान नहीं है।
- ६—‘गोप्न’ पद पर विचार
- ७—विश्वकर्मा का सर्वमंथ क्या है ?
- ८—पुरुषमंथ क्या है ?
- ९—पुरुषमुक्त क्या और कैसे ?
- १०—यज्ञ और मीमांसाविज्ञान
- ११—एक रहस्य
- १२—एक बहुत बड़ा धर्म
- १३—यज्ञ और मानव जीवन का उद्देश्य
- १४—यज्ञ और ज्योतिष विज्ञान
- १५—मृष्टि के बाल के सम्बन्ध में
- १६—मन्त्रान्त आदि क्या ?
- १७—मृष्टि सम्बन्ध और भगवान् दयानन्द
- १८—ज्योतिष शास्त्र की दुरुवस्था
- १९—फलित ज्योतिष विमर्श है।

### प्रथम प्रकरण—

यज्ञ शब्द का अर्थ, उसकी परिभाषा, यज्ञार्थक कतिपय अन्य शब्दों का अर्थ	पृष्ठ १-६
पाश्चात्यों की ख्रिस्तिय धारणाएँ	६-७
यज्ञ शब्द का अर्थ और पाश्चात्य विद्वान् मैकडानल आदि	७-९
मैत्रीप्राइस पद के प्रयोग में ईसाइयत का पुट	९-१०

पाश्चात्य विद्वानों की कुछ यज्ञ सम्बन्धी विद्वत धारणाएँ	१०-११
वास्तविकता का प्रतिपादन (श्री मुकुन्द विश्वार्थ और महर्षि द्वारा प्रतिपादित) प्रथममंथ का वास्तविक अर्थ	११-१४
प्रकरणस्थ प्रमाण सन्दर्भ	१५

### द्वितीय प्रकरण—

यज्ञों का उद्गम	१६-२२
विश्वरचना यज्ञ कैसे	१७-१९
यज्ञ का हम विस्तार करते हैं प्रारम्भ नहीं करते	२०-२१
वेद और यज्ञ की सामग्री आदि	२१-२२
प्रकरणस्थ प्रमाण सन्दर्भ	२३

### तृतीय प्रकरण—

विनियोग-विज्ञान	२३-२७
विनियोग की व्याख्या	२३-२६
विनियोग की वैज्ञानिकता	२६-२७
सत्रित विश्वमाप	२७-२८
मातृमापन शास्त्र और बृहदृक्ष्य माप के विषय की कहानी	२८-२९
वर विवाह में जिस गाथा को गाता है उसका रूप	२९-३०
देवता नद में विनियोग में भेद	३०-३१
विनियोग नियम अनादि नहीं	३१-३६
विविध शास्त्रों में प्रतिपादन, विनियोग के शास्त्र	३६-३७
प्रकरणस्थ प्रमाण सन्दर्भ	३७-३९

### चतुर्थ प्रकरण—

वैदिक यज्ञ के नाम	३८-४०
सायणाचार्य द्वारा लिखित पशुयज्ञ निराधार है, कन्यादान क्या है ?	४०

### पंचम प्रकरण—

ऋत्विग् और यजमान	४२-४६
ऋत्विग्दर्शना	४५-४६
प्रकरणस्थ प्रमाण सन्दर्भ	४६

### षष्ठ प्रकरण—

यज्ञ में वेदमन्त्रपाठ	४७-४९
क्या प्रत्येक मन्त्र के पूर्व ओ३म् का उच्चारण किया जावे ? ‘टि’	

क्या है ? और मन्त्रान्त में क्या संबंध यह ओ३म् लयाया जावे ?	४७-४९
यज्ञ में पञ्चक मन्त्र के आदि में ओ३म् नहीं लयाना चाहिए तथा ओ३म् क्या है ?	४९-५३
बैदिक यज्ञ और वैश्वदेव मन्त्रपाठ	५३-५८
कर्मकाण्ड और ऊह	५८-६०
प्रकरणस्थ प्रमाणमन्दर्भ	६०-६९
<b>सप्तम प्रकरण—</b>	
महर्षि दयानन्द की मन्त्रकार विधि की प्रक्रिया	६२-७१
मन्त्रकार विधि की रचना की आवश्यकता	६२-६४
कर्मकाण्ड कैसा हो ? विविध प्रश्नों के उत्तर	६४-६८
प्रजापति की मोन आहुति का रहस्य	६८-७०
यज्ञ करने का अधिकार अष्टाज्याहृतिये	७०-७९
प्रकरणस्थ प्रमाण मन्दर्भ	७९
<b>अष्टम प्रकरण—</b>	
मन्त्रकारविधि के सम्बन्ध में विशेष विचार	७७-८७
मन्त्रकारविधि के कर्मकाण्ड के विषय में २६ प्रश्नों द्वारा विस्तृत विचार किया गया है । तिसि और नक्षत्र आदि गुरु विषयों का समाधान	७७-८५
प्रकरणस्थ प्रमाणमन्दर्भ	८५-८७
<b>नवम प्रकरण—</b>	
मध्या-विधि-विमर्श	८८-९७
मध्या का अर्थ	८८-८९
दिशा का तात्पर्य	८८-८९
मध्या के लोपक	८९-९०
लोपकों से अभिप्रेत क्या है ?	९०-९९
विशेष	९९-९५
गायत्री से प्रार्थना	९५-९७
प्रकरणस्थ प्रमाण मन्दर्भ	९७
<b>दशम प्रकरण—</b>	
पुरोडाश और पशु	९८-१०२

प्रकरणस्थ प्रमाण मन्दर्भ	१०१-१०२
<b>एकादश प्रकरण—</b>	
यज्ञ और वायुशुद्धि	१०३-१०६
४६ मन्त्रों का वर्णन, प्राणों का वर्णन	१०५-१०६
प्रकरणस्थ प्रमाणमन्दर्भ	१०७
<b>द्वादश प्रकरण—</b>	
इदन्मम और इममे पात्र में घी छोड़ना	१०८-११०
'यजति' का अर्थ तथा यज्ञ याग की परिभाषा	१०८-१०९
जलपात्र में प्रक्षिप्त घी का प्रयोग और महर्षि दयानन्द देवता का विचार	११०-१११
देवता का विचार	१११-११३
'इदन्मम' से पात्र में छोड़ा गया घी स्वभाग नहीं है	११३-११५
'गोमूत्र' और भेषज्य आदि यज्ञों का वर्णन	११५-११८
प्रकरणस्थ प्रमाण मन्दर्भ	११८
<b>त्रयोदश प्रकरण—</b>	
यज्ञ रहस्या के उदघाटक ब्राह्मण ग्रन्थ	११९-१२४
यजमान को ज्ञत कथो छारण करना चाहिए	१२४-१२७
'हविःकृद्दि' मन्त्र का अभिप्राय	१२७-१२९
ध्रुव मन्त्र और धर्म का रहस्य तथा त्रयोदश का गणक	१२९-१३०
या ओषधी पूजा जाना के रहस्य का उदघाटन	१३०-१३४
प्रकरणस्थ प्रमाण मन्दर्भ	१३४
<b>चतुर्दश प्रकरण—</b>	
यज्ञ पद और विविध विज्ञान	१३५-१३६
यज्ञ पद किन किन विद्यार्थियों के लिए प्रयुक्त है । इनका निश्चयन विस्तार में	१३५-१३६
प्रकरणस्थ प्रमाण मन्दर्भ	१३६-१३७
<b>पञ्चदश प्रकरण—</b>	
यज्ञ के साधन	१३७-१४०
यज्ञ पात्र ऋत्विग्, समिधा तथा ऋतुओं के अनुसार सामग्री आदि का वर्णन	१४०-१४०



**बीजप्रकरण—**

हमारा यज्ञ समार यज्ञ के दर्शन से समन्वय स्थापित करता है	१४१-१४१
समार यज्ञ और हमारा यज्ञ और सोम तत्त्व	१४१-१४४
मनसाबो का वर्णन	१४४-१४४
वेदमन्त्र अग्नि और आप्य प्राण आदि का वर्णन, हविषाहक देव	
और जीव वायु का वर्णन	१४४-१४८
इन्द्र और उसका सोमपान	१४८
वेदमन्त्र का पाठ देवी बाणी का सगमन कराता है	१४८-१५०
प्रकरणस्य प्रमाण सदर्भ	१५०-१५१

**सप्तदश प्रकरण—**

पञ्चवैदीय ऋत्विक्कर्मवाद	१५०-१५६
सूर्य और चन्द्र अग्नि और भूमि के विषय का प्रश्नोत्तर	१५२-१५३
ब्रह्म और इन्द्र आदि के विषय में प्रश्नोत्तर	१५३
विष्णु के तीन पदा की चर्चा	१५३
जीव के और पाँच मन्त्रों के विषय में प्रश्नोत्तर	१५४
जम्बू के उत्पादन के विषय में	१५४-१५५
पृथिवी के मध्य केन्द्र के प्रश्नोत्तर से उसका गोल होना प्रकट करना	१५६

**अष्टादश प्रकरण—**

मीमांसा और वैदिक यज्ञ	१५७-१७६
मीमांसा है क्या ?	१५७
यज्ञ एक विज्ञान है उसका ज्ञेता से आविर्भाव नहीं	१५८
यज्ञ के अदृष्ट फल में वेद की प्रामाणिकता	१५८-१६२
धर्म के भेद और अपूर्व	१६२-१६५
यज्ञ में अग्नि शास्त्रीय पक्षों का स्पष्टीकरण	१६५-१६७
यज्ञों में वाक्यार्थनिर्णय की कसौटी	१६७-१६८
यज्ञमान के कर्त्तव्य आदि	
देवता-विषय पर कुछ विचार	१६८-१७३
मन्त्रों की मध्यमावृत्ति का प्रकार	१७५-१७६

**एकोनविंश प्रकरण—**

कुछ ब्रह्मसामयिक यज्ञ के विषय में	१८०-१८१
-----------------------------------	---------

**विंशप्रकरण—**

कुष्ठ मन प्रभूत अशास्त्रीय कर्मकाण्ड	१८२-१८६
स्थिति की वास्तविकता	१८२
वसा पवित्रमणि में श्रुति में बने ची का पाव में अलग	
अलना और स्वभाग की गमन कल्पना	१८३-१८४
उपा वाहन मन्त्र में तीसरी मीमांसा की व्यर्थ कल्पना	१८५
श्री स्वामी गणेश्वरानन्द का श्रेय	१८५
अयोध्यापन की योग्यता में शीघ्र	१८५-१८६
गायत्री महायज्ञ नामक कल्पित यज्ञ और उसकी अशास्त्रीयता	१८७-१८८
गायत्री शब्द और छन्द तथा सावित्री नाम के विषय में	
विशेष जानकारी	१८८-१८९
वेदमन्त्रों का नाशपूर्ण	१८९-१९१
'गायत्री महायज्ञ' में 'महा' शब्द पर विचार	१९२
'गायत्री महायज्ञ' शास्त्रीय 'कसौटी' पर नहीं उठता	१९२-१९३
गायत्री यज्ञ की फल श्रुति भी कल्पित है	१९३
गायत्री यज्ञ की मूर्ति में दिव्य ज्ञान वाले प्रमाणों पर विचार	१९४-१९५
राजनैतिक पौराणिकता	१९५
महर्षि और गायत्री यज्ञ	१९६-१९८

**एकविंश प्रकरण—**

मानव जीवन का अन्तिम दर्शन और यज्ञ	२००-२२०
उपनिषद् और यज्ञ कर्म	२००-२०४
मोक्ष का साधन ज्ञानकर्मसमुच्चय	२०४-२०६
मोक्ष का स्वस्व	२०६-२११
मोक्ष प्राप्ति के साधन	२११-२२०

**परिशिष्ट १—**

सृष्टिनाम्न	२२१-२५२
छकु मानिक मिथान्त	२०१-२२२
सृष्टि का भोगकाल	२२२
विभिन्न पैमाने और सृष्टि का भोगकाल	२२२-२२३
विविध पर्यायगत की ज्योतिषविधि	२२३-२२६
वेदोत्पत्ति और सृष्टि की उत्पत्ति का काल	२२७-२२८

छ. चतुस्रो के समय की मूर्ति	२३०-२३०
सुदं मिद्वान्त पर प्राप्ति का समाधान	२३०-२३१
ता. वि. व. छ. चतुस्रो	२३१-२३१
चतुस्रो मूर्तिमय की समस्या	२३१-२३१
सृष्टि सम्बन्ध की गणना का प्रकार	२३१-२३१
कृष्ण आकाशक समाधान	२३१-२३१
सुदं मिद्वान्त की समस्या	२३१-२३१
अपनी बुद्धि का योग सुदं मिद्वान्त और विद्वान्ता पर न हाने	२३१-२३१
सुदं मिद्वान्त में एक और ज्योतिष का रहस्य सूचना है	२३१-२३१
कुछ प्रश्न	२३१-२३१
सुदं मिद्वान्त के अन्तर्गत चतुस्रो मूर्ति सम्बन्ध	२३१-२३१
प्रमाणमय	२३१-२३१
पुस्तकालय के समय की मूर्ति	}
अपनी बुद्धि का योग सुदं मिद्वान्त की मूर्ति ।	
पुस्तकालय की मूर्ति	
देखने की अन्य पुस्तकें आदि	

## प्रथम प्रकरण

### यज्ञ शब्द का अर्थ

यज्ञ विषय का वेदादि मन्त्राणां में बहुत ही विस्तृत ज्ञान पाया जाता है। यज्ञ का विस्तार और समार यदि उचित किया जावे तो बहुत बड़े-बड़े शास्त्रिक ग्रन्थों की रचना हो सकती है। यह एक ऐसा विषय है कि जिस पर लेखनी दुर्लभ में पूर्व विस्तृत अध्ययन और अन्वेषण नितान्त आवश्यक है। यज्ञ शब्द में वेद में अनेक ज्ञान-विज्ञान और सृष्टि-प्रक्रिया आदि विषय अभिप्रेत हैं। जिनका वर्णन प्रसंग में उनमें सम्बद्ध प्रकरणों में किया जावेगा। यज्ञ पर केवल प्रस्तुत वर्णनों का ही वर्णन किया जाता है। यह है यज्ञ पद का अर्थ। उसके कुछ पर्यायों का अर्थ उसकी प्रवृत्ति और व्युत्पत्ति आदि।

यज्ञ शब्द वा पद व्याकरण के नियम में 'यज्ञ' धातु में बना है। 'यज्ञ' के देवपूजा, संगतिकरण और दान अर्थ हैं। देवपूजा और संगतिकरण आदि से साधारणतया लोग यज्ञ अर्थ लेते हैं कि जिस कर्म में बड़े की पूजा, समान के साथ मिल और छोटे को कुछ देना पाया जाता है, वह यज्ञ है। उसमें विविध उत्तम व्यवहार यज्ञ शब्द के अन्तर्गत होते जाते हैं। इस आधार पर ज्ञान विज्ञान की क्रियाओं और प्रयोगों के यज्ञ होने में भी कोई आपत्ति नहीं रहती है। यज्ञ में वेद आदि मन्त्राणां में जो अर्थ दिए गए हैं उनका इस पद में ग्रहण हो जाता है। उसी व्यापक दृष्टि का रखना ही यज्ञ-व्याख्या १।३।१५ में 'अन्तम कर्म को यज्ञ कहा गया है। यज्ञ शब्द के विविधार्थों को देखने हुए भी यज्ञ पर कर्मकाण्ड मन्त्रार्थों का भी भी इसके अर्थ की संगति आवश्यक है। यह तो एक है कि देवपूजा संगतिकरण और दान यज्ञ पद में अभिप्रेत हैं परन्तु जो यज्ञ विषय जाते हैं उनमें इनका किस प्रकार संगमन है। यह भी विचारणीय है।

यज्ञ में मनुष्य की परमात्मा ही उसका देवता है परन्तु मनु और इसमें अन्य देवता भी यज्ञ के देव के रूप में गणित होते हैं। इनमें पुरुषों का पूजा, अंगों का संगठन और वस्त्रों का अंगार पात्र आदि का समन्वय किया जाता है। इसी दृष्टि से यह यज्ञ है : यज्ञ के प्रसंग में दो प्रकार के देवों का उल्लेख ब्राह्मण ३.२.३६, ३.२.३७, ३.२.३८ में वर्णन पाया जाता है। देवदेव और मनुष्य देव। यज्ञ में जिन देवों को अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि की आहुति दी जाती है वे यज्ञदेव ही देव-देव हैं और जिन विद्वानों आदि को दक्षिणा दी जाती है वे मनुष्यदेव हैं। यज्ञ के देव आहुति प्रदान में तत्त्व होते हैं और मनुष्यदेव दक्षिणा आदि में मनुष्य होते हैं। यही एक प्रकार से देवपूजा है। यहाँ पर एक प्रश्न यह उठता है कि परमेश्वर और मनुष्य देवों के अतिरिक्त यज्ञदेव तो भौतिक और प्राकृतिक पदार्थ हैं। उनकी पूजा वा तृप्ति क्या हो सकती है। इसका उत्तर है कि भगवान् की पूजा तृप्ति, प्रार्थना, उपासना और उसके नियमों के पालन में होती है। मनुष्य देवों की तृप्ति दक्षिणा, दान आदि से और भौतिक देवों की समृद्धि, संगठन उनके निमित्त दी गई आहुतियों से होती है जो रसायनिक प्रभाव है। इसीप्रकार वेदमन्त्रों में देवता, तृप्तिनिमित्तक व्याग और आहुति के द्रव्यों का भी संगठन होता है। यह यज्ञ पद का व्युत्पत्ति में होने वाला अर्थ है। निरुक्ति से भी इसका अर्थ-विचार होता है।

निरुक्ति से जो अर्थ किया जाता है उसका दिग्दर्शन निरुक्त शास्त्र आदि में पाया जाता है। आचार्य यास्क निरुक्त ३.४.१६ पर इसका वर्णन करते हुए लिखते हैं कि 'यज्ञ वह है जिसमें यज्ञ' धात्वर्थक यज्ञ कर्म, जो अग्नि प्रसिद्ध है, पाये जावे, (अर्थात् संगठन, देवपूजा और दान)। अथवा जिसमें याचना, उपासना की जाती हो, अथवा जो यज्ञः मंत्रों से संकेतित होता हो, अथवा यज्ञः जिसका उपक्रम करते हो। यह है निरुक्ति से जाना जाने वाला यज्ञ पद का अर्थ। निरुक्ति निश्चित वचन का नाम है। हम विज्ञान के प्रकार ग्रन्थ निरुक्त शास्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थ हैं।

यज्ञ के कुछ और भी पर्यायवाची शब्द हैं जिनसे यज्ञ की प्रक्रिया और विशेषता पर अधिक प्रकाश पड़ता है। इनमें से प्रथम 'ध्वर' पद को ही लिया जाता है। निरुक्त शास्त्र के अनुसार 'ध्वर' हिंसा-

र्थक है। प्रध्वर का अर्थ हिंसारहित है। अग्नि का अर्थ भी यज्ञ का विधान है उ हिंसारहित है। अग्नि हिंसर प्रकाश का अर्थ होता है अतः यज्ञ ध्वर है। इस प्रकार यज्ञ अग्नि के अर्थ में यज्ञ ध्वर है। 'यज्ञध्वर' ब्राह्मण' इसके अर्थ में गणित हो सकता है। यज्ञ का अर्थ देवों का पालन करने की प्रक्रिया करने का अर्थ होता है। यज्ञ से इन कार्य की पूर्ण करना जाता परन्तु यज्ञ में अग्नि, सूर्य, इन्द्र आदि से इनके द्वारा अपने हाथ में समर्थ नहीं हो सके अतः प्रध्वर शब्द से यज्ञ अभिप्रेत है। इसमें यह सूत्ररूप स्पष्ट है कि यज्ञ एक अति-पवित्र कर्म है और इसमें हिंसा का कोई भी स्थान नहीं है।

'होम' पद का प्रयोग भी यज्ञ के लिए होता है। यह पद 'हो' धानार्थक और अदानार्थक धातु से निष्पन्न होता है। चूंकि इन कार्य में अग्नि में दी गई आहुतियाँ अग्नि के द्वारा खाई जाती हैं और यह बिना आहुति दिये संपन्न और समृद्ध नहीं होता है अतः आहुति का प्रदान होता है—इसलिए यह 'होम' है।

'यज्ञ' को क्रतु भी कहा जाता है। क्रिया और वह भी ज्ञानपूर्विका क्रिया का कार्य होने से यज्ञ क्रतु है। क्रतु पद यज्ञ और कर्म के अर्थ में बहुत प्रसिद्ध है। शत क्रतुओं का करने वाला शतक्रतु कहलाता है। शतक्रतु को इन्द्र का पर्यायवाची माना जाता है।

यज्ञ के लिए 'मस्व' पद का भी प्रयोग पाया जाता है। यह अत्यन्त सार्थक पद है। मस्व यज्ञ का विशिष्ट नाम है। गोपथ ब्राह्मण २.५ में इसकी निरुक्ति करते हुए विशेष कथन किया गया है। 'म' प्रतिपथ वा निषध का वाचक है। 'स्व' का अर्थ छिद्र है। जिसमें छिद्र का निषध हो और जो करने पर किसी प्रकार छिद्र वा हानि न करना हो वह मस्व है। चूंकि यज्ञ इसी प्रकार का कर्म है कि जिसमें न कोई छिद्र रहना चाहिए और न यह किसी प्रकार की हानि करना है अतः यह मस्व है।

यज्ञ के सम्पादन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं रहनी चाहिए। इस पर शतपथ ६.६.३.१२८ पर एक मार्गभित आख्यान है जो यज्ञ के मस्व होने की बात को सिद्ध करने में विशेष सहायक है। 'यज्ञ ने कहा कि मैं नग्नता से डरता हूँ। फिर तेरी अनग्नता क्या है—अर्थात् मुझे चारों तरफ से घेरना चाहिए। इस लिए चारों तरफ से इसे अग्नि से घेरा जाता है। यज्ञ ने कहा कि मैं नृणा से



[illegible]

॥ १ ॥  
 ॥ २ ॥  
 ॥ ३ ॥  
 ॥ ४ ॥  
 ॥ ५ ॥  
 ॥ ६ ॥  
 ॥ ७ ॥  
 ॥ ८ ॥  
 ॥ ९ ॥  
 ॥ १० ॥

यहां पर एक प्रश्न मत्र में आया है कि यज्ञ क्या करने वायु-  
मुक्ति और वर्षा के लिए ही किया जाता है अथवा इसके कोई फल  
अन्य भी है। उसका समाधान यह है कि यज्ञ करने पर वायु की  
मुक्ति होती और वर्षा भी होती है। परन्तु वह एक ऐसी कर्म-व्य-  
हानि में उत्तम कर्म है। उसके करने से मूल अग्नि की शक्ति उस  
जीवन में होती है और वह इच्छापूर्ण नैतिक कर्म-व्य-हानि से मन  
पर सरकार वा अदृष्ट भी उत्पन्न करता है जो अगले जीवन में भी  
पुण्य रूप होने में फल का दाता है। स्वर्ग आदि के प्राप्ति में भी वह  
साधक है। यदि वह केवल वायु की मुक्ति, वृष्टि के मादहन और  
रोषनिवृत्ति मात्र के लिए ही होता तो फिर मत्र बोलने, कृत्विग्-  
वरण, देवता का निमित्त करके और 'इदमम' बोलकर त्याग  
करने की कोई आवश्यकता ही क्या होती? साथ ही यह भी प्रश्न  
खड़ा होता कि फिर मोन बोल या वाणी में बोन आदि का क्या  
लाभ? मित्रयुक्त और प्रायश्चित्त आदि का भी कोई महत्त्व नहीं  
रह जाता। कोई भी उसे कर सकता और किसी भी तरह कर  
सकता। फिर 'स्वर्गकामो यजत' स्वर्ग की कामना करने वाला यज्ञ  
करे और यजमान आदि का कोई दूसरा प्रतिनिधि नहीं बन सकता  
तथा 'फलयुक्तानि कर्माणि' अर्थात् हमें फलयुक्त हैं है। आदि का  
विचार इस प्रसंग में व्यर्थ ही था।

नियम कर्म के सिद्धान्त में यह है कि जन्मापूर्वक जो कर्म किये जाते हैं वे मन पर संस्कार वा वामना अवश्य उत्पन्न करते हैं। वे कर्म या तो सकाम हो या निष्काम हो, या पाप हो या पुण्य हो। पापरूप वा पुण्यरूप कर्मों की वामनाओं का नदसमार हो जानि, मायु और भोग रूप फल होता है। क्या यज्ञकर्म इन भावनाओं से

रहित केवल वायुमय के लिए ही है। नती, नती। वे वायुमय भी बनते हैं और पुनर्वास फलों वाले भी हैं।

### पाश्चात्यों की त्रुटिमय धारणाएँ

वेद मंत्रों के अर्थ प्राचीन समय में या इस प्रकार कहना चाहिए कि वेद के मूल आशय प्रकरण को समझने की धारणा के साथ-साथ वेद मंत्रों में ही अतः तक तीन प्रक्रियाओं में लगाये जाते हैं। ये तीन प्रक्रियाएँ हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। स्वयं ऋग्वेद में ही १.०।३।१।५। पर इस तथ्य का उद्घाटन कर दिया गया है कि वेदमंत्र त्रिविध प्रक्रिया को अपने अन्तर्गत में लिए हुये हैं। इस स्थान पर मंत्र में पुष्प और फल पद पड़े हुए हैं। इस पुष्प और फल का अर्थ अधियज्ञ, अधिदेव और अध्यात्म है। यज्ञो बन्तु नोतो प्रक्रियाओं का उन्नायक है। इस वाक्य का अर्थ करते हुए महाभारत-वाक्य यास्क अपने निम्न शब्दों में कहते हैं कि "अर्थ को ही वाणी का पुष्प और फल बढ़ा गया है और वह है यज्ञ, देवता एवं अध्यात्म ये ही वेद वाणी के अर्थ हैं। यास्क के इसी स्थान का भाष्य करते हुए निम्न भाष्यकार स्कन्द स्वामी भी लिखते हैं कि तीन प्रक्रियाओं की दृष्टि से सारे वेद मंत्रों का अर्थ किया जाना चाहिए। क्योंकि स्वयं ही भाष्यकार (यास्क) ने सभी मंत्रों के तीन प्रकार के अर्थ दिखलाने के लिए अर्थ को वाणी का पुष्प और फल कहा है तथा यज्ञ, देव और अध्यात्म का पुष्प और फल से ग्रहण किया है। इस प्रकार तीनों प्रक्रियाओं में वेदमंत्रों के अर्थ होते हैं। परन्तु मध्य के काल में कुछ पंडिताभिमानि वेदानभिज्ञ से इन प्रक्रियाओं का निर्वाह नहीं हुआ। इस दोष का सारा उत्तरदायित्व महीधर और मायण का है। उन्होंने वेदमंत्रों के अर्थ बहुत ही अनगल किये। यज्ञ की प्रक्रिया में ही बहुधा मंत्रों का अर्थ किया। महीधर तो वाममार्गी था अतः उसने वेदमंत्रों के अर्थों को बहुत ही खराब तरीके पर लोग के समक्ष उपस्थित किया। अस्तु जो कुछ भी हो मायण, उक्त, महीधर आदि ने वेदों की इच्छा को घटाया ही है—बढ़ाया नहीं।

वेद की इस यज्ञप्रक्रिया का पल्लवन करते हुए ब्राह्मण ग्रंथ श्रौत सूत्र तथा गृह्य सूत्र आदिको में अनेक प्रकार के यज्ञों का वर्णन किया गया है। ये यज्ञ वैदिक हैं और मदा वैदिक ढंग पर ही किए जाते रहे

हैं। मध्यकाल में श्रौतमंत्रों में भी कुछ निम्नतर का प्रयत्न किया गया और इसमें यज्ञ के स्वरूप में कुछ विकार भी आया। वाममार्गी के प्रवर्तन के समय में तो इस विकार का रूप बड़ा भयंकर हो गया था। परन्तु यज्ञो यज्ञ निश्चित समझ लेना चाहिए कि यज्ञ विकार न तो वैदिक यज्ञों के स्वरूप का है और न किसी हालत में वैदिक हो सकता है। यज्ञ तो हर हालत में अवैदिक ही रहा और अवैदिक रहेगा भी। वेदों में ऐसे विकृत यज्ञों के विषय में ऐसे विकृत यज्ञों का वर्णन नहीं। यज्ञका एक छोटासा इतिहास भी उपलब्ध होता है। यह वर्णन संपूर्ण यज्ञ की प्रक्रिया के प्रारंभ पर तो नहीं बल्कि आशिक प्रारंभ और विस्तार पर प्रकाश डालता है। यह इतिहास भी उतना पुराना है कि अन्य धर्मों के जन्म का बीज भी उस समय उपलब्ध नहीं था। "मुष्कोपनिषद्" १।२।१। में कहा गया है कि मंत्रों में त्रिन कर्मों को क्रान्तदर्शी ऋषियों ने देखा उनका यज्ञ में बहुत विस्तार किया गया। वेदा के दो मन्त्र यज्ञों का वर्णन हमें मिलता है। महाराज दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था और दूसरा यज्ञ वर्णा के निमित्त विदेहराज जनक ने कराया था। जनक का यज्ञ उस समय हुआ था जब राज्य में दुर्काल पड़ा था। इनके लम्बे काल में ही नहीं अस्तु उससे भी बहुत पूर्व अर्थात् वेदज्ञान के मानव से प्रकाशित होने के समय से यज्ञ का करना करना वैदिक प्रक्रिया के आधार से बराबर चलता आ रहा है। श्रौतमंत्रों और ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत बड़े बड़े यज्ञों का वर्णन है। कल्पविद्या का विस्तार ही यह बतलाना है कि यज्ञ की प्रक्रिया बहुत विस्तार पा चुकी थी। मंत्र, ब्राह्मण और कल्प के वर्णन से शास्त्रकार यज्ञ की महत्ता का भान स्वयं करा देते हैं। कल्प को जो यज्ञ की बतलाने वाला विज्ञान है, छः वेदाङ्गों में एक वेदाङ्ग माना गया है।

### यज्ञ शब्द का अर्थ और पाश्चात्य विद्वान्

वेदों और ब्राह्मणों में आये हुए यज्ञ का अर्थ पाश्चात्य विद्वान् अंग्रेजी में 'मेक्रीफाइड' करते हैं। लगभग सभी पाश्चात्य विद्वानों ने यज्ञ पद का यही अनुवाद किया है। नीचे कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

ऋग्वेद १।१६।८ में मैक्मिलर ने "यज्ञं देवेभ्यः" पद का अनुवाद The Sacrificial horse which goes to the gods—किया है। पुन

वही यज्ञ मंत्र में यज्ञ' पद आया है और उसका अर्थ हमने Sacrifice ही किया है। मंत्र यज्ञ' में आये 'यज्ञ' का अर्थ यज्ञ Sacrificial post करना है। १५५ ने मंत्र में आये 'अश्वरेण' का अर्थ At the Sacrifice ही किया है। ये प्रमाण मैक्समूलर वन H. v. v. of Ancient Sanskrit 1. 2. 3. 4. 5. में आये के कई पृष्ठों में लिये गये हैं। ऋग्वेद १। १५५ पर यज्ञमन्त्रम वाक्य पर हमें श्री-दत्तवर्ग SBI Vol. XLVI Hymn to Agni पृष्ठ १ पर Sacrifice and Worship अर्थ करना चाहिए इसी पर अपने वेदानुवाद में लिखता है—Agni the perfect sacrifice मैकडानल ने अपनी वैदिक गीटर पृष्ठ ६ पर इसी का अर्थ Worship and sacrifice किया है। ऋग्वेद १। १५५ मंत्र में आये मन्त्रमन्त्रमन्त्रे पर श्री-दत्त वर्ग लिखता है—Whose ordinances for the sacrifice are true। अग्निर्यज्ञस्याध्वर्यस्य चेतन— ऋग्वेद १। १५५ पर पुनः Agni watches sacrifice service अर्थ करता है। श्री-दत्तवर्ग ने ऋग्वेद १। १५५ में यज्ञानाम् का अर्थ 'of sacrifices' ही किया है। मैकडानल ने ऋग्वेद १। १५५ १। १५५ १। १५५ १। १५५ में आये 'यज्ञ' पद का अर्थ sacrifice ही किया है। यह वचन प्रमाण के रूप में मैकडानल के ऋग्वेद १। १५५ की लिपि में (वैदिक गीटर में) देखे जा सकते हैं। आग्न्यंजन कल्पनाम् यजु १५५ में यज्ञ पद कई बार आया है। उसका अर्थ करने हुये विण्टरनिटज ने जिम्मेस्टे डर टर्निट्यन लिटरेचर-भाग प्रथम पृष्ठ १५५ पर sacrifice ही लिखा है। मैकडानल की भी वही स्वीकार है। वह भी अपनी पुस्तक The Religion of the Veda के पृष्ठ ३५ पर इसी का उद्धरण देता है। फ्रान्सिस याण्ट ने अपनी पुस्तक Oriental Philosophy 19३६ पृष्ठ ११ पर ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त का उद्धरण दिया है। उसने भी प्रथम और चतुर्थ मंत्र का अर्थ करते हुये उनमें 'यज्ञ' पद का अर्थ Sacrifice ही किया है। पुनः वह अपनी इसी पुस्तक में पृष्ठ २१७ पर यजुर्वेद २३। ३६-६० मंत्रों के 'यज्ञ' पद का अर्थ Sacrifice करता है। ऋग्वेद १. ६२। ५ में आये 'विदधेयु' और ऋग्वेद १। १५५ में आये 'अश्वरे' पदों का अनुवाद ब्लूमफील्ड Sacrifice करता है। इस प्रकार यहाँ पर यह जान हो गया कि लगभग सभी नामी पाश्चात्य विद्वान् यज्ञ और उसके पर्यायवाची शब्दों का अर्थ Sacrifice करते हैं।

यदि इस पर गौरवना से प्रचार किया जाय तो यह पद  
मनुष्य में ही जग जावेगा कि यज्ञ' पद का यह अर्थ निकलने है  
इसके सम्बन्ध में यही कहना उचित किया जायेगा कि यज्ञ' पद  
पद के पर्यायवाची शब्द इन ही अमरों में निकलने हैं। यज्ञ' पद का  
इसके अर्थ में निकलने है। यज्ञ' पद का अर्थ यज्ञ' पद का अर्थ  
अनुवाद की भावना में पर है। यज्ञ' पद का अर्थ यज्ञ' पद का अर्थ  
मनुष्य शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यज्ञ' पद का अर्थ यज्ञ' पद का अर्थ  
नका है। यज्ञ' पदों में न किमी का अर्थ यज्ञ' पदों में न किमी का अर्थ  
वेदों में ये पद अनेकों बार प्रयुक्त हैं जिनका अर्थ भिन्न भिन्न है।  
यज्ञ' शब्द की व्युत्पत्ति, प्रकार अर्थान्तर का दिखाने का शब्द में  
ब्राह्मण ग्रन्थों लगभग दो ही नामों द्वारा इसका प्रयोग हुआ है। इन  
में यज्ञ' के विविध अर्थ पाये जाते हैं और यज्ञ' शब्द में इन अर्थों  
की गन्ध भी नहीं पाई जाती है। यज्ञ' पद का व्युत्पत्ति निमित्त और  
प्रवृत्ति निमित्त अर्थ पूर्व परिचयों में दिखाना जा चुका है। अश्वत्थी  
का संस्कारात्मक पद इसके किमी भी अर्थों को पूरा करने में असमर्थ  
है। अतः स्वीकार करना पड़ेगा कि अश्वत्थी के संस्कारात्मक पद में  
वैदिक यज्ञ' पद के अर्थ को बनाने की असमर्थता है। उनका ही नहीं  
अश्वत्थी भाषा में कोई भी एक पद इस प्रकार का उपलब्ध नहीं हो  
सकता है कि जो यज्ञ' पद के अर्थों को बनाना सके।

इस संक्रोफाइस पद के प्रयोग में ईसाइयत का पुट

यज्ञ के लिए संस्त्रीपाठम पद के प्रयोग में ईसायन का पार भी है। यज्ञों की विवृति के इतिहास पर दृष्टि डालने और विविधान कैसे प्रारम्भ हुए, उन पर विचार करने में हम वात का परिचय भजो प्रकार मिल जाता है। आर्य लोग वैदिक यज्ञ और अग्निहोत्र आदि का संपादन सदा से करने रहे हैं। वैदिक साहित्य में हम यज्ञ एवं अग्निहोत्र आदि का स्थान बहुत ऊँचा है। आर्यजन प्रतिदिन प्रातः सायं अग्निहोत्र करते हैं। पारमियों ने जिस प्रकार बहुत से वैदिक सिद्धान्तों को अपने में लिया, उसी प्रकार इस कृत्य की शिक्षा भी उन्होंने अपने मत में वैदिक सिद्धान्तों से ली। हमें व भी बहुत आवश्यक समझते थे। इस कृत्य का ठीक ठीक अर्थ पारमियों ने समझा हो, हममें कुछ सन्देह है। इस यज्ञक्रिया का रूप पारमियों में भी उसी प्रकार विगड



यद्यपि जिस प्रकार मरुत्या वृद्ध के समय में इसका रूप भारत में विरार तथा या पारमियों के अग्निपूजक कहे जाने का भी म्यान् यही कारण है। पारमियों में यह यज्ञकिया यज्ञदियों ने मोखी और इनके हाथों में इसका रूप और भी दृष्टि हो गया। मामभक्षी होने के कारण यज्ञदियों ने माम की आहुतिया देनी प्रारंभ की। परन्तु यह बलिदान वे करने अग्नि में ही थे। बाइबिल में इस वान का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। यात्रा की पुस्तक १५-२२ में ऐसा लिखा है कि ईश्वर ने मूसा से कहा— मेरे लिए तू मृत्तिका की एक वेदी बना-वेगा और उस पर जलती हुई शान्ति की आहुतिया देगा। अपनी भेड़ों और बेलों को चढावेगा। सब स्थलों पर जहाँ पर मैं अपना नाम लिखू तेरे पास आऊँगा और तुम्हें आशीर्वाद दूँगा। पुनः पैदा-इस की पुस्तक ८-२० में लिखा है कि 'और तू ने ईश्वर के लिए एक वेदी बनाई और उसने प्रत्येक पवित्र पशु-पक्षी को लेकर प्रज्वलित अग्नि में वेदी पर आहुतियाँ दीं'। मुसलमानों ने यह यज्ञ-कृत्य का विकृत रूप यज्ञदियों से ग्रहण किया, और अग्नि का उपयोग न समझ सके, अतः उन्होंने अपने बलिदानों में अग्नि को दूर कर दिया। केवल पशुओं का वध रह गया। बाइबिल में चूँकि पूर्वोक्त दिग गए प्रमाणों में यज्ञ का विकृत रूप स्पष्ट पाया जाता है, अतः उसी के आधार पर हम मैकीफाइम की कल्पना बलिदान के भाव को लेकर की गई होगी। यह है मैकीफाइम पद के प्रयोग में निहित ईसायत का पुट।

### पादचात्य विद्वानों की कुछ यज्ञसम्बन्धी विकृत धारणाएँ

पादचात्य विद्वान सदा अश्वमेध, गोमेध और पुरुषमेध शब्दों के अर्थ उल्टे ही लेते रहे हैं। इनकी समझ में शायद यह नहीं आया कि 'मेधा' पद का अर्थ ज्ञान का विचार है। अश्व पद का भी घोड़ा ही अर्थ नहीं है अग्नि अर्थ भी है। साथ ही 'गो' शब्द के भूमि आदि भी अर्थ हैं। जिसमें इन पदार्थों का ज्ञान हो वे इन सम्बन्धी यज्ञ हैं। उन्होंने किस प्रकार उल्टे अर्थ लिए—इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन यहाँ पर कराया जाता है। मैक्समूलर अपनी पुस्तक History of Ancient Sanskrit Literature, p 553 में ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १६२ वे सूक्त का अनुवाद इसी धारणा से करता है। प्रथम मन्त्र निम्न प्रकार है।—

मा नो मित्रो वरुणो अयं मयूरि-इ  
अभक्ष्य मन्त्रं परिभ्यन् ।  
यदाजिना देवजानस्य मने  
प्रवक्ष्यामो विदये वीर्याणि ॥

इसका अर्थ मैक्समूलर निम्न प्रकार करता है—

May Mitra, Varuna, Aryaman, Ayu Indra, the Lord of the Ribhus and the Maruts, not rebuke us because we shall proclaim at the sacrifice the Virtues of the horse sprung from the gods.

इसके आगे के मन्त्रों का अर्थ करने हुए मैक्समूलर ने अपने माने हुए अश्वमेध का पूरा चित्रण किया है। उसी प्रकार ब्लूमफील्ड ने Religion of the Vedas में पृष्ठ १८६ पर यज्ञवेद के २३व अध्याय के ६, १०, ४३, ४८ मन्त्रों का ट्रांसलेशन करते हुए भी उसी धारणा का परिचय दिया है। वह संगति लगाने हुए करता है—At the horse-sacrifice two priests ask and answer यद्यपि मन्त्रों में इस प्रकार का विषय का विचार नहीं है, फिर भी इन वाक्यों में वह इस वान को भलका देता है। वह कहता है कि अश्वमेध में ये ऋत्विजों के प्रश्नोत्तर हैं। वह 'गोस्तु मात्रा न विद्यते' का अर्थ करता है—The measure of cow is (quite) unknown वस्तुतः यहाँ पर 'गो' का अर्थ वाणी है। परन्तु वह cow ही अर्थ करता है। 'अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः' का अर्थ वह—This sacrifice is the navel of the universe करता है। पुनः 'अयं गोमो अश्वस्य रेतः' का अर्थ वह—This Soma (the intoxicating sacrificial drink) is the seed of the lusty steed (God Indra) इन अर्थों की यहाँ पर यद्यपि कोई समुचित संगति नहीं लगती फिर भी उसने ऐसा अर्थ किया है। मोनियर विलियम्स "नम्माद्यजान्" में Mystical Victim Purusha अर्थ समझता है। पादचात्य विद्वानों के ही चरण चिह्नो पर चलने वाले 'The Vedic Age' के कर्ता महोदय भी पृष्ठ २३८ पर लिखते हैं—Animal sacrifice are indicated by the Aprisuktā, and the horse-sacrifice was undoubtedly performed. The Purusha sukta does not describe an actual human sacrifice but merely preserves in all probability, the memory of it, as it was per-



हिन्दू यज्ञ कर्म है। पुराण पद का अर्थ वैदिक-साहित्य में आत्मा और परमात्मा दोनों है। गोपथ ब्राह्मण कहता कि यज्ञाति परमेश्वर ने पुरुषों को विराट नाम की आरक्षण किया। वाक्य इस प्रकार है—यः (यज्ञाति) परमेश्वरने पुरुषं विराटि नामावन्त गो० पू० ४० अ० १३३१ से भी इसी बात की पुष्टि होती है। पुरुष-मेव ना अर्थ समिधा या मा, परमात्मा और ब्रह्माण्ड सम्बन्धी विज्ञान है। इसी अर्थ यज्ञवद ३१ अध्याय जिसका नरमंथ कहते हैं, वह विराट का ही वर्णन करता है। वहाँ पर किसी पुरुष का साक्षर यज्ञ करने की कोई बात भी नहीं है। आप्रीमन्त्र (ऋग्वेद १०।११० मन्त्र तथा अन्य) पशुओं की बलि का प्रतिपादन करते हैं—यह यज्ञ है। यह उस विषय कि आप्री यज्ञ का अर्थ ऐसा करने वाले को ज्ञान नहीं है। वाक्य ने ८।१।६ पर ऋग्वेद १०।११० सूक्त का हवाला देते हुए जो लिखा है, वह वहाँ पर देखना चाहिए। ब्राह्मण ग्रन्थ भी आप्री का अर्थ ऐसा नहीं करते हैं जैसा कि ये लोग कर लेते हैं। ऋग्वेद १०।११० सूक्त में दध्म, अग्नि, तनूतपान्, इवा, वहि, देवी-द्वार, उषामानवता, देव्यातोनागो, प्रचनमो, निम्नादेव्यः, स्वाया, वन-स्पतिः और स्वाहाऊतयः आदि देवता है। इनमें किसी में भी पशु-बलि का भाव नहीं निकलता। ऋग्वेद १।२।४३ में भी पुरुषमंथ की मिट्टि नहीं होती। उस मंत्र का देवता समिधा है। पुरुषमंथ का भ्रम इसलिए हो रहा है कि वैदिक एज के लेखक के मस्तिष्क में शून-शेष का इतिहास गूँज रहा है। ऋग्वेद के २९वें मण्डल का देवता पव-मान सोम है। वहाँ भी शूनःशेष सम्बन्धी कोई घटना नहीं दीखती। वस्तुतः ये मंत्र वात पादचात्यों की वन्दना मात्र है, जो वेदों के वास्तविक अर्थ की उनकी अनभिज्ञता के कारण उठी है। वैदिक-साहित्य में प्रत्येक उत्तम श्रेष्ठ कर्म का नाम यज्ञ है। शतपथब्राह्मण १।३।१।५ में लिखा है कि यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। यही वास्तव में यज्ञ का रहस्य है। यज्ञवद का १८वा अध्याय ही “यज्ञेन कल्पन्ताम्” से भरा है। यदि वहाँ यज्ञो मैत्रीफारम अर्थ किया जावे, तो एक मंत्र की भी मगति नहीं लगेगी। यह अध्याय ही प्रकट कर रहा है कि वेद में यज्ञ शब्द से सभी श्रेष्ठतम कर्म विज्ञानादि अभिप्रेत है। इसी लिए यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि जितने मंत्रों में पादचात्य विद्वानों ने यज्ञ, अध्वर, मख, विदथ आदि शब्दों के अर्थ sacrifice किए हैं—वै सभी अर्थ अप्रामाणिक और अनर्गल है।

## प्रमाण सन्दर्भ

१. यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। १३१५
२. आहूतिभिरेव देवान् प्रीणानि दक्षिणाभिमनुयदेवान् ब्राह्मणो-  
लुश्वयोऽनवानान। श० २।२८।६; इयावं देवा अहं  
देवा अथ ये ब्राह्मणा शुश्रुवान्मोऽनवानामो मनुष्यदेवाः। श०  
२।२।२।६; ४।३।४।४
३. यज्ञं कस्मात् ! प्रथयानं यजति कर्मेति नैरुक्ता याञ्चो भवति  
इति वा यजुहन्तो भवतीति वा बहु कृष्णाजिन इत्योपमन्यत्रो  
यजूंष्येन नयन्तीति वा। नि० ३।४।१६
४. देवान हवं यजमानान् सपत्ना अमुरा दुधर्वाञ्चक्रुः... ते न  
शोकुर्धूवितुं... अध्वरो नाम। श० १।४।१।४०
५. मख इत्येतद्यज्ञनामधेयं छिद्रं प्रतिषेध सामर्थ्यात् छिद्रं समि-  
त्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः। गोपथ २।५
६. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः। यजु० ३१।१५
७. इव्य देवता त्यागः
८. यजति चोदना इव्यदेवताकियं समुदायं कृतायन्वात्। मीमासा  
४।२।२८-२९
९. यः समिधा य आहुती यो वेदेन दवाश मर्त्तो अग्नये। यो नमसा  
स्वध्वरः... ऋग्वेद ८।१६।५
१०. वाचं शुश्रूवा अफलामपुष्पाम्। श्रु० १०।३।१।५
११. अर्थं वाचः पुष्पफलमाह—याज्ञवेवते पुष्पफले देवताप्यारमे वा।  
निरुक्त १।२०
१२. सर्वदर्शनेषु च सर्वे मंत्रा योजनीया। कृतः स्वयमेव भाष्यकारेण  
सर्वमंत्राणां त्रिप्रकारस्य विषयस्य प्रवर्शनाय—अर्थं वाचः पुष्प-  
फलमाह—इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्।
१३. मन्त्रेषु यानि कर्माणि कवयोऽपश्यन् तानि त्रेतायां बहुधा सत-  
तानि। मु० १।२।१
१४. अथाहवस्य विद्युद्रूपेण व्याप्तस्याग्नेश्च विद्यामाह।



## द्वितीय प्रकरण

### यज्ञों का उद्भव

द्वयममय मय ज्ञान-विज्ञान के भण्डार है। वेदों में ही विविध यज्ञों का भी वर्णन पाया जाता है। वेदों में ही यज्ञ का उद्भव हुआ। यह कहना कि यज्ञ की प्रक्रिया बाद में वर्णित की गई होगी ठीक नहीं। वेदमयों के ग्रंथ जैसा पूर्व प्रकरण में बताया जा चुका है विविध प्रक्रिया में होते हैं। इन विविध प्रक्रियाओं में यज्ञ का भी प्रकरण है। यज्ञ का वेद में उसी प्रकार सम्बन्ध है जिस प्रकार देवता और अग्न्याम प्रकरणों का है। प्रथम तो जो लोग वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं का इतिहास लिखते हैं स्वयं एक गलत मार्ग का अनुसरण कर रहे हैं परन्तु यह कहना उनका मनोरम और अत्यधिक आपत्तिजनक है कि यज्ञार्थ की प्रक्रिया नवीन है। परन्तु अग्न्याम और अग्नि-देव और बाद में यज्ञार्थ की कल्पना की गई—यह ठीक नहीं। वेद मंत्रों में दोनों विषय तब से ही हैं जब से वेद मंत्र हैं। आगे पंखे कहना अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है। ऋग्वेद १.७.३१.४ में प्राये वान्तं शुभवान् अश्वामपुष्याम् और उस पर किए हुए गान्त के ग्रंथ में ही मिलता है कि यज्ञप्रक्रिया भी वेदवाणी का पुरुषपर उसी प्रकार है जिस प्रकार अन्य प्रक्रियाएँ हैं। यदि यज्ञों की कल्पना उन इतिहास लिखने वालों के अनुसार बाद की है तो फिर वेदों में विशेष यज्ञों के नाम किस प्रकार प्राये। क्या वे बाद में उनमें मिला दिए गए हैं। ये लोग वस्तुतः वेद का पोषण नहीं कर रहे हैं बल्कि वेद की मर्यादा को नष्ट कर रहे हैं। एक पुस्तिका छापी भी छापी गई जिसका नाम है 'वेदार्थों की विविध प्रक्रियाओं का ऐतिहासिक अनुशीलन'। इस पुस्तक में दिखाये गये कतिपय विचार वैदिक धारणा के प्रतिहत हैं और भ्रांति उत्पन्न करने वाले हैं। यज्ञ प्रयोगात्मक विज्ञान है। इसमें लगभग सभी विज्ञानों का समावेश हो जाता है। कोई भी ज्ञान प्रयोग को लेकर समकता है। जहाँ अग्न्याम और देवता विज्ञानों की

प्रावर्त्यकता है वहाँ यज्ञ विज्ञान भी परमावश्यक है। यज्ञार्थों में मन्वाय मर्यात के लिए ही प्रकरण मानते हैं। उनमें यह माना है। यज्ञ का उद्भव वेदमयों में हुआ है। उनके प्रवर्तित विज्ञान यज्ञ देने का वात यह है कि वेदों में मृत्ति-विज्ञान और मृत्तु का प्रवर्तित यज्ञ पर आधारित है। परन्तु मैं यह यह यह उनके यह यह यज्ञ-धारणा के कार्य पदार्थ जब उत्पन्न हो जाते हैं तो वेदों के यज्ञ द्वारा मृत्ति का विकास चलता है। यज्ञों में यज्ञमयजन्त देव का एक बहुत उत्तम भाग है कि वेदों में यज्ञार्थ अग्नि में यज्ञ का प्रसार बनानी है। दूसरा भाव यह है कि विद्वत् जात्यों द्वारा और यज्ञमयों प्रक्रिया में यज्ञ अर्थात् समार के पदार्थों का मग्निकरण अग्नि करनी है। यजुर्वेद ३.१.१५ में यह भावना पुष्ट हो गई है और लिखा गया है देवी शक्तियों ने समारम्भी यज्ञ का विस्तार करने हुए पुरुष को उसमें पुरुषरूप में बाधा। अर्थात् समार के भोक्ता रूप में बाधा। वेदों में विराटरूप में जो समार की उत्पत्ति का वर्णन पाया जाता है वह यज्ञ की प्रक्रिया का रहस्य बताता है। देवी शक्तियों का महान् यज्ञ होकर मृत्ति का उत्पादन होता है। यजुर्वेद १.१.१.१. अग्न्यामये विश्व-कर्मा भोवन का यज्ञ वर्णित है। यज्ञ पर वस्तुतः यज्ञ रूप में समार की रचना आदि का वर्णन है। यास्कान्वय ने भी विश्वकर्मा भोवन के यज्ञ का वर्णन निम्न में किया है। वस्तुतः यह यज्ञ क्या है? विश्वकर्मा अर्थात् विश्व है कर्म जिसका अथवा समस्त विश्व सम्बन्धी कर्मों वाला अथवा विश्व का कला भगवान् ही विश्वकर्मा है। वह भोवन इसलिए है कि भुवन का कर्ता, उसमें व्यापक और उसकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय आदि का करने वाला है। वह विश्वकर्मा भगवान् जगत् के समस्त पदार्थों की मग्नित लगाना है। वही विश्व का कर्ता, धर्ता और हर्ता है। यह विश्व उसका यज्ञ है।

एक प्रश्न यह उठता है कि विश्व की रचना को यज्ञ क्यों कहा गया? इसका कारण क्या है? समाधान इसका यह है कि वेदों में पुरुषसूक्त से मृत्ति रचना पर प्रकाश डाला गया है। पुरुषसूक्त में वर्णन जो कुछ भी किया गया है विराट् और यज्ञ के रूप में किया गया है। यज्ञ में देव-पूजा की भावना है। जहाँ मग्निकरण है वहाँ देवपूजा भी है। उसी प्रकार पुरुष जीवात्मा और पुरुष परमात्मा के बिना विराट् वा मृत्ति यज्ञ का कार्य चल नहीं सकता है। इस

[illegible]

पश्च सूक्त जो चारो वेदों में पाया जाता है, क घनिरिक्त्त अन्य स्थलों पर भी वेदों में यज्ञ का वर्णन है। ऋग्वेद १० मंडल के १३०वें सूक्त का देवता भाववन्त प्रथान् मन्ता है। इसमें मृष्टि का वर्णन यज्ञात्मक रूप में किया गया है। सूक्त में यज्ञ रूपी वस्त्र का विस्तार बड़ मनोज्ञ रूप पर किया गया है। इसमें यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले वैदिक छन्दा, देवताओं आदि का वर्णन किया गया है। पहले मंत्र में बताया गया है कि मृष्टि की देव शक्तियाँ जिस यज्ञ को बुन्ती हैं

यज्ञ का हम प्रारम्भ नहीं विस्तार करने हे

प्रश्न यहाँ पर यह उठता है कि फिर वह विस्तार क्या है। उस का उत्तर यह है कि देवता आदि सभी यज्ञ के उपकरणों के माध्यम से संगीकरण, देवपूजा और दान का समन्वय करना। यह विस्तार किस प्रकार किया जाता है वेद स्वयं इस पर प्रकाश डालता है। ऋग्वेद १०।८३।२ में कहा गया है " कि जो मनुष्य जान से श्रावित हो जाता है वह यज्ञों में उन देवों का संगीकरण करता है अथवा उन्हें तृप्त करता है। इस मंत्र में देवों को यज्ञ दाना बनाकर प्रयाग करने और यज्ञ का करने की भावना मिलता है। विष्णु यज्ञ का महान् देव है और महती शक्तियों की प्राप्ति के लिए उनके निमित्त यज्ञ का विस्तार किया जाता है। इस भाव को अथर्ववेद १३।१।१२ में इस





[illegible]

१. देवा यज्ञस्तन्वाना अवधत्तन पुरां पशुम् । यजु० ३१।१५।३१  
 २. विश्वकम् । यजु० १७।१७.२२  
 ३. मंत्रेषु यानि कर्माणि कवयोऽपश्यन् तानि त्रेतायां बहूया  
 सन्ततानि । मु० १।२।१  
 ४. यज्ञे यज्ञे स मर्यादं देवानामपयति । यः मुष्मदींश्च भुत्तम प्रा  
 विवासयेनान् । ऋ० १०।८३।२  
 ५. त्वमिन्द्रस्त्वं महोदस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापति । तुभ्यं यज्ञो  
 विनायते..... अथर्व० १७।१।१८  
 ६. यज्ञमिमं वर्धयता गिरः सभाध्येण हविषा जुहोमि । अथर्व०  
 १६।१।१२  
 ७. ऋच साम यज्ञमहे यास्यां कर्माणि कुर्वते । एते सदसि राजतो  
 यज्ञ देवेषु यच्छतः ॥ अथर्व १५।१।१  
 ८. सन्त ते आने समिधः सन्त जिह्वा सन्त ऋचयः सन्त धाम  
 प्रियाणि । सन्त होत्रा सन्त रात्वा यजान्त सन्त योनीरापूजस्व  
 धृतेन स्वाहा । यजु० १७।७६  
 ९. धाना कर्मभ सक्तवः परोवापः पयो दधि ।  
 सोमस्य रूपम हविष्यं प्रामिक्षा वाजिनश्मधु ॥ यजु० १६।२१

## विनियोग-विज्ञान

विनियोग-विज्ञान एक जटिल विज्ञान है। विनियोग का अर्थ नाल  
मेल बंधाना वा निश्चितीकरण है। किम मन्त्र के साथ क्या क्रिया  
वा कर्म किया जावे इसका नाल मेल बंधाना विनियोग है। इस  
विज्ञान में मन्त्र के अर्थ और यज्ञ कर्मों की गति देखकर निश्चय  
किया जाता है। यह विज्ञान वस्तुतः वेद के छः ऋत्यों में एक ऋतु  
है। इसी का नाम कल्प है। वेदज ऋषियों ने जो ब्रह्मदर्शी और  
साक्षात्कृद्गर्मा ये मन्त्रों का सम्बन्ध उनकी भिन्न भिन्न क्रियाओं के  
साथ जोड़ा। कल्प का अर्थ साधारणतया लोग कल्पना करते हैं।  
परन्तु यह कल्पना इतनी सरल नहीं यह समर्थ कल्पना होती है और  
यज्ञ एवं कर्मकाण्ड की समृद्धि के लिए और स्व-समृद्धि के लिए होती  
है। जिस क्रिया के बताने में मन्त्र समर्थ है और उसका अर्थ मेल  
खाता है उसी के साथ यह कल्पना होती है। इस प्रकार का विनि-  
योग विज्ञान जो निकाला गया उसी का नाम कल्प है। ऋषियों ने  
वेद मन्त्रों का अनुसंधान करके ही इस शास्त्र को जन्म दिया। इस  
अनुसंधान का सुसंगत प्रकार है। वह यह है कि यज्ञ प्रक्रिया के  
अनुसार वेद मन्त्रों का अर्थ कर उसे कर्म से सम्बन्ध जोड़ने में वेद  
वाणी का अर्थ भी उसी ढंग पर किया जाता है। वेद की वाणी को  
याज्ञिक लोग तीन प्रकार में विभक्त करते हैं। वे हैं मन्त्र, ब्राह्मण  
और कल्प। मन्त्र का अर्थ है वेद की मन्त्रियों के मन्त्र। इन मन्त्रों  
में विविध प्रकार के सत्य ज्ञान-विज्ञान भरे पड़े हैं। वेद मन्त्र परम  
कारुणिक भगवान् के दिए हुए हैं। ये किसी मनुष्य की रचना नहीं  
हैं। उनकी आधार पर समस्त जानी और कर्मा ही सिद्धि होती है।  
ये मन्त्र याज्ञिक प्रक्रिया के ऋक्, यज्ञ और साम नाम से परिभाषित  
हैं। ये त्रयी विद्या इसी लिए कहे जाते हैं। वेद चार हैं ऋक्, यजुः,



... किन्तु यह भी सत्य है कि ...  
... किन्तु यह भी सत्य है कि ...

### विनियोग की वैज्ञानिकता

विनियोग की वैज्ञानिकता का प्रयोग हमारे ...  
... किन्तु यह भी सत्य है कि ...  
... किन्तु यह भी सत्य है कि ...

पर विवाह के प्रकार की प्रक्रिया नहीं आये। इस पर वास्तविक विचार करें।

त्रय विवाह में 'महिल विद्वानाम' मूर्ति गन्धर्वमन्त्र मन्त्रियों ...  
... किन्तु यह भी सत्य है कि ...  
... किन्तु यह भी सत्य है कि ...

अग्नि	—	भुवो का अधिपति
इन्द्र	—	उद्योतो का अधिपति
यम	—	पुत्रो का अधिपति
वायु	—	अन्नस्थ का ..
सूर्य	—	धनीक का ..
चन्द्रमा	—	नक्षत्रों का ..
वसुधा	—	वह्ना वेद का ..
मित्र	—	मन्त्र का ..
वसुधा	—	जनों का ..
ममृद्र	—	नदियों का ..
प्रज्ज	—	माय्या का ..
माम	—	श्रीधिया का ..
मविता	—	प्रसवो का ..
मृद	—	पशुओं का ..
स्वाहा	—	रूपों का ..
वसुधा	—	पर्वतों का ..
ममृद्र	—	गणों का ..
पितर पिना.....		

यह अभ्यासान्त प्रदान विचार है। विचार में इसी धर्म ...  
... किन्तु यह भी सत्य है कि ...



—निष्कन्त देवतकाण्ड

— 477 —

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।

—अथ संवत्तीय मन्त्रांशमवर्णयामि ।

—4181417 6 2.6

श.प्र.प्र. २-४-५४

—शावरभाण्ड १०६।३

—महर्षि दयानन्द—ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका

१—वेद मन्त्र का प्रतिपादक अथं देवता है ।

३—विधि—शब्द मात्र जिसके साथ हवि का सम्बन्ध है वह देवता है।

५—शब्द मात्र देवता है ।

इस प्रकार देवता के भेद से विनियोग में भेद स्वाभाविक है।

विनियोग नियत, अनादि और अपरिवर्तनीय नहीं है

प्राचीन विनियोग में दत्तनाभेद प्रोक्त विनियोग का भेद वचनाया

गया। अथ विनियोग की परिचर्यानीयता पर विचार करना अपेक्षित है। विनियोग वस्तु। परिचर्यानीय है निश्चित नहीं। वे अनादि ता कहें नहीं जा सकते बल्कि एक मन्त्र भिन्न भिन्न कार्यों में विनियुक्त है। जहां यह ध्यान रखने की बात है कि यदि मंत्र यज्ञ उत्पत्ति ही है जितने इन श्रोत और गृह्यसूत्रों में लिखे हैं तब तो नये विनियोगों का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। परन्तु यदि इनके अतिरिक्त उत्तम श्रोत युक्तियुक्त कर्म है तो फिर उनके लिए भी वेद मन्त्रों का विनियोग युक्तियुक्त रूप पर किया जा सकता है। ऐसा करने में यह सूत्रगम् मित्र होता कि विनियोग निम्न नहीं। श्रोत सूत्रों में गृह्यसूत्रों का विनियोग नहीं और गृह्यसूत्रों में श्रोत का विनियोग नहीं, दोनों कर्म पृथक् पृथक् हैं परन्तु एक ही मन्त्र का श्रोत में अन्य कर्म में विनियोग है और गृह्य में अन्य कर्म में। यदि विनियोग निम्न होता तो ऐसा कैसे सम्भव हो सकता। कर्णवध संस्कार का वर्णन श्रोत का तो विषय ही नहीं परन्तु गृह्यसूत्रों में नहीं है और न इनमें किसी मन्त्र का विनियोग ही है। आयुर्वेदादि ग्रन्थों में कानों की व्रीधना लिखा है। वही कान और वही नाक का व्रीधना उल्लेख होता है। आचार्य नयानन्द ने इस संस्कार की आवश्यकता का दृष्टि दृष्टि इस का विधान किया और 'उममें भद्र कर्णभिः' ऋग्वेद १।८ सूक्त का मन्त्र तथा ६।७५ सूक्त का 'वक्ष्यन्ती वेदाः—मन्त्र का विनि-

अपने मन्त्र-प्रकाश और मन्त्र-विधि श्रवण में मन्त्र-प्रकाश  
की आहुतिया के साथ इन मन्त्रों में आहुतिया देना लिखा है। मन्त्र-  
प्रकाश तथा मन्त्र-प्रकाश में लिखा है—यदि अधिक आहुतिया इनी  
हो तो इन दोनों मन्त्रों में इवे। मन्त्र-प्रकाश मन्त्र-प्रकाश में मन्त्र-प्रकाश  
मन्त्र-प्रकाश में मन्त्र-प्रकाश को मन्त्र-प्रकाश के आदेश देन में विनियुक्त है।  
पृ० ४८ पुनः पृ० २३७ पर लिखा है कि अग्नि कर्त्तव्य भक्त म  
जायावती को उस 'तन्मवितुर्वरेण्यम्' मन्त्र का योग करवाना  
चाहिए। पुनः पृ० २३८ पर इसी का पात्र का लेकर ब्रह्मपात्र में  
जाड़ने में विनियोग किया है। कोषोत्कीर्ण १।३ में तन्मवितुर्वरेण्यम्  
'इत्येना सप्रणवा अर्धचण्डोत्तवानम्' ऐसा लिखा है तथा आगे  
उसा स्थान पर विनाह प्रकरण में प्राशन में विनियुक्त है तथा  
आश्वलायन श्रौतसूत्र ८।१ में लिखा है कि वैश्वदेवमन्त्र में प्रतिप-  
त्त के ये प्रथम और द्वितीय हैं। 'द्वैतवित' यह मन्त्र यजुर्वेद में  
तीन बार आया है। यजुः ६।१ में यह मन्त्र कात्यायन-श्रौतसूत्र  
१।१।११ के अनुसार वाजपेय में विनियुक्त है। पुनः यजुः ३१।१  
में पुरुषमेध में विनियुक्त है। फिर यजुः ११।३ में अग्निचयन में विनि-  
युक्त है। यहाँ एक ही मन्त्र का स्वयं एक ही श्रौतसूत्रकार ने भिन्न  
भिन्न कार्यों में विनियोग किया है। इसके अतिरिक्त ऋषि  
दयानन्द ने वेदी के चारों ओर जल छिड़कने में इसका  
विनियोग किया है। द्राह्यायण गृह्यसूत्र २।१।१६ और  
बोधायन १।३।२५ तथा अन्य गृह्यसूत्रों में भी ऐसा ही  
लिखा है। इसी भाँति ऋग्वेदीय ८।२८।११ मन्त्र 'तन्वा यामि'  
आश्वलायन श्रौतसूत्र ८।१७ के अनुसार वाणप्रधामो चानुमांस्यो  
में वरुण सम्बन्धी हरिर्वाय है। इसी का आचार्य दयानन्द ने  
सामान्य-प्रकरण में विनियोग किया है। गृह्यसूत्र में भी ऐसा है।  
लगभग सभी वेदों में मन्त्रों का चूदाकर्म, विवाह आदि में इसमें विशेष  
आहुतिया देनी लिखा है। ऐसे ही 'नवो नवो भवति जायमानः'  
यह ऋग्वेद १०।८।६ का मन्त्र है। इसका विनियोग दृणाश में  
चन्द्रमा सम्बन्धी चरु में है। परन्तु मानव-श्रौतसूत्र में यह मन्त्र  
राज्यदमगतीनेष्टि में विनियुक्त है। शांखायन १८।३२।६ में  
भी दृणाशकृत में चान्द्रमसचरु में ही इसका विनियोग है परन्तु पाप-  
यश्मगृहीत के लिए अमावस्या में आदित्यचरु के निवाप में यह उप-  
युक्त है। यदि विनियोग निश्चित और निर्य होता तो यह भिन्न भिन्न

अपने मन्त्र-प्रकाश और मन्त्र-विधि श्रवण में मन्त्र-प्रकाश  
की आहुतिया के साथ इन मन्त्रों में आहुतिया देना लिखा है। मन्त्र-  
प्रकाश तथा मन्त्र-प्रकाश में लिखा है—यदि अधिक आहुतिया इनी  
हो तो इन दोनों मन्त्रों में इवे। मन्त्र-प्रकाश मन्त्र-प्रकाश में मन्त्र-प्रकाश  
मन्त्र-प्रकाश में मन्त्र-प्रकाश को मन्त्र-प्रकाश के आदेश देन में विनियुक्त है।  
पृ० ४८ पुनः पृ० २३७ पर लिखा है कि अग्नि कर्त्तव्य भक्त म  
जायावती को उस 'तन्मवितुर्वरेण्यम्' मन्त्र का योग करवाना  
चाहिए। पुनः पृ० २३८ पर इसी का पात्र का लेकर ब्रह्मपात्र में  
जाड़ने में विनियोग किया है। कोषोत्कीर्ण १।३ में तन्मवितुर्वरेण्यम्  
'इत्येना सप्रणवा अर्धचण्डोत्तवानम्' ऐसा लिखा है तथा आगे  
उसा स्थान पर विनाह प्रकरण में प्राशन में विनियुक्त है तथा  
आश्वलायन श्रौतसूत्र ८।१ में लिखा है कि वैश्वदेवमन्त्र में प्रतिप-  
त्त के ये प्रथम और द्वितीय हैं। 'द्वैतवित' यह मन्त्र यजुर्वेद में  
तीन बार आया है। यजुः ६।१ में यह मन्त्र कात्यायन-श्रौतसूत्र  
१।१।११ के अनुसार वाजपेय में विनियुक्त है। पुनः यजुः ३१।१  
में पुरुषमेध में विनियुक्त है। फिर यजुः ११।३ में अग्निचयन में विनि-  
युक्त है। यहाँ एक ही मन्त्र का स्वयं एक ही श्रौतसूत्रकार ने भिन्न  
भिन्न कार्यों में विनियोग किया है। इसके अतिरिक्त ऋषि  
दयानन्द ने वेदी के चारों ओर जल छिड़कने में इसका  
विनियोग किया है। द्राह्यायण गृह्यसूत्र २।१।१६ और  
बोधायन १।३।२५ तथा अन्य गृह्यसूत्रों में भी ऐसा ही  
लिखा है। इसी भाँति ऋग्वेदीय ८।२८।११ मन्त्र 'तन्वा यामि'  
आश्वलायन श्रौतसूत्र ८।१७ के अनुसार वाणप्रधामो चानुमांस्यो  
में वरुण सम्बन्धी हरिर्वाय है। इसी का आचार्य दयानन्द ने  
सामान्य-प्रकरण में विनियोग किया है। गृह्यसूत्र में भी ऐसा है।  
लगभग सभी वेदों में मन्त्रों का चूदाकर्म, विवाह आदि में इसमें विशेष  
आहुतिया देनी लिखा है। ऐसे ही 'नवो नवो भवति जायमानः'  
यह ऋग्वेद १०।८।६ का मन्त्र है। इसका विनियोग दृणाश में  
चन्द्रमा सम्बन्धी चरु में है। परन्तु मानव-श्रौतसूत्र में यह मन्त्र  
राज्यदमगतीनेष्टि में विनियुक्त है। शांखायन १८।३२।६ में  
भी दृणाशकृत में चान्द्रमसचरु में ही इसका विनियोग है परन्तु पाप-  
यश्मगृहीत के लिए अमावस्या में आदित्यचरु के निवाप में यह उप-  
युक्त है। यदि विनियोग निश्चित और निर्य होता तो यह भिन्न भिन्न







[illegible]





यहीं। श्रोतृसूत्रों का ही कम लगभग ब्राह्मण ग्रन्थों में भी दिखलाई पड़ता है। यही यज्ञ याग वही भी वर्णित मिलते हैं।

श्रोत सूत्रों में वाममार्ग आदि के समय में वस्त्र में प्रक्षेप किये गए हैं। उन प्रक्षेपों को निकालकर वेदान्तकाल का ही प्रयत्न करना चाहिए। प्राक्कृत और अनुपयोगी विग्रह भागों को छोड़ देना चाहिए। इन यज्ञों की विधियाँ में कुछ पौराणिक पंडित अपनी उन्नीसवीं तथा ऊटपटांग बातें बोलते हैं। उन सबकी स्थान नहीं देना चाहिए। वेदिक मंत्र रिता आदि से रहित होने हैं। परन्तु पौराणिक पांडित्यों पर वाममार्ग की छाप है अतः वे पशु आदि को यज्ञ में डालना भी मानते हैं। यह मन्त्र और धार्मिक एवं सबका व्याज्यकर्म है। यज्ञवेद के भाग्य में ब्राह्मण से ब्राह्मण और काव्यायन श्रोत सूत्र के नाम पर अनेक अनर्थक बातों को यज्ञों में करने की प्रणाली दी है और यन्त्राद्य भी उसी प्रकार कर दिया है। यह सबका व्याज्य है। साधनार्थ ने कान्धर्वा भाग्य में भी उस प्रकार की अनर्थक बात यज्ञों के प्रसङ्ग में लिखी है। वे किसी भी प्रकार मान्य नहीं हैं। उसी प्रकार काव्यायन आदि की विधियाँ भी सम्भारा में व्याज्य हैं। रिता का वस्त्र के द्वारा आधान होता है। साधन रिता के द्वारा दान नहीं। यह वस्त्र नकरी, मांस आदि नहीं है कि कसा दान हो। दान का अर्थ है। 'सामवेद निर्वानिपूर्व परस्पर कन्दात्मम्' अर्थात् अपना योनिकार साधन दूसरे को देना। रिता का मन्त्र भी इसी के लिए किया ही रहता है। यह धर्मिकार के विना दान देना और न दे सकते हैं। कन्दा निर्वानिपूर्व। यही वस्त्र का गुणसामान्यार विचार में यह जानते हैं। यह धर्मिकार मन्त्र रिता का है नही कि वे जो वस्त्र का दान है। यह कन्दा का दान नहीं होता है। कन्दा दान का अर्थ है—रिता—साधन—अन्तर्गत के द्वारा कन्दा का यह रूप में दान। इस प्रकार वाममार्ग के प्रकरण में काव्यायन में भी भी बात लिखी ही गयी है और वेदविग्रह है इनके छोड़ देना चाहिए। यज्ञ में रिता और पशु आदि कर। इस वस्त्र का निगम विचार में मैं अपनी प्रत्यक्ष—विचार। इन और आदि मानव—दान का दानार्थ, प्रक्षेप—मन्त्र—धर्मिकार कर नही है। इसी—उत्तम देवता चाहिए। इसमें पशु प्रकरण में भी इस पर प्रकाश डाला गया है और पादवाच्य के विचारों के सम्बन्धन पर मिश्रित अनेक प्रकार से निरन्तर कर प्रकाश कर दिया गया है।

## पंचम प्रकरण

### ऋत्विग् और यजमान आदि

यज्ञों में सामान्यतः चार ऋत्विग् होते हैं वे हैं ब्रह्मा होता ऋत्विग् और उदगाता ये व्यक्ति संभ्यतम और मदानाग विद्वान् होने चाहिए। ऋग्वेद १०.७१.१२ में इन ऋत्विगों का कार्य इस प्रकार वर्णित है।

होता ऋत्विग् अपने वेद की ऋचाओं की पुष्टि करता है और यथाविधि रम्य में प्रयोग करता है।

२ उदगाता साम्य साम को शस्त्ररोगी नाम वाली ऋचाओं में गाता है।

३ ब्रह्मा सम्य साम पर यज्ञ विधान का निदेश करता है और कर्त्तृ पर हाई य रिगादि कर जाने का लोक करता है।

४ आन्तर यज्ञ की मात्रा अर्थात् यज्ञ के प्रयोग कार्य का अनुवर्तन करता है और करता है।

इन ऋत्विगों में सभी एक एक वेद के ज्ञान का ज्ञान ही चाहिए। होता ऋत्विग् का उदगाता सामवेद का प्रधान यज्ञवेद का और ब्रह्मा चारा वेदों का ज्ञान ज्ञाना चाहिए। सामवेदवाच्य करते हैं कि ऋक् अर्थात् योन्य पदार्थ-स्वर्ग में सम्बन्ध रखते हैं। ज्ञान उनके ज्ञान में सबका निष्पन्न हो सभी उनकी यज्ञ में पूरा कर सकता है। साम ऋचा पर ही कार्य करते हैं। शस्त्ररोगी ऋत्विग् ज्ञानवाली होता है कि साम ऐन्द्र है अतः शस्त्ररोगी करने का अभिप्राय यह है कि उद्वृत्त वृत्तवध में उनकी धर्म का प्रयोग करना है अतः वे शस्त्ररोगी हैं। उदगाता को सामवेद के ज्ञान होने के साथ-साथ सामगान के प्रसार में भी निष्पन्न होना चाहिए। ब्रह्मा चारा वेदों का ज्ञान, सर्वविद्यावा का ज्ञाने वाला वेद और साम्य से दृढ़ होता चाहिए। ऐतरेय ५.५.२ में कहा





आदि उत्तम पदार्थों और धातुओं की दक्षिणा उसे प्रदान की जावे । इसी मन्त्र पर व्याख्यान करने हुए गोपब्रह्मण्य ने क्रावरी की दक्षिणा देकर यज्ञ करने का विधान किया गया है । इस विधान में दक्षिणा देने में कोई सुनसान नहीं रखनी चाहिए । यज्ञ की समाप्ति के लिए इसमें किया प्रकार की बातों का नहीं करना चाहिए । वर्तमान समय में राक्षसों की पीड़ा, लकीरों की पीड़ा तथा अन्य काम-कर्मों का भारी बोझ है परन्तु यज्ञ करने वाले पर लोग समझते हैं कि कम से कम भी वे जो कुछ करते हैं यज्ञ भारी पड़-मान कर रहे हैं । इसीलिए ऐसे धार्मिक कार्य सफल नहीं होते हैं । कोई मनुष्य संसार में मनुष्यों का धोखा दे सकता है । परन्तु भगवान् का धोखा नहीं दे सकता है ।

यज्ञ को जब पवित्र कर्म मानकर किया जाता है और यह भावना उसके अन्दर रहती है कि यह उस जीवन और अगले जीवन में सुख-शान्ति का दाता है—तब उसका रूप दूसरा होना है । परन्तु जब केवल वायु-गुद्धि मात्र की भावना उसके अन्दर काम करती है तब इन सब दक्षिणा आदि की बातों और फल आदि का कोई स्थान नहीं रह जाता । वह केवल एक दिखावा मात्र रह जाता है । श्रौत-सूत्रों और मीमांसा आदि में कर्मफल के सिद्धान्त का विचार करके पुनः कर्म के सिद्धान्तों की स्थापना की गई है । इसी लिए प्रत्येक अंचल पर गम्भीरता से विचार करके पुनः कर्म के सिद्धान्त निर्धारित किये गये हैं ।

### प्रमाणसन्दर्भ

१. ऋचां स्वः पोषमास्ते पुष्वान् गायत्रं स्वो गायति शक्वरीषु । ब्रह्मा स्वो ब्रह्मति जातविद्या यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्तः ॥ ऋ० १०-७१-११
२. अथ केन ब्रह्मत्वं कियते इति ? ब्रह्मा विद्यया-ऐ० ५-५-८
३. स्त्री वाऽविशेषान्, रश्मिस्तस्याधाने, निवारस्त्यपतिमां विषुकेऽधि-कृतः—कात्या० श्रौत० १-१-७, ८, १२ मीमांसा में भी इसी प्रकार का वर्णन है ।
४. अग्निर्ऋचिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ॥ ऋ० ६-६६-२०
५. इमं यज्ञं सहपत्नीभिरेत्य । अथ० १६-१-१२
६. बाह्यमद्यविषेयं पितृमन्त्रं पितृमन्त्रमृषिमावैयम् सुधातुदक्षिणम् ।

## षष्ठ प्रकरण

### यज्ञ में वेदमन्त्र-पाठ

यज्ञ में वेद मन्त्रों का प्रयोग होता है । उनका पाठ किस प्रकार से हो । इस पर भी विचार किया गया है । शास्त्रकारों ने इस पर अपना सिद्धान्त न निर्धारित किया हो-ऐसा नहीं है । उन पर विचार किया जाता है । वेद मन्त्रों पर स्वर लगाने हैं । स्वरों का पाठ यज्ञ में भी होना चाहिए ? जहाँ तक माधारण स्वर की बात है, वे हैं ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत । उनका उच्चारण तो किया जाना ही चाहिए । इसके अनतिरिक्त प्रत्येक वेद के उच्चारण की विधि है । किसी की दत्त, किसी की मन्द आदि । उनका उच्चारण उसी प्रकार होना चाहिए । ऋषि दयानन्द ने अपनी संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण के अन्त में यह लिखा है जो एक सामान्य नियम है । वे लिखते हैं—सब संस्कारों में मध्य स्वर से मन्त्रोच्चारण यज्ञमान हो करे । न शीघ्र न विनम्र से, उच्चारण करे किन्तु मध्य भाग से जमा कि त्रिम वेद का उच्चारण है, करे । यह सामान्य नियम है ।

कुछ लोग जो पौराणिक प्रथा में पले हैं अब भी यज्ञों में त्रैम्वयं पाठ हाथ हिलाकर करते हैं । इस प्रथा में पहले प्रत्येक मन्त्र के आदि में 'हरि' ओ३म् जोलकर प्रारम्भ किया जाता है । ओ३म् के पूर्व हरिः का प्रयोग शास्त्र सम्मत नहीं । 'हरि' का कोई ऐसा अर्थ भी नहीं जो वेद वा, ओ३म् वा, भगवान् को द्योतन करता हो । यह प्रथा पौराणिक और शास्त्रविरुद्ध है ।

क्या प्रत्येक मन्त्र के पूर्व ओ३म् का उच्चारण किया जावे ?

यज्ञों में इस बात का विचार करने में दो ढंग से विचार किया जावेगा । एक तो यह कि जो यज्ञ श्रौत आदि किए जाते हैं और दूसरा यह कि जो संस्कारविधि के अनुसार संस्कारों में प्रयुक्त

होने के साथ ही के समय में प्रयोग दशानन्द की रचित मन्त्रकार-  
विधि का प्रयोग करना है। इसमें लिखा है कई परिभाषा ही प्रामाणिक है,  
जिन का प्रयोग विचार किया जाता है। यज्ञ ने स्वयं भी सभी  
मन्त्रों के आदि में ओम् लगाया है। इस विषय को एक बड़े  
प्रश्न के रूप में उत्तर उत्तर दिया जाना आवश्यक है। प्रश्न उस  
प्रकार होता है—क्या मन्त्रों में ओम् आदि कर्मकाण्ड के समय प्रत्येक  
मन्त्र के आदि में ओम् अन्त में ओम् लगाया जाना चाहिए? इसका  
समाधान निम्न प्रकार है—

१-यज्ञ द्वारा दत्त श्रवणावाचना आदि ज्ञान्ति, मन्त्रकार आदि के  
समय विषय किया। अथवा ओम् वाक्यान्त के अनुसार मन्त्र, मन्त्रार्थ  
मंत्रवाक्य या मन्त्र के आदि में ओम् लगाया जा सकता है।  
विषय, विषय काण्डका आवाका आदि यदि एक एक मन्त्र मन्त्रार्थ  
मन्त्र वाक्य अथवा मन्त्र पद में पूर्ण मन्त्र हो तो उन प्रयोग के आदि में  
ओम् लगाया जा सकता है। परन्तु यदि विषय किया आदि अनेक  
मन्त्रों में पड़े हो तो प्रथम मन्त्र के आदि में ओम् लगाया जावेगा  
जैसे प्रायना स्वस्ति, शान्ति, अन्नमयण आदि।

२-परन्तु यदि इन कर्मकाण्डों में वेद की गणितों में अन्तर मन्त्रों  
का प्रयोग है तो प्रत्येक मन्त्र पर आरम्भ में ओम् लगाया जावेगा  
परन्तु वह मन्त्रादानात्मक प्लुत रूप नहीं होगा।

३-स्वाध्याय काल में स्वाध्याय प्रारम्भ करने समय ओम् स्वा-  
ध्याय समाप्त करने समय ओम् का उच्चारण होगा। प्रत्येक मन्त्र  
के साथ नहीं।

४-मन्त्रों में वाक्य की मन्त्रों का प्रयोग का ओम् नहीं पर होगा  
जहाँ आवश्यक हो लगाया गया हो। प्रत्येक दत्त और कर्मकाण्ड में  
प्रत्येक मन्त्र के अन्त में नहीं।

५-मन्त्र के समाप्त होने पर ओम् शान्ति, शान्ति लगाया गया  
है परन्तु ओम् मन्त्र नहीं।

६-यदि ब्राह्मणवादी हो तो प्रत्येक मन्त्रों के आरम्भ करने  
समय प्रथम मन्त्र के आदि में ओम् लगाया जा सकता है। पर प्रत्येक  
मन्त्र के आदि में नहीं लगाया जाय। इसी प्रकार शान्ति के अन्तिम  
मन्त्र के अन्त में भी ओम् को ओम् लगाया जा सकता है। प्रत्येक  
मन्त्र के अन्त में नहीं।

७-यज्ञ की समाप्ति पर ओम् में समाप्त किया जा सकता है।  
इन प्रयोग पर आवश्यक समानुसार प्रमाण प्रस्तुत किया जावे है—

मन्त्रों दशानन्द की मन्त्रार्थविधि आदि प्रमाण है। तथा पर  
मन्त्रों में ओम् लगाया है वह विधान है और तथा पर नहीं लगाया  
वह नियम है।

८-समय मन्त्रों की मन्त्रार्थविधि प्रमाण है। मन्त्रों मन्त्रों में  
मन्त्र मन्त्रार्थविधि में प्रत्येक मन्त्र के आदि में ओम् लगाया जाया  
जाता है। एक आधिक्य एक कारण यह भी है कि ओम् अन्त में  
मन्त्रों में अन्त में वाक्य का प्रयोग न कर, यदि कर वेद का प्राप्ति न कर।  
यदि ओम् अन्त में वाक्य का प्रयोग न हो यदि वेद का प्रयोग हो, इसका  
वर्तमान मन्त्रों के साथ में उनका पद में ओम् का प्रयोग कर उन्हें  
लोचक वाक्य से सम्बन्ध कर दिया जाता है। विख्यात वाक्य  
कृत्य ओम् अन्त में वाक्य का प्रयोग न कर, वाक्य न भूतकर्मणः  
नदादीन्वाक्यवाक्यानि मन्त्र ... ..

यज्ञोक्तं वाचनं प्रयोग। आपस्तम्ब धर्म सूत्र, प्रश्न १ का० १३  
पटल ८ मन्त्र २५

यज्ञिया वाचनं वेदं मायजिया वाचनं वेदं, वेणवीमृत्तम् यज्ञिया।  
गोभिल १।१।१।१००

यजमानश्चित्तं ओङ्कारेण प्रोक्षयजमिति। कात्यायन श्रौत ३।२।२६  
यजज्ञिया वा अवाह्यं मन्त्रावाह्यं वाजपेयं ॥ स्वदिर १।१।२४ व्याहृत्य  
वेणव जपेत्। का० २।२।२६

९-ओङ्कार स्वर्गद्वारं तस्माद् अध्येषमाणं एतदादि प्रतिपद्येत्  
आपस्तम्ब धर्मो १।१।१।२।५

ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादावावन्ते च सर्वदा।

स्वध्यानादकृतं सर्वं पुरस्ताच्च निपीदति ॥ मनु २।३४

इसी मानव श्लोक का प्रमाण देकर शब्द-कल्पद्रुमकार लिखते  
हैं—वेदस्याध्ययनारम्भे अध्ययनसमाप्ती च ब्राह्मणस्य ओङ्कारो-  
च्चारण-कृतं ध्वन्वमुक्तं यथा मनो २।३४ शब्द-कल्पद्रुम पृष्ठ २५०

तेनैव त्रयी विद्या वर्तते ओमित्यामन्त्रयति ओमित्याजमिति

छान्दो १।१।६

यदा वा ऋचमाप्नोत्योमित्येवातिम्वरानि एवं सामवं यजुः।

छा० १।१।१०

मामिनामेव प्राणिमिमांसिनां प्राणिनां जगत्तम ॥

गो० पू १।२८

सोमस्याशने । प्रा० १०. ८. २७ यज्ञी पर उम मृत्र मे यज्ञ की प्रवर्तन किसी भी मृत्र में नहीं है । यज्ञ पर मृत्र यज्ञ में वा अन्य कारण में मृत्रों के प्रयोग की आवश्यकता नहीं प्रकट है । उसका विषय स्वयंवाच में ही स्पष्ट हो जाता है । यज्ञी कारण है कि व्यासस्मृत का कहना यज्ञ कि — प्राणभेदस्य प्राणभेदस्याप्यप्राणदेः । व्यास ८. २. ८७

इसके प्रमाण रूप में प्रकट है । मृत्र का किया जा सकता है । यज्ञ प्राणिनां जगत्तमममम ८. २. ८७ पर श्रीमान् है । इस मृत्र के आधार पर यज्ञ कल प्रयोग मृत्र के पल में ग्राम लगाने की प्रथा चल रही है । यज्ञ मंत्रों की प्राणविरक्त है । यज्ञ का दया गया है कि यदि हा जिनके सत्यजन माय भी नहीं वे भी यज्ञ मंत्र के अन्त में ग्राम लगाने का प्रमाण कहते हैं । इस मृत्र में किया भी प्रवर्तना में प्रकट आदि कर्मकाण्ड में प्रत्येक मन्त्र में ग्राम लगाने का विधान निश्चय नहीं होता । प्रणवादे मृत्र में यज्ञ कर्मकाण्ड पर ही प्रवर्तन के यज्ञ कर्मकाण्ड मृत्र में ही जाती है । इस मृत्र पर महाभाष्यकार प्रवर्तन स्वयं लिखते हैं —

ये यज्ञकर्मजीवि प्राणविरक्तानि प्राणानि ।

ये दायादा द्विष्येकादशस्य इति । इसका अर्थ यह है कि यज्ञ मृत्र पर यज्ञ कर्म में ग्रामप्राण मंत्र पर यज्ञ कर्म में नहीं है ।

ये यज्ञाभेदे यज्ञी पर ही लिखा है—ग्रामप्राणमिमांसा तु दूनयोर्मिमांसाभिप्रायितानां यज्ञी पर ही लिखित है । काशिका विवरणप्रतिपत्ति ८. २. ८८ प्रणवादे का कर्मकाण्ड है । इस पर भी भाष्यकार स्वयं प्रकाश डालता है—प्राणदेः ८. २. ८७ प्राणदेः प्राणदेः मृत्र पर यज्ञाभेदस्य प्राणभेदस्याप्यप्राणदेः या विधानमते । प्रणवीमन्त्राशने । इस पर विधान आकार और प्रकाश की प्रणव मजा दी गई है । यह एक ही प्रमाण है । इसमें प्रत्येक मंत्र के अन्त में 'ग्राम' उच्चारण का विधान करने की । निश्चय अन्त पर ही यह विधान इस मृत्र में ही होता है । यज्ञाभेदस्य मायविरक्त में भी लिखा है—प्राण वा प्राणो यज्ञा के प्राण विमर्श भाग के स्थान में पलत धीवार ही प्रणव कहता है ।

१—देव माणि हा गन्धर्व प्रकाश प्रथम ममु कथ्य दन्ता मित आदि ।

२—प्रथम में द्विगुण गण प्राचारा पर ही ।

३—ग्राम में अवमान करने के विषय में मन्त्र प्राण ही प्रमाण का प्रमाण माना जा सकता है । मन्त्राधी प्रणवमन्त्राभेद—इस प्राणविरक्त और मृत्र १२ के अन्त में भी इसका पूर्ण प्रमाण है ।

यज्ञ आदि में प्रत्येक मन्त्र के आदि में ओम् नहीं

लगाना चाहिए

यज्ञ पर यह प्रमाण भी प्रस्तुत किया जाता है कि यज्ञादि के मन्त्र प्रत्येक मन्त्र के आदि में ओम् नहीं लगाना चाहिए । गृह्यसूत्र के अनुसार यह प्रमाण है कि यज्ञ में आहुति के मन्त्रों के अन्त में ओम् लगाया जावे । खदिर गृह्यसूत्र १।१।१६ में लिखा है कि यज्ञादन्ता मन्त्रादीमम । इस प्रकार गाभिल गृह्यसूत्र १।१।२७ में लिखित मृत्र प्राण जाता है —

मन्त्रादेः प्राणकारः । इस पर टीकाकार म० म० सुकुन्द शर्मा अपना टीका में लिखते हैं अथ अन्ती करणदाम । मन्त्रादितानां प्राणमन्त्राणां प्राणो न प्रत्येकमाकार करणीय । तदायाह मन्त्र नादकु-यादाममन्त्राणां प्रत्येकमाकारः । अन्त्येणां च विकल्पानां कारेताचम-नारिताना

इस पर टीका करते हुए चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार ने कर्म प्रदीप के आधार पर लिखा है—प्राणमन्त्राणां प्राणो न प्रत्येकमाकारः करणीय —नादु र्वादः आदि ।

उसके अतिरिक्त एक प्रमाण यह प्राण है कि कभी मन्त्राभेद में स्वाहा बोला जाता है और कभी स्वाहा बोलाकर पुनः मन्त्र पढ़ा जाता है । ऐसी स्थिति में ग्राम प्रत्येक मन्त्र के आदि में लगाना किस प्रकार निश्चय रूप में कहा जा सकता है । एक भी शब्द वद मन्त्र में बिना ऊह के निश्चय क आधार निश्चय पढ़ाना पढ़ाना प्राणविरक्त का कारण प्रकट है । अतः प्रत्येक मन्त्र में बिना निश्चय नहीं पढ़ना ही नहीं ।

महर्षि दयानन्द मरम्भनी ने मन्त्राय प्रकाश प्रथम ममुत्तम में लिखा है :—





[illegible][illegible]

गाम, गज की विधि की प्राप्ति के लिये वे गायत्री मंत्र में  
 निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग करते हैं—  
 गायत्री मंत्र में जो शब्द हैं वे हैं—  
 ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।  
 इस मंत्र में जो शब्द हैं वे हैं—  
 ओम् नमो भगवते वासुदेवाय ।

भग' इस प्रकार का नाम मन्त्र गावज का है। मन्त्र पर गीताकार दत्त-  
पाल ने यह भा' लिखा है कि यह गावज क्य' है दृष्टि गा' के अन्तर्गत  
श्रीर मदगर्भ वरुण के लिए यमना में किया जाता है। इसमें मन्त्र  
युक्तानि आदि दत्त च'ने श्रीर कृपि मन्त्र की मन्त्रा का विभिन्न  
है। मन्त्र में गीताकार के भी मन्त्र आ गये हैं। इसमें से पता चलता  
है कि यहा पर गावज में गावज की समष्टि श्रीर इसमें मन्त्रद्वय कृपि  
की समष्टि का समन्वय है। यह गामेश के लिये उपयोगी वस्तु है।  
नाम इसका भवन हा गामेश न होकर गावज है। इसमें विनियुक्त  
गभी मन्त्र उपलब्ध है। ताम्रद्वय-ब्राह्मण के १६व आचार्य के १२व  
पृष्ठ में गामेश नामी पत्र का वर्णन है। यह पत्र का-शायन आदि-  
सुप्त ३३११-१२ और आपस्तम्ब ३३१२-१३ में वर्णित है। इसमें  
का-शायन के प्रकार मन्त्र के साथ ही वर्णित की जाती है। तैत्ति-  
रीय ब्राह्मण ३३३३ में भी इस गामेश का उल्लेख है। इस पत्र-  
गावज का उल्लेख है। इन गामेश पत्र पर इन ब्राह्मणों में लिखा  
गया है कि इस गामेश मन्त्र-गावज का नाम गावज अर्थात् यह  
गावज है श्रीर का-शायन का नाम है। इस प्रकार इस पत्र का मुख्य  
श्रीर भी अर्थात् प्रकाश है। यह पत्र पर केवल एक निशान  
प्रकार दिया गया है। इस अनेक विषय है जिन पर विचार करने  
की आवश्यकता है।

योगीश्वर जी, जिसमें यज्ञ की परम्परा होने का ज्ञान की कृष्ण भाग दिया जाता है—य भी उस विषय में उल्टे ही मार्ग पर चलते हैं। अतः कुण्डों सम्बन्धी का कभी विधान नहीं मिलता, परन्तु ये करते हैं, अतः इण्डा का विधि भी जन्मभूमि से मिलती नहीं पाई जाती। वाममार्ग का भाव को न समझ कर अज्ञान इण्डा का मन्त्रों का गहनत्व मन्त्रों पर अर्घों के आकार बनाना प्रारम्भ कर दिया है। यह भी का पात्र रखने के स्थान के पास निर्मित होता है और भाग्यभूमि से उसमें पड़ कर तब अग्निकुण्ड में जाना चाहिये। यह यानि के आकार का होता है। उसका बीच में सुपांगी भी रख दी जाती है जो उसमें पुरुष सम्बन्धी चिह्न की प्रतीक है। यह बनाना वाममार्ग में आर्टी हर्ट मानस पत्रों है। यज्ञ में उसका कोई महत्व नहीं। उसमें तो साक्षात् यज्ञमान और उसकी पत्ता होने ही है। इस अन्तर्गत वस्तु की सहा पर आवश्यकता ही क्या है? यज्ञ में यह









में जगा गया है। पाठ्यकर १.१.६ में उक्तानीमय नृप पाठ है और व्याख्यान ॥ १.१.८ में विश्वरूपमय नृप पाठ है। इन प्रकार ऊह करने का विधान शास्त्रमन्त्र है।

महापि श्याम ने नमस्कार प्राणि में धनका स्थानों पर उठ किया है। सामन्तान्नयन मन्त्रादि में वा। मन्त्रादि और मन्त्रा उदाहरण द्वारा वा। नमस्कार है। वा। वा। मन्त्रादि इस शास्त्रीय प्रक्रिया को न समझ कर फल की वा। मन्त्रादि दिखाने के वा। वेद के मन्त्र में पाठ्यकर मन्त्रादि है। वा। वा। मन्त्रादि के द्वारा प्रमा। में ऐसा किया गया—वा। भी दिखाने का मातृम कर रहे है। देखें गोविन्दराम तामानन्द द्वारा प्रचारित यनुद मूल पुस्तक की भूमिका। परन्तु इन्हें पढ़ नहीं जाते कि मन्त्रादि विधि कमें पठ का अर्थ है। यही पर ऊह करना स्वाभाविक है। प्राणि ने उठ किया है।

यह कैसे मानम हो कि उठ किया है? उसका समाधान है कि जहाँ पर प्राणि ने वेद मन्त्र के पद में किसी मन्त्र में उठ किया है वहाँ पर वैदिक स्वर लगा है। जहाँ पर वेद के पद में न करक सम्बन्ध भाषा के पदों में उठ किया है उहाँ पर स्वर लगा लगाया है। क्योंकि उसका भाषिक स्वर होता है। यह नियम सामन्तान्नयन मन्त्रादि में देखा जा सकता है। प्राणि का जोर निशाने में वा। उस रहस्य को न समझकर धनका तुक करते हैं। वा। शास्त्र विरुद्ध है। मीमांसा प्रादि सभी शास्त्रों में कर्मकाण्ड में उठ करना सिद्ध है। मन्त्रादि प्रमाण इस विषय के कृपियों के दिये जा सकते हैं। इनके विस्तृत ज्ञान के लिए देखें मेरी पुस्तक—दयानन्द—मिथ्यान्त—प्रकाश और उसका प्रकरण—महापि की वेद में धन-प्रभक्ति। इस पुस्तक के पढ़ने से ज्ञान होता कि प्राणि के ऊपर लिये गये सभी आक्षेपों का समाधान किस प्रकार किया गया है।

### प्रमाण सन्दर्भ

- १ हस्तेन ते। यजुः प्रातिशाख्य १.१.२१
- २ यनेन प्रकारेण हस्तेन ते स्वराः प्रदर्शयन्ते। तत्रोदात्ते ऊर्ध्व-गमनम्, हस्तस्य अनुदात्ते अधोगमनम् हस्तस्य। एषः सर्वेषा-मावापानां मतेन स्थितम्। स्वरिते तु विप्रतिपद्यन्ते तत्प्रका-

शताथमिदमाह—चत्वारस्तिर्यगहस्ते कृत्वा स्वर्गनीया पितृ-वानवधस्ते कृत्वेत्यर्थः।

३. तानलक्षणमेकं स्वरमाहुर्यज्ञकमणि—यज्ञकमणि एहः स्वर्गे भवति तानलक्षणः।
४. तानो वा नित्यत्वात्, एकश्रुतिद्वारात्सम्बुद्धौ यज्ञकर्मणो-सुब्रह्मण्या-सामजप-न्युज्ज-याजमानवज्रम्। का० श्रौ० १.८.१६
५. यज्ञकर्मण्यजपन्युज्ज-त्वममामु—इति प्राणिनिस्मृतौ ..... एषं जपमंत्रादिव्यतिरिक्तेषु कर्ममंत्रादिरूपेषु धनये जुष्ट-निर्यपामोऽन्यादिव प्राध्वयवयाजमानेषु प्राधुनिकानां याज्ञि-कानां चानु-स्वयण प्रयोगे मूलम् मूलम् ॥ शास्त्रदीपिका ६।२।३०
६. न सर्वलिङ्गं न सर्वाभिधक्तिभिर्वेद मन्त्रा निगदिता ते चादृश्यं यज्ञगतेन पुरुषेण यथायथं विप्रणिमयितव्या। महाभाष्य १।१।१
७. याज्ञिका पठन्ति प्रयाजाः सविभक्तिकाः कार्या इति। महा० १।१।१
८. धर्णशोऽक्षरशो ज्ञानाद् विभक्तिपदशोऽपि च० वा-म० प्रा० ८।२७
९. प्रयाजानां विभक्तीः कुर्याद—कस्माद्? सविभक्तिकाः प्रयाजा भवन्तीति। का० ६।१



देवराज्य मृतोत्पत्तिः कालो यच्च विवर्जिताः ॥ नाभये यह कि  
अहं, नाभ, आदि मात्रा कलियुग में लिपिष्ट है। ये केवल मन्वायुग  
आदि के दिग धर्म थे। यह किनो विद्वन्मता है कि जो मन्वायुग में  
धर्म था वह कलियुग में धर्म नहीं। साथ ही उस इलाक में मन्वायुग  
लेना भी वर्जित है। परन्तु मन्वायुग अभी भी लिया जाना है।  
पौर्वाणिक लोग मन्वायुग कलियुग में ले ही रहे हैं। इस को क्या नहीं







[illegible][illegible]

कई बात समझने है कि माना को न-यन काल में ही लोग  
है। परन्तु ऐसा नहीं प्रिय सा-युक्त कला भा-नयनी है और उम्मे  
प्रतिष्ठ कला भी यही है। अर्थात् कला में स्था कला गया है—  
यद्यपि किम यदा-युतमि-यम् प्रतीति-प्रतिष्ठ। कला सा-युक्त  
किया—यदा-युतमि-यम् प्रतीति-प्रतिष्ठ। कला सा-युक्त  
जो भी वह सा-युक्त प्रतीति-प्रतिष्ठ। कला सा-युक्त  
रहगी।

यही एक मात्र सत्य है कि विद्या ही परमात्मा है। परमात्मा के लिये हमें सत्य के  
विद्या ही चाहिए। विद्या ही परमात्मा है। परमात्मा के लिये हमें सत्य के  
द्वारा प्रकाशित सत्य, सत्य के लिये हमें सत्य के लिये सत्य ही है।  
अतः यही सत्य ही है कि विद्या ही परमात्मा है।

प्रजापति की मौन आह्वति का रहस्य

इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति का विधान है। यह प्राप्ति मोन  
का ज्ञान है। यह मोन को ही जानी है। इसमें बहुत ही गूढ़  
रहस्य छिपा है। इस रहस्य के अन्तर्गत यह भी ज्ञान लभ्य होगा  
कि यज्ञ के अन्तर्गत यज्ञ की विधि ही लभ्य है। इसका श्रीर भी कोई

उद्भव है। ब्राह्मण-ग्रन्थों में प्रजापति के साथ उगान्, त्व सोम का सम्बन्ध स्पष्ट प्रतिपादित किया गया है। शतपथ १३.३.२३ में ऐसा वर्णन है कि प्रजापति का सम्बन्ध उगान् है। पुनः शतपथ १४.१.१० में ऐसा वर्णन किया गया है कि 'यज्ञ' में जो कुछ प्रजापति-सम्बन्धी किया जाता है वह उगान् ही किया जाता है। क्योंकि प्रजापति के निर्मित वाक् अद्वयवाङ्मय है। इस प्रकार प्रजापति को प्रादिति का सोम दिया जाना शोक हो है।

[illegible]

यह गाथा पर ब्रह्म की उद्धारित कर गयी है, वह ब्रह्म यह है कि प्रजापति का प्रकार का है। पर की पर प्रजा की प्रजापति प्रजा का पालक होने में है। दूसरा भगवान् प्रजा का स्वामी स्वयं प्रजापति है। यज्ञ में जो अग्नि अग्नि में हो जाता है वे जलता है और उनका पार-तन्त्र अग्नि के माध्यम से वायु में जाता है और आकाश में भी पहुँचता है। इससे वर्षा के द्वारा भूमि पर आकर ओषधि और अन्न आदि में जाता है। अन्न और ओषधि आदि को स्त्री-पुरुष, नर और मादा खाते हैं। इससे वह तन्त्र जोषीय में पहुँचता है। दोनों के सम्पर्क में प्रजा सन्तान आदि हो उपनिहती है। अतः प्रजा का पालक होने में यज्ञ प्रजापति है।

विश्व में जिनने भी जीव है सभी प्रजा है। सब का तात्त्व दोने से भगवान् प्रजापति है। प्रजापति निम्बन और घनिष्ठत दोनो है।

व्यक्तिगत प्रमाणित निष्कर्ष (Explicable) नहीं कि भगवान् जो प्रजापति का नाम प्रजापति है वह अनिर्णय (Inexplicable) है। उसका पूरा पूरा अन्वयान नहीं किया जा सकता है प्रजापति भगवान् का प्रति मन का विषय है वाणी से वर्णनीय नहीं मन यज्ञ आदि में लब्ध पवित्र होकर भगवान् को जान सकता है अन् मन प्रजापति का प्रतिनिधि होता है—वाणी नहीं देती है।

इस पर एक प्रश्न यह खड़ा होता है कि जब आधारावाज्यभागा-द्विती के समय प्रजापति स्वर्गात् आता है तब प्रजापति की आर्ति मोन क्या नहीं दी जाती है और जब 'अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा' दूसरी बार आता है तो उसकी प्रजापति न होना पर भी मोन आर्ति क्यों दी जाती है? इसका समाधान है कि जब प्रजापति का अथ अग्नि आदि दूसरे पदार्थ होते हैं और वह परमेश्वर का वाचक नहीं होता है तब मोन आर्ति नहीं दी जाती है। जब अग्नि का प्रयोग प्रजापति के लिए होता है तब मोन आर्ति दी जाती है।

इस प्रकार मोन आर्ति की समस्या के समाधान में यह भी भली भाँति जान हो गया कि यज्ञ का उद्देश्य केवल वायु, अग्नि एवं ऐतिह्य (ऐतरेय) आदि की प्राप्ति ही नहीं है, अपितु उसमें मन और आत्मा का पवित्र कर भगवान् का भी प्राप्त किया जाता है।

एक प्रश्न यज्ञ में यह है कि यज्ञ कीनमें योग करने का अधिकार रहते है?

इसका समाधान किया गया है "अग्निर्वापि पवमानः पाच जग्य पुरोहित" मन्त्र में। अर्थात् यज्ञ यज्ञ पाचजन्य है। पाच प्रकार के लोग इसे कर सकते हैं। गृण, कर्म और स्वभाव के अनुसार चार वर्ण होते हैं। जो इनमें योग्यमान्यमान नहीं आता है वह पाचवी सोति में है। इस प्रकार चार वर्ण और पाचवा अर्थात् सभी मनुष्यों को यज्ञ करने का अधिकार है। इस तथ्य को इस मन्त्र में प्रकट किया गया है। ये मन्त्र चोल, समावर्तन और विवाह में मुख्य है।

इसके अनन्तर अग्निज्योति के मन्त्र आते हैं। इनमें बहुत चन कर मन्त्र रखे गये हैं। जिसमें 'अग्निर्वापि' कहा हुआ है। प्रत्येक मनुष्य के लिये इस को वरुण वर्णीय भगवान् की शक्तिया देखनी है। वन्धन जिसमें जीव फसा है वे विभिन्न दोनियाँ हैं। इनका क्रम

उत्तम, मध्यम और अधम है। इन तीनों को जान और भगवान् की कृपा में श्रव्य करने का विधान इन मन्त्रों में है। वरुण जो अद्वय वर्णीय भगवान् है उससे प्रार्थना की गई है कि इन बन्धनों को दूर करे। भगवान् के समक्ष हम अपने का निर्दोष उगमिथन कर। मानव जो कुछ करता है, समझता है कि वह किसी को मान्य नहीं। परन्तु वह मन्त्री पर है। भगवान् सबको देखता है और उसमें कोई वस्तु छिपी नहीं है। ये भावनायें इन मन्त्रों में पाई जाती हैं। अथर्व वेद १०वें राण्ड में कहा गया है कि "सर्वं तद्राजा वरुणो विचष्टे यदन्तरा रोदसी यन्तरस्यान्" अर्थात् राजा वरुण पृथिवी आकाश आदि समस्त विषय में जो कुछ है और होता है उसको देख रहा है। पुनः उसी में अगले मन्त्र में कहा गया है कि दो व्यक्ति बैठ कर जो आपस में कानाफूसी करते हैं राजा वरुण उनका तीमरा चन कर जानता है। मन्त्रांश इस प्रकार है—

“दो सनिपद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद्रद वरुणस्तृतीयः।”

इसके अनन्तर पूर्णाति और वामदेश्य गान आदि की क्रिया आती है। इस प्रकार भारे सामान्य प्रकरण के विनियोग और योजना आदि पर विचार करने पर यह सिद्ध है कि महर्षि की प्रक्रिया बहुत ही वैज्ञानिक और परिपूर्ण है।

### प्रमाण-सन्दर्भ

- १—यन्तु एवात्र विष्णुमन्वाविन्वंस्तस्माद्दे दिर्नाम। श० १।२।५।१०
- २—तस्मादाहृष्यावती वेदिस्तावती पृथिवीति। श० १।२।५।३ ऐमे ही मिलते-जुलते वचन तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।२।६. शतपथ ३।७। २।१ और गो० उ० १।७।५ में भी पाये जाते हैं।
- ३—यज्ञो वं विष्णुः। शत० १।१।२।१३; कौषीतकी ४।२; तांड्य ६।६।१०; गोपथ उ० ४।६; तैत्तिरीय १।२।५।१
- ४—स यदुपांशु तत्प्राजापत्यं रूपम्। श० १।६।३।२७
- ५—तस्मात् यत्किञ्च यज्ञे कियत उपांशु एव तत्कियत ग्रह्यवाइ हि वाक् प्रजापतय आसीत्। श० १।४।५।१२

### संस्कारविधि के सम्बन्ध में विशेष विचार

[illegible]

यह भी एक शक्ति है। इसका विधि विधान मायव की दृष्टि में  
बना हुआ है। इसलिये इसको शीघ्र के अनन्तर ही करना आवश्यक  
है। श्री का नरमेध, पुत्रमेध, नरनाश और पुत्रनाश नाम भी दिया  
गया है।

२—हवन में इच्छा भ्रम से प्रवृत्त मन प्राप्ति के अनन्तर भवा का उपाय ही नहीं करने चाहिए। यदि भी भवप्रवृत्ति का विधान नहीं है। मार्ग में गन्धाधान वा कुछ सम्पत्तियों में नहीं पर ऐसा करने का विधान है बल्कि पर यह कार्य करना चाहिए। अन्यत्र नहीं। जहाँ पर इच्छा भ्रम के बाद भवा से बचने की आवश्यकता का कार्य ने किया है यहाँ पर इस अवस्था में इस प्रकार एक ही ही को करना चाहिए इसका भी विधान किया है। यदि मार्ग में ऐसा करने का विधान होता तो इसका उपयोग भी किया गया होता।

[illegible]

विश्वे देवी का भाग माना गया है। ऐसा ही राजप्रक्रिया, यज्ञ, प्रेम, शान्ति का सिद्धान्त है।

३—कभी-कभी लोग तीन समिधाया का दान देते हैं। 'समिधा-विभक्तं'  
मन्त्र की पूजा अर्थात् जज्ञोत्तम स्वाहा । इदमन्तये इदमन्त मम यन्त  
नही चाहते है । यह शोक नहीं , मन्त्र पूजा वाला जाना चाहता और  
दोनों मन्त्रों की मिलाकर ही यह दूसरी समिधा दाननी चाहिए ।  
कई अपनी बुद्धिमत्ता लगा कर यजुर्वेद तनीया-याय के 'सुप्रचक्षणे'  
मन्त्र की मिला कर तीन समिधाया पुनी कहते है अर्थात् 'प्रचक्षणे' इन  
ग्रन्थों के रचान पर उप-रान्त का प्रयोग करने है—यह शोक नहीं ।  
ऋग्वेद ने जैसा विधान किया है वैसा ही करना चाहिए ।

७—इस नाम निरादृत्य आर्त की पूर्णादृति के पूर्व ही देने की प्रामाणिक मानने है। मन्त्र में नहीं, परन्तु मन्त्रकारविधि में जहाँ पर नामान्य प्रकरण में वह मन्त्र निम्ना है वहाँ पर तो उसे बोल कर आदृत्य देनी ही चाहिए। बाद में पूर्णादृति के पूर्व भी देना चाहिए। जो लोग सामान्य प्रकरण में यदव्यक्त आये हुए—यदव्यक्त-कर्मण' में वहाँ पर आर्तानि न देने के और केवल अन्त में देने के पक्ष में हैं वे उस मन्त्र का केवल प्रायश्चित्त का मन्त्र ही समझते हैं। अतः वे समझते हैं कि यन्मत्ता अगर कोई हुई है तो उसका ही अन्त में ही प्रायश्चित्त करना चाहिए। इसलिए नामान्य प्रकरण के मन्त्र में आर्तानि नहीं देनी चाहिए। परन्तु यह ठीक नहीं है। अगर बिना का जान हो जावे कि मैं गलत मन्त्रों-वाचन कर रहा हूँ और गलत किया कर दी है तो उसी समय उस मन्त्र में आर्तानि देकर गलत गिये को ठीक करके पुनः करना चाहिए। अन्त में तो इसलिए आर्तानि दी जाती है कि तेरी कोई वृद्धि हो गई जो जान में नहीं है तो वह निरादृत्य ही। बड़े बड़ों में तो जिस समय भी कोई गलती हो जाती है उस मन्त्र में आर्तानि देकर पुनः उस गलती को ठीक करके उसे सही रूप में फिर से किया जाता है।

विद्युत्प्रवहक भी नाम है और प्रायश्चित्तकर न्यूनता  
आदि को दूर करने के कार्य का नाम भी है। मानव प्रवृत्ति  
१५३७३ में अग्नि को विद्युत्प्रवहक कहा गया है। अग्नि विद्युत्प्रवहक  
कहा जाता है और उसे विद्युत्प्रवहक प्रायश्चित्त करती  
जाती है—इस पर मानवप्रवृत्ति १५३७३ में कहा है—वि अग्नि



ने ... के ... के ... है ... है—यह हमें ...  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता कि अग्नि देवता के लिए हम मंत्र में  
जहाँ पर हम मंत्र ... है ... पर ... देनी ही चाहिए।  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...

४—वैशाखा मन्त्रावली ... कि ... है कि  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...

५—गर्भाधान मन्त्र और विवाह जो मन्त्र विधि में वर्णित  
है उनकी मातृश्रीमिता किम प्रकार स्थापित हो सकती है? ...  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...

में बनाये गये मन्त्रों के विधान मंत्र के लिए है और ...  
वे सभी जगह लागू किये जा सकेंगे।

७—गर्भाधान मन्त्र में 'अग्ने प्राग्विचारा' यदि वाम मंत्रों  
से जो आहूति देना लिखा है उसमें इस मन्त्र मन्त्र ...  
है। ... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...

८—पमवन मन्त्र में अथर्व ३।११.१ का उद्धरण दिया गया  
है। इस मंत्र में यह रहस्य बताया गया है कि अगर ...  
... के ... के ... है ... है। ...  
... के ... के ... है ... है। ...

९—सीमन्तोन्नयन में एक जटिल समस्या है जिसकी तरफ हम  
पंक्तियों के लेखक के अनिश्चित और किसी ने आज तक ध्यान नहीं  
दिया। लेखक ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक दयानन्द-मिथ्यात्व-प्रकाश में  
उल्लेख किया है। वहाँ पर मंत्रों में कुछ लिखा जाता है। सीम-  
न्तोन्नयन प्रकरण में अथर्व के निम्न मंत्र निम्न प्रकार दिये गये—

राकामह सुहवां सुहृन्ति ह्ये शृणोतु न सुभगावोऽध्वर्युमना ।  
सीध्वन्वपः सूव्यान्निश्चयमानया ददानुवीर जनदायमुक्त्वयम् ॥  
याम्ते राके मुमन्तवः मुपेक्षसो याभिर्ददामि दागुणे वसुनि ।  
नाभिर्नो अद्य मुमना उपागहि महसवोप सुभगे रराणा ॥

अथर्व ३।११.१-५

ये दोनों मंत्र अथर्व ३।११.१-२; मैत्रायणीशाखा ८.१०.१५३  
तैत्तिरीय शाखा ३।३।११ तथा काठक शाखा १३।१६ पर भी मिलते  
हैं। इनमें प्रथम मंत्र का निम्न १।१३.१ पर भी उल्लेख है।  
सीमन्तोन्नयन में अग्नि ने उन मंत्रों को इस रूप में भी दिया है और  
पश्चान् पुनः उसी मन्त्र में आगे चलकर निम्न रूप में दिया है—

[illegible]

१०—जातकमें मंगलर में पिता सोने की शालाका ने धूमधु  
के साथ शालाकी जिह्वा पर ओ३म् लिखे तथा कान में बटे कि  
‘वेदोमि’ तद्वारा गुप्त नाम वेद है। यह वैदिक धर्म का ही  
विरोधता है कि उसमें उपन्यस्त होने ही ओ३म् का उपदेश दिया जाना

८—विधि नश्वर और उनके देवता यदि पदों में न तो विधि लगाने की आवश्यकता । किन्तु किस प्रकार से सगे स्वयं में नश्वरों विभक्ति लगाई जावे—यह परिज्ञान सम्कार लगाने पड़ेगा । जो होता होगा । अपने को विधि कहने वाले और नश्वरों के देवता को भी हमारा परिज्ञान नहीं है । वह एक कर्मस्थ है परन्तु स्वयं स्वयं आवश्यक है । जबतक कार्य समाज में इन कार्यों की आवश्यकता विशेष रूप में निर्दिष्ट नहीं किये जायेंगे और उनका प्रमाण का ज्ञान नहीं दिया जाता तब तक मन्त्रों के विषय में धारणा का नामकरण सम्कार के इन विधियों की जानकारी नहीं हो पायेगा । कुछ दिनों में सम्कारों की प्रथा भी कार्य समाज में समाप्त हो

कविता—विशेष रूप से यह है कि जो जो नीचों की जड़ न जमी है सो—यही उमा-मय-मान को न मन्त्रात्मक शक्ति में। इस मन्त्रात्मक शक्ति के द्वारा ही यह होता है।

मन्त्रकरण मन्त्रार में पुनिमा का देवता विश्वेदेव लिखा है। विश्वे की शक्ति में से विश्वदेव का नाम आया है। परन्तु विश्व मन्त्रार का पद है और देव शक्ति विभक्ति के 'देव' पद है परन्तु यह समान नहीं है। यदि विश्वदेव लिखा गया होता तो यह मन्त्रात्मक शक्ति यह विश्वदेव नाम का कोई देव है। परन्तु विश्वेदेव कहने में यह स्पष्ट हो गया कि 'विश्वेदेवा' के लिए यह पद प्रयुक्त है। तथा इस प्रकार पुनिमा का देवता विश्वेदेव है—यह स्पष्ट है। जो पुरोहित और अधिष्ठित पुरोहित नववद्व्याओं की मन्त्रार जानने वाले विश्वेदेवाय स्वाहा' बोलकर श्राद्धति देने है। यह सर्वज्ञ हो गलत है। 'विश्वे' पद मन्त्रार के प्रथमा का बहुवचन है जो वत्साकार में है और देवाय पद चतुर्थी विभक्ति मप्रदान कारक का व्यवहृत है। दोनों का सम्बन्ध कुछ भी बना नहीं और कही का उँट कही का रोड़ा जोड़ कर नववद्वी कर ली गई। इस प्रकार की मनुष्यता की जाया करती है और संस्कार हो जाया करता है।

इसी प्रकार नक्षत्रों में कृत्तिका है। कृत्तिका २१ ताराओं वाली है। इसको लोग 'कृत्तिकाये स्वाहा' बोलते हैं जबकि बहुवचन बोलना जाना चाहिए और कृत्तिकाभ्यः स्वाहा' ऐसा बोलना उचित है। यह जितनी पता नहीं वही संस्कार सराने फिरते हैं।

'पुनर्वसु' नक्षत्र को लोग माधारण नियम से पुनर्वसुवे स्वाहा' बोलते हैं। परन्तु यह गलत है। पुनर्वसु दो तारों का नाम है। विशेष ध्याकरण का नियम जिसको न तो मान्य वे गलती ही करेंगे। ध्याकरण आदि के ज्ञान बिना तो ऐसा ही होगा। ध्याकरण शास्त्र के अनुसार मन्त्रार पुनर्वसुवे स्वाहा' केवल वेद में ही पुनर्वसु' पद व्यवहृत में प्रचुर होता है। अन्यत्र नहीं। अतः द्विवचन में उसे लेना चाहिए। ध्यान में उसका रूप पुनर्वसुभ्याम्' बनेगा, ऐसा ध्याना में पुनर्वसुभ्या स्वाहा' बोलना ठीक है। इसी प्रकार विश्वेदेवा' नक्षत्र की भी द्विवचन में बोलना चाहिए। उसका चतुर्थी विभक्ति के द्विवचन में विश्वेदेवाभ्याम्' रूप बनेगा।

इस प्रकार की कई ऐसी दलिया है जिनका परिज्ञान होना आवश्यक है। जो कार्य बिना पुरोहितों की मृगशीर्ष किये पूर्ण नहीं होगा।

जो लोग कहते हैं कि निधि और नक्षत्रों के देवताओं की स्मृति पौराणिक है वे गलत हैं। यह पूर्णतया वैदिक है। उसमें पौराणिक पता कुछ भी नहीं है। उस पर थोड़ा सा विचार किया जाय है।

अधिवानी—यम—इस पर शतपथ १२।२।२८ में लिखा है कि वयन् और योम को अधिवानिया में बांधना है।

भरणी—यम—इस पर तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।२।३ कहता है कि अनुवाधा प्रथम और भरणी उत्तम ये मन्त्र यम नक्षत्र हैं।

कृत्तिका—अग्नि—इस पर तैत्तिरीय १।१।२।१ पर लिखा है कि कृत्तिकाय नक्षत्रों के मूल है। पुनः तैत्तिरीय १।१।२।१, १।१।२।१, ३।१।२।१ बताया गया है कि ये अग्नि के नक्षत्र हैं। शतपथ २।१।२।१ में वर्णित है कि कृत्तिकाय अग्नि के नक्षत्र हैं। पुनः शतपथकार २।१।२।१ में कहा है कि आगे ये कृत्तिकाय उदित होती हैं और अग्नि उनका मियन—मेन है। इसी सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।२।१ में कृत्तिका के कई नक्षत्रों के नाम में श्राद्धतियाँ भी देने का वर्णन मिलता है। शतपथ २।१।२।२ में लिखा है कि हमारे नक्षत्र तो एक, दो, तीन और चार होते हैं परन्तु कृत्तिका बहुत नक्षत्रों वाली है।

रोहिणी - प्रजापति—इस विषय में तैत्तिरीय १।१।२।३ में लिखा है कि विराट् जो ऊपर की चट्टी को रोहिणी हुई। यही रोहिणी का रोहिणीपना है। पुनः तैत्तिरीय १।२।२।३ में कहा गया है कि वह विराट् रज्जो गई प्रजापति में ऊपर हो गई इसमें उसे रोहिणी कहा जाता है। इसी प्रकार तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।२।१ और १।१।२।४ में रोहिणी का प्रजापति के साथ सम्बन्ध दिखाया गया है।

मृगशीर्ष—सोम। इस सम्बन्ध में तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१।२।२ में लिखा गया है कि सोम राजा मृगशीर्ष नक्षत्र के साथ प्राप्त हुआ। पुनः ऐतरेय ३।३।३ में लिखा है कि प्रजापति मृद से बंधा गया भग्न। उसे ही मृग कहते हैं। शतपथ में लिखा है कि यह प्रजापति का शिर ही मृगशीर्ष है। तैत्तिरीय ३।१।२।३ में यह वर्णित है कि सोम ने सोम रूप मृगशीर्ष के लिए जल में ध्यामाक चक्र का व्यवहृत





और ... के अनुसार यह एक रास का पूर्वा प्राणवदा  
नक्षत्र है।

उत्तरा भाद्रपदा अर्धरात्रि में ... १३३५ में उत्तरा  
भाद्रपदा का अर्धरात्रि का नक्षत्र माना जाता है।

रेवती—पुनः इस पर वैजयंती ब्राह्मण १३३५ और  
१३३६ में उक्त है कि रास का नक्षत्र रेवती है और पूषा  
का नक्षत्र रेवती का अनुसरण करता है।

इस प्रकार नक्षत्रों के द्वारा या व विषय में विस्तृत उक्त  
वैदिक साहित्य में मिलता है। नक्षत्रों का नाम अथर्व वेद में  
वर्णित है।

१२—रासकर्म मन्त्र में रासों का उक्त है कि प्राणम पन  
प्राणम धेन ७ इमी मन्त्र में प्राणम में रासों का उक्त है जो रास  
नक्षत्र है। इसी प्रकार ऊपर की धार द्वारा यह कहा जाता कि विष्णो-  
देवता में यह रास नहीं है।

उसका समाधान यह है कि रासों पर रास में प्राणना नहीं की जा  
रही है। वेदमन्त्रों के अर्थ करने का वैदिकी पवित्रा और ही है।  
मन्त्र प्रत्यक्षता, पराक्षता और आचार्य मन्त्र में तीन प्रकार के  
होते हैं। इसी प्रकार इनमें उत्तम पुरुष मन्त्रम पुरुष और अन्त-  
पुरुषों का प्रयोग होता है। रास पर रास रासों में उत्तम या मायम  
पुरुष का प्रयोग पाया जाता है रास पर अर्थ करने समय अन्य पुरुष  
वन जाता है। इस प्रकार 'प्राणम प्राणम' का यह अर्थ होता कि  
प्राणम इस वाक्य को रक्षा करती है मन्त्रों में। इसी प्रकार—  
विष्णोदेवता में रास का अर्थ यह होता कि यह ऊपर विष्णु अर्थात्  
चतुर्वर्ग मन्त्रकार की रास का मान्य है।

१३—नक्षत्रकर्म मन्त्र में रासों का उक्त है कि रास और रास  
के साथ नक्षत्र में रासों का विधान इसका है कि वे रासों का रास  
सर्वथा माना होते हैं।

१४—रासकर्म मन्त्र का अर्थन का मान्यन गुणमूत्र का है,  
परन्तु इसका मुख्य प्रकार धारण से सम्बन्ध रखता है।

१५—उत्तमम मन्त्र में रासों का उक्त है कि रासों का विचार व योग्य  
है। उत्तमम व ही रासों का और रासों का नाम भी है। उत्तमम  
इसका नाम इतिहास है कि रासों को रासों में आचार्य के रास

माना जाता है, अतः इस अर्थान् रासों और रासों का उक्त है—  
इस प्रकार रासों का मान्यता है। रासों का नाम इसका नाम  
कि यह रासों का मान्यता है। इसी प्रकार रासों का नाम इस  
कारण से है कि इसमें रास अर्थान् अनुमानन का अर्थन रासों का  
मान्यता है। रासों की रासों का नाम रासों के लिए मान्यता है।

१६—इसमें अन्त में उक्त मन्त्रों को प्राप्त करने का रास मान्यता  
माना है। अन्त में रासों अनुमानन धार रास में मन्त्रों अन्त  
में उक्त मन्त्रों को प्राप्त कर सकता है।

१७—वेदार्थ मन्त्रों का नाम न होकर विद्यार्थ मन्त्रों का नहीं है  
ऐसा उक्त माना जा सकता है। इसका समाधान यह है कि वेद में ही  
विद्यार्थ का प्राग्भ माना है। रासों मन्त्र का उपदेश करके आचार्य  
आचार्य का विद्या देना प्राग्भ करना है। अतः वेद में ही प्राग्भ  
है। रासों विद्यार्थ वेद में ही आचार्य है। अतः वेद में ही प्राग्भ होता  
भी चाहिए।

१८—यह रास पर उक्त है कि रासों मन्त्र का उपदेश क्यों  
आचार्य देता है? वेदार्थ मन्त्रों में इसका सम्बन्ध ही क्या है?

इसका समाधान यह है कि पवित्र जो मन्त्रों करने है व भी  
नहीं कर पाते। रासों और रासों का मान्यता माना की रूप करने का  
प्रयत्न करते हैं। यह पर इसका समाधान किया जाता है। इस  
मन्त्र में मन्त्रों के भगवान् के वेदार्थों की धारण करने का उप-  
देश है। रासों भगवन् धारण किया हुआ बुद्धि की उत्तम कर्मों में प्रेरित  
करता है। इस पर रासों ब्राह्मण प्रयोग १३३५ में उक्त गया है कि  
वेद और उक्त ही इस रासों के वेदार्थों है। रासों विद्यार्थ में  
वेदार्थ में रासों मन्त्र का उपदेश मान्यता है—यह मन्त्रार्थ मिद  
ही माना है।

१९—समिधा की अग्नि में डालने समय की प्राणना बहुत ही  
उत्तम है। जिस प्रकार अग्नि समिधा में प्रदीप्त होती है वैसे ब्रह्म-  
चारी धारु, मेधा, वचन आदि में प्रदीप्त होने की इच्छा प्रकट  
करता है। वह एक मुन्दरतम भावना व्यक्त करता है। वह यह है  
कि वह यह चाहता है कि उसका आचार्य मदा जीवित पुत्रों वाला  
रहे। अर्थात् आचार्य की पुत्रशोक का कष्ट न हो।





- १५—सोमोराजा मगशीर्षेण आगत । नै० ३।१।१।२  
 १६—स प्रजापतीरुद्रेण । विद्व उदत्तयन् नमेनं मृग इत्याचक्षते ॥  
 ऐतरेय ३।३३  
 १७—स (सोम । एत सोमाय मगशीर्षाय इयामाकं चरं पयसि  
 निरवपन । ततो वं स प्रोवधीनां राज्यमम्यजयन नै० ३।१।४।  
 ३।  
 १८—घाट्यायां रुद्रः प्रथमान एति । रुद्रस्य बाहू (घाट्यानक्षत्रमिति  
 सायण ) नै० १।५।१।१  
 १९—अद्विष्य पुनर्वसू । नै० १।५।१।१  
 २०—एवा न देव्यनिरनर्वा । विश्वस्य भर्त्रो जगत प्रतिरुठा । पुनर्वसू  
 हविषा वधयन्ती । नै० ३।१।१।४  
 २१—वृहस्पतेस्तथाय । नै० १।५।१।२, ३।१।१।४  
 २२—स (वृहस्पतिः) एवं वृहस्पतये तिथ्याय नैवार चरं पयसि  
 निरवपन । नै० ३।१।४।२  
 २३—ते देवाः सर्वस्य घाट्येवाय आउये करम्भं निरवपन । तान्  
 (प्रमुरान) एताभिरेव देवताभिरुपानयन् । नै० ३।१।४।३  
 २४—पितृणां मघा । नै० १।५।१।२, ३।१।१।३  
 २५—भद्रस्य वा एतन्नक्षत्रं यदुत्तरे फाल्गुनी ॥ नै० १।१।१।४.१  
 इत्यादि ।  
 २६—अयमणो वा एतन्नक्षत्रं यत्पूर्वे फाल्गुनी । नै० १।१।२।४  
 इत्यादि ।  
 २७—देवस्य सविनुहस्त । नै० १।५।१।२  
 २८—हस्त एवास्य (नक्षत्रियस्य प्रजापते हस्तः । नै० १।५।१।२  
 २९—चित्रा शिरः (नक्षत्रियस्य प्रजापते ) । नै० १।५।१।२  
 ३०—स्वष्टा नक्षत्रमस्येति चित्राम् । नै० ३।१।१।६  
 ३१—चक्षुर्वा एतन्सर्वस्यस्य यस्त्वित्रापूर्णमास ॥ तां ५।६।१।१  
 ३२—वायानिह्या (स्वानिगिति सायण ) नै० १।५।१।३ इत्यादि  
 ३३—इन्द्राग्न्योविशाले । नै० १।५।१।३  
 ३४—नक्षत्राणामाधपत्नी विशाले ॥ श्रेष्ठो इन्द्राग्नो भुवनस्य गोपो  
 नै० ३।१।१।११  
 ३५—(प्रजापतेनक्षत्रियस्य) ऊरु विशाले । नै० १।५।१।३  
 ३६—अवेवामग्नममेति तन्नूराधा । नै० १।५।१।३

- ३७—(नक्षत्रियस्य प्रजापते) प्रतिष्ठाऽनूराधा । १।५।१।३  
 तथा मित्रस्यानूराधा । १।५।१।३  
 ३८—इन्द्रो ज्येष्ठामनुनक्षत्रमेति । ३।१।१।२  
 ३९—निश्च्यं त्यं मूलवहंणी । १।५।१।४  
 ४०—मूलवहंणी (मूलमेवामवृक्षामेति । तन्मूलवहंणी । नै० १।५।  
 २।८  
 ४१—यन्नासहन् । तदवाढाः १।५।१।४  
 ४२—अपां पूर्वावाढा । १।५।१।४  
 ४३—विणो श्रोणा (अदणनक्षत्रमिति सायणः) नै० १।५।१।४  
 ४४—रमूनां अविष्टाः नै० १।५।१।५  
 ४५—अष्टो देवा वमवः सोम्याम चतस्रो देवीरजरा अविष्टाः । ते  
 यज पान्तु रजसः पुरस्तात् सवत्सरीणाममृतं स्वस्ति । नै० ३।१।  
 २।६  
 ४६—अत्रस्य राजा वरुणोऽधिराजः नक्षत्राणां शिनभिव्यवर्णिष्ठः ।  
 नै० ५।१।१।३  
 ४७—अजस्येकपदः पूर्वे प्रोष्ठपदा । नै० १।५।१।५  
 ४८—अष्टिर्वं स्निग्धस्योत्तरे प्रोष्ठपदा । नै० १।५।१।५  
 ४९—पूणोरेवती १।५।१।५ ; पूवा रेवत्यन्नेतिवस्याम १।५।२।६  
 ५०—वेदाऽच्छन्दासि सविनुर्वरेण्यम् । गो० पू० १।२२

## नवम प्रकरण

### सन्ध्या-विधि-विमर्श

आर्यि दयानन्द के द्वारा प्रस्तावित सन्ध्याविधान पर विचार किया गया और यह विचारवादी गया कि वह बहुत ही वैज्ञानिक है। सन्ध्या की वक्षोज कहा जाता है। यहाँ पर वक्षोज देखने का अर्थ है वक्षधनु के अर्थ की लेकर सावधान है। उपायताज भा वक्ष का एक प्रकार है। इसमें सन्धि धारिता और उपायता का एक ऐसा करण है। उपायता और सन्ध्यान समानार्थक है। इस समझ में सन्ध्या का मन्त्र अपना है।

#### सन्ध्या

कुछ लोग सन्ध्या का अर्थ काल के समन्वय में मान कर दिया करते हैं। वे समझते हैं कि प्रातः सायं का ही सन्ध्या में सन्ध्या का विधान है अतः सन्धि केना में होने से इसको सन्ध्या कहा जाता है। सन्धी भवा सन्ध्या—ऐसी ध्युर्धन भी वे कहते हैं। परन्तु सन्ध्या तो क्षण क्षण में होती है फिर दिन रात सन्ध्या ही रहेगी। दो समय का ही क्या प्रश्न रह जावेगा। साथ ही सन्ध्या फिर सावधानी भी रहेगी। कापि दयानन्द ही सन्ध्या का स्वरूप सावधानी है। प्रातः सायं की सन्धि ही लेकर सन्ध्या का अर्थ करने पर प्रश्न यह होगा कि फिर यह सन्ध्या सावधानी भूमण्डल के लिए नहीं रह सकती। मान लिया कि कल लोग ठण्डा उनकी ध्वज और दक्षिणी ध्रुवों में रहने लगे तो फिर उनके लिए तो छः मास पूरा बार ही सन्ध्या का अवसर आवेगा। क्योंकि वहाँ छः छः मास के दिन और राति होते हैं। फिर सन्ध्या भी ऐसा ही होगी। परन्तु ऐसा नहीं है। सन्ध्या ऐसा तो ही नहीं सकता कि छः मास में वे और छः मास जायें। उसके मोने जागने का कार्य तो नीचोम पक्षों में ही होगा जब वह मोने उसे तो उसके पूर्व राति की सन्ध्या कर ले और जब वह मोकर उठे तो प्रातः

काल की सन्ध्या कर ले। परन्तु सन्ध्या की काल में जो रत्ना शोक नहीं। उस अवस्था में यह संभव नहीं हो सकेगा। यह तो नहीं संभव होगा जब काल की सन्धि का अर्थ लेकर सन्ध्या का न होता जावे। कापि दयानन्द ने इस रहस्य को समझकर ही सन्ध्या का अर्थ किया कि 'सन्ध्या रूप में ध्यान किया जाना है' वक्ष का जिसमें वह विधि सन्ध्या है। इसकी व्यवस्था भी उसी प्रकार है। सन्ध्या ध्याने वक्ष यस्या सा सन्ध्या। अतः भारत में सूर्य का उदय अस्त प्रातः सायं प्रमण द्वारा है उस दिशि में स्मृतिरागे न उसका समय प्रातः सायं का गया। परन्तु यह समय का निर्धारण स्मृत है। यह देश काल के अनुसार बदलता है। सन्ध्या वैदिक धर्म है जो सभी देश काल के लिए है।

#### दिशा

इसी प्रकार दिशा सन्ध्या विधि का भी समझना चाहिए। स्मृति के अनुसार सन्ध्या काल की सन्ध्या पश्चिमाभिमुख होकर करनी चाहिए और प्रातः काल की सन्ध्या पूर्वाभिमुख होकर करनी चाहिए परन्तु भारत के मकराना में यदि इन दिशाओं में सन्धी वायु का कोई गलबता हो सके तो उस अवस्था में उन्ही दिशाओं में मुख करके सन्ध्या करना कभी तक ठीक हो सकता है। कापि दयानन्द ने इसका उपाय किया है। वे कहते हैं कि जिसमें सूर्य का उदय होता है वह भी प्राची दिशा है और जिसमें सन्ध्या करने वाला मुख करके सन्ध्या करने बैठ जावे वह भी प्राची है। वे लिखते हैं—यत्र मुख मा प्राची यत्र सूर्य उदेति सावित्र प्राची।

#### शीघ्रक

सन्ध्या की विधि के शीघ्रक जो कापि ने बताया है वे भी बहुत ही विचारपूर्ण हैं। वे निम्न प्रकार हैं—

- १—सिन्ध्यावन्धन
- २—आनमन
- ३—अङ्ग न्यसनं
- ४—माजन
- ५—प्राणायाम
- ६—अधमर्षण













## दशम प्रकरण

पुरोडाश और पशु

[illegible]

है। इस बात को जाने राजा और दूसरे भी उपासना राजा।  
 किन्तु यह को भी वे जानते। इसका प्रमाण यह है। परन्तु वहां  
 करण शब्द में नहीं। यह प्रमाण और उपमा किन्तु का हमसे प्रमाण  
 जाता है। यामयाग्य में इसका अर्थ प्रमाणमूलक है। यदि यमें  
 वचन, वेदमूल्य आदि किसी के लिए समझा प्रयोग है। यदि इसका  
 अर्थ 'म' इस विषय की परिभाषा के अनुसार न दिया जाये तो  
 अन्तर होगा। भीमाया की परिभाषा में किन्तु यह का और ही अर्थ  
 है। इसी प्रकार गुण शब्द का अर्थ जाना जाता है। गुण शब्द में प्राणिनि  
 के व्यवकरण शास्त्र में 'गुण' शब्द और धा की गुण कहा  
 जाता है। व्यवहार में गुण शब्द का अर्थ विशेषता दिया जाता है।  
 परन्तु 'काय वेदोक्त आदि दार्शनियों में गुण शब्द है जो द्रव्य मे रहता है।

श्रीर त्रिममे गुण नही रहता । ये ३४ गिनाने में है । उस प्रकार शम्भो  
 की प्रपत्नी परिभाषाओं के अनुसार ही अर्थ लेना चाहिए । अन्वया  
 पार अन्वय हो सकता है । परोक्षान् आदि का भी उदाहरण है ।  
 जलद्वय शास्त्रण १६-१५ में इसे 'परोक्षान्' अर्थात् पत्न आदि में पत्न  
 दिया जाने वाला होने से परोक्ष कहा है । ऐतरेय ३८-३ में इसका  
 वर्णन इस प्रकार किया गया है कि परोक्षान् का यही परोक्षान्-पत्नी  
 है कि पत्न में देवी ने इसे पत्न्ये दिया । तैत्तिरीय ३-८-८ में पत्न-  
 मान को परोक्षान् कहा है । उदा परोक्षान् का अर्थ पत्नमान है ।  
 कोमीवर्षी १३-१६ में आत्मा का पत्नमान का परोक्षान् कहा गया  
 है । तैत्तिरीय ३-८-८ में पशु को पत्नमान मर्ति को परोक्षान् कहा  
 गया है । जलपत्र १-८-१ में किया गया है कि पत्न जो कुछ परो-  
 क्षान् है वही पशु का आश्रय है । अर्थात् पशु मार्ग के काम पत्न  
 में परोक्षान् है कि परोक्षान् का निर्माण करता ही पशु का आश-  
 र्भन है । गण्डय शास्त्रण २-१२-१० में कहा गया है कि पशु ही  
 परोक्षान् है अर्थात् परोक्षान् पशु का भी वाक्य है । ततः तैत्तिरीय  
 शास्त्रण ३-८-८ में मर्त्याक का परोक्षान् कहा गया है ।

उन प्रमाणों के आधार पर पुरोडाश पद के अनेक अर्थ होने हैं। कोई यदि उन अर्थों में प्रसंग आदि को न देखकर उलट कर कर अर्थ कर लवे तो असत्य हो सकता है। यही कारण है कि कुछ लोग पुरोडाश के बनाने की विधि और वास्तविक पुरोडाश द्रव्य का न ज्ञान कर 'पशु' अर्थ लेकर उसे ही यज्ञ में भागकर यज्ञ करने का विधान कल्पित कर लेते हैं वस्तुतः पुरोडाश गायूम (गेहूं) के घाटे का बनता है। इसमें दूध आदि डालकर पर्याप्त खमार पैदा हो जाता है। पकाने के बाद यह जल के लून की तरह छिद्रोवत्ता हो जाता है। मन्त्रिक का भेजा भी उसी प्रकार का होता है। अब पुरोडाश को मन्त्रिक भी कहता—एक वैज्ञानिक रहस्य ही है। पुरोडाश का पशु अर्थ लेकर असत्य लोग बोलते हैं। ऊपर के प्रमाणों में पशु की प्रतिमा का नाम पुरोडाश है। अथवा पुरोडाश की जड़न तैयार होने पर पशु के आकार की हो जाता है। यह भी हो सकता है कि साक्षिक लोग कलात्मक रूप पर पुरोडाश पकाने हुए उसे किसी पशु का आकार कभी दे देते रहे हो। परन्तु उसमें यह तो नहीं कहा जा सकता है कि पुरोडाश वस्तुतः पशु है जो यज्ञ में डाला जावे। आज-

[illegible]

परीक्षा करने में विविध धारणाओं से भी परीक्षा के समस्त क  
पदार्थों की गूँजा लम्बा धारणाओं का ही गढ़ है। उसे देखते ही यह  
स्पष्ट हो जाएगा कि परीक्षा ही परीक्षा का परीक्षा है। जहाँ तक प्रश्न में  
नमस्की यागीय धारि का सम्बन्ध है। जहाँ परीक्षा का प्रश्न होने  
पौर परीक्षा धारि का सम्बन्ध है। जहाँ पर परीक्षा का प्रश्न हो रहा  
है।

[illegible]

इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में ज्ञान के आनंद का

प्रयोग ही क्यों किया गया ? इसका समाधान यह है कि विज्ञान का क्षेत्र सिध्दा यन्त्रा ज्ञान है शब्दा का प्रयोग उनही विज्ञान द्वारा किया है । शब्दा को फिर कहा गया है परन्तु वैदिक भाषा में योगिकता के कारण शब्दा का प्रर्थ बहुत विगल है । इसलिये जो नाम पशु आदि के है वही औषधियों और अन्न आदि के भी है ।

कई लोग यह कहते हैं कि पशु की प्रतियोगिता भी पुराणा का  
गया है। फिर क्या पशु में पशुपति आदि की आराधना का पशु नहीं  
पर इस पुराणा का ही ज्ञान आदि भी कर दिया जाना चाहिए।  
वास्तविक पशु पालने की क्या आवश्यकता है? इसका समाधान यह  
है कि आराधना पशुपति के समान कार्यों का पुरा नहीं करना है।  
शब्द में कि ज्ञान व्यक्ति स्वयं आराधित और केवल ज्ञान की प्रधानता  
नहीं ज्ञान में नहीं प्रधानता है। यदि कहा जाये कि 'ना ज्ञेयो  
है।' तो यह पर ही व्यक्ति का प्रधानता है ज्ञान और आराधित की  
नहीं यदि कहा जाये कि ज्ञान का ही ज्ञाता ही फिर आराधित का ही  
प्रधानता ज्ञान। परन्तु यदि कहा जाये कि आराधन का ही दो तों  
वह पर ज्ञान का प्रधानता है। वास्तव में मिश्र आदि जो दन में वह  
कार्य पुरा नहीं ज्ञान।

इसी प्रकार पशु पद का प्रयोग भी अनेक ग्रन्थों में होता है। हमका विश्वास है वर्णन में ही मुख्य वैदिक युग और आदि मानव तथा अग्रणी का अर्थ (Gems Of Aryan Wisdom) में दिया है पशुओं के वाचक शब्द अन्न के भी नाम है अथर्व १८. १३२ और १८. १३३ में धान का धेनु और जित का अन्न कहा गया है। धानों का नाम पितृ शिष्टि, शिष्टिना आदि कहा गया है अथर्व १९. १७२ में कर्णों को अन्न और नावरा को भी कहा गया है। नृपों को मशक कहा गया है। कर्कशाँवी, प्रसंगत्या गावराय आदि भी लोक में आंध्रियों के ही नाम हैं उसी शिष्टि में वैदिक शब्दा पशु ही वज्र में आंध्रभाषिक हैं—समझना चाहिए। उनको उनके वाचनिक रूप में ही लेना चाहिए।

## प्रमाणसंदर्भ

१ पुगो वा एतान् देवा प्रकृत यःपुगोडाशन्तःपुगोडाशानां पुगोडा-  
शन्तम् । ऐ २५३

- २—यजमानो बं पुरोडाश ॥ तै० २।२।२।६  
 ३—आत्मा बं यजमानस्य पुरोडाशः ॥ की० १।३।५-६  
 ४—पशोर्बं प्रतिमा पुरोडाश ॥ तै० ३।२।६।५  
 ५—पशुर्बं वा एष भास्यते यत्पुरोडाशः ॥ श० १।२।३।७  
 ६—पशवो बं पुरोडाशा ॥ ता० २१।१।१।१०  
 ७—सन्निष्करो बं पुरोडाशः ॥ तै० ३।२।७।३  
 ८—स वा एष पशुर्बेवास्यते यत्पुरोडाशस्य यानि किञ्चाक्षि  
 तानि रोमाणि ये तुवा स्युः स्वये कस्वीकरणास्तदमृग यन्निष्कं  
 किञ्चनसास्त्रन्मासं यत्किञ्चित्कं सारं तदस्मि सर्वेषां वा एष  
 पशुनां मेधन यजते यः पुरोडाशेन यजते । तै० २।६

## एकादश प्रकरण

### यज्ञ और वायुशुद्धि एवं वृष्टि आदि

शतपथ ब्राह्मण काण्ड ५ और अध्याय १ तीन में यह लिखा है कि अग्नि में धूम वाष्प पैदा होता है, उससे मेघ पैदा होता है और उससे वृष्टि होती है। इसी कारण हमें तपोत्रा अर्थात् अग्नि में उत्पन्न माना गया है। यज्ञ में सभी प्रकार के पुष्ट और सुगन्धित पदार्थ प्राहुति में डाले जाते हैं। अग्नि उन्हें जला कर सूक्ष्मोन्नत करके वायु में पहुँचा देता है। ये तब वायु को भी शुद्ध करते हैं और मेघ को भी बनाते हैं। इससे वृष्टि भी होती है।

यज्ञप्रक्रिया में अग्नि और मन्त्र देवा का बहुत बड़ा भाग है। मन्त्र और अग्नि दोनों ही वृष्टि में प्रावर्तीय क्षेत्र में महान् कार्य करते हैं। यज्ञ का विचार करने समय इनका विचार भी किया जाना आवश्यक है। मन्त्रों के विषय में मेने अपना पुस्तक 'साइमन्ट् इन दि वेदाज' में किया है। यज्ञ पर यज्ञ की प्रक्रिया में उन पर विचार किया जाता है। उष्ण यजुर्वेदोप शाखा दूसरा वाण्ड 'चौथे प्रपाठक' में लिखा है कि अग्नि हम पृथ्वी में वृष्टि का ऊपर वाष्प रूप में ले जाता है। मरद्गण उसका निर्माण करते हैं और आकाश में फैलाते हैं। सूर्य की किरणें जब न्यङ् होती हैं तब वर्षा होती है। तैत्तिरीय आरण्यक' के दशम प्रपाठक के ६२व अनुवाक में लिखा है कि त्रिन रश्मियों से आदित्य सन्तान होता है उसी में मेघ वर्षा भी करता है। मनुस्मृति २।७६ में लिखा है कि आदित्य में वृष्टि होती है, वृष्टि में अन्न और उससे प्रजाय होता है।

यज्ञ-सम्बन्धी कुछ आवश्यक बात यजुर्वेद के मन्त्र में जो पूर्व प्रकरण में उसकी प्रसंग में दिया जा चुका है लिखी गई है। मन्त्र का प्रारम्भ होता है—मान ते अग्ने अमिथः मान त्रिह्वाः। इसमें मान मन्त्रको का वर्णन है जो यज्ञ के विविध उपकरणों आदि में सम्बन्ध





कह दिया जाता है। ये दस प्राण भी बाह्य-जगत् में और आन्तरिक जगत् शरीर आदि में कार्य करते हैं—ये दस प्राण इस प्रकार हैं—

प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनजय हैं। ये शरीर में रहर निम्न प्रकार कार्य करते हैं।

प्राण—श्वास को बाहर निकालता है।

अपान—श्वास को भीतर लेता है।

व्यान—समस्त शरीर में रक्त का संचार करता है।

समान—नाभिस्थ शरीर में रस पहुंचाता है।

उदान—कण्ठस्थ अन्न-पान को भीतर पहुंचाता है।

नाग—बाल्ति तथा मल को निकालता है।

कूर्म—निमेष उन्मेष का कारण है।

कृकर—भोजन-पान की इच्छा पैदा करता है।

देवदत्त—जम्हाई आदि का कारण है।

धनजय—बेमुध, मूर्च्छा, खर्गीटा लेना आदि का कार्य करता है।

इन्हीं प्राणों पर इन्द्रिय-व्यापार आधारित है। ये धनः प्राण होकर इन कार्यों का शरीर में करते हैं। ये ही बाह्य जगत् में विभिन्न कार्यों के संचालक हैं।

इसी प्रकार सप्तशीर्ष्ण प्राणों का भी वर्णन है। सात शिरस्थ इन्द्रियों का भी सात प्राण बता जाया है। मरुतों के कार्य का विस्तार बहुत है। इस पर विशेष वैज्ञानिक विश्लेषण की आवश्यकता है।

भगवान् की मृष्टि में यज्ञ हो रहा है। वह वैज्ञानिक यज्ञ है। उसी का अनुकरण कर यज्ञ किया जाता है। वस्तुतः यज्ञ उस महान् यज्ञ की समझने का साधन भी है। मनु जो आदि पुरुष माना जाता है, उसने यज्ञ किया। शतपथ ब्राह्मण १।१।१।७ में लिखा है कि मनु ने प्रथम यज्ञ में यज्ञ किया और उसका अनुकरण करके ये प्रजायें यज्ञ करती हैं।

## प्रमाणसम्बन्ध

१—अग्नेर्वै धूमो जायते धुमावभ्रमभ्राव वृष्टिरग्नेर्वायता जायन्ते तस्मादाह तपोजा इति।

२—अग्निर्वा इतो वृष्टिमुदीरयति महतः सृष्ट्यां नयन्ति यदा वानु वा असौ आदित्यो न्यङ्, रश्मिभिः पर्यावन्ते ऽयं वर्धन्ति।

३—याभिरादित्यस्तपति रश्मिभिस्ताभिः पर्जन्यो वर्धन्ति।

४—आदित्यान्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः। मनु० २ इलोक ७६

५—तान्येतान्यष्टौ अग्निरूपाणि कुमारो नवमः। श० ६।१।३।१८

६—अग्निर्वै स देवस्तस्येतानि नामानि, शवं इति यथा प्राच्या आचक्षते, भव इति यथा वाहीकाः पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति।

श० १।७।३।८

७—महतोऽभिरग्निमतमयन्। तस्य तान्तस्य हृदयमाच्छिन्वन् ता अशानिरभवत् ॥ तं १।१।३।१२

८—मनुर्ह्वाऽअग्रे यज्ञेनेजे तदनुकृत्येमाः प्रजा यजन्ते ॥

श० १।५।१।७

## द्वादश प्रकरण

### ‘इदन्न मम’ और पात्र में घी छोड़ना

पर्याप्त विचार इस विषय पर है कि ‘इदन्नमम’ में नवा में वस्त्र हूँ घी को जल पात्र में डुबक छोड़ना चाहिए वा नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि ऐसा करना चाहिए और कुछ का विचार है कि नहीं। महाप्रसाद ने अपनी मन्त्रा विधि में कई मन्त्रों में ऐसा करने को लिखा है परन्तु यज्ञ आदि में सर्वत्र ऐसा करने का विधान नहीं किया। यदि यज्ञ आदि में सर्वत्र ऐसा करना अभीष्ट होता तो वे अवश्य ही लिखते। यज्ञ पर वस्त्र हूँ घी को जलपात्र में डालने का विधान किया है वहाँ पर उस घी का उपयोग भी लिखा है। कहीं पर उस घी से आर्घ्य देने का विधान नहीं किया है। यहाँ पर इसी प्रसंग में कुछ विचार किया जाता है परन्तु इसके पूर्व और उसी अनुच्छेद में अन्य यज्ञ मन्त्र-घी बात भी आ जाती हैं।

यह नियम है कि ‘यजति’ किया का अर्थ द्रव्य, देवता और त्याग है। याग भा दक्षिण ऐसे अर्थ को देता है। याग वह है जिसमें हवि आदि द्रव्यों से इन्द्रादि देवताओं के निमित्त प्रक्षेप अर्थात् त्याग किया जावे। इस त्याग का जताने के लिए ही प्रक्रिया बता जाती है कि ‘इदं जावेदमे इदन्नमम’ अर्थात् यज्ञ आदि जावेदम् आदि के विदे है—मंरी नहीं। यही प्रसूत आहुति दिये जाने वाले मंत्र में आगे देवता का नाम लेना है। मंत्र में आगे देवता का मंत्र से कर्मात्त में नाम लेना—यह प्रथा यही से पड़ी है। ऐसा मानूम पड़ता है। इसलिए कात्यायन और सूत्र १.२.१.२ में लिखा है कि ‘यजं व्याख्यास्यामः’ अर्थात् अब यज्ञ की व्याख्या करेंगे, वह यज्ञ द्रव्य, देवता और त्याग से सम्बद्ध है। सूत्र में लिखा है ‘द्रव्य देवता त्याग’। पुनः आगे चलकर १.२.१.२ में लिखा है न देवता—अग्नि शब्द किया परमत्त्वात्—अर्थात् देवता आत्मीय आदि अग्नि, मंत्र और किया के स्थान में कोई प्रतिनिधि नहीं हो सकता। उन्हें तो ऐसा ही करना

पड़गा। पुनः १.२.१.३ पर टाकाकार लिखना है कि सामग्र्य में इदं जावेदमे इदन्नमम—इस प्रकार त्याग करना चाहिए और मंत्र सर्वत्र व्याख्यात पड़ता चाहिए। पश्चात्तरंग में इनके व्यापन होने से त्याग करने का आवश्यकता नहीं। इसमें यह स्पष्ट है कि त्याग का श्रोतक ही यह ‘इदन्नमम’ का व्यवहार है।

अनपथ ब्राह्मण मूल अथर्वन ग्रंथमाला काशी में प्रकाशन की भूमिका में श्री विद्याधर शर्मा लिखते हैं—

इसमें याग उसका नाम है जो देवता के उद्देश्य में अग्नि में प्रक्षेप-विधिगत द्रव्यत्याग है। सभी प्रणाली के स्थलों में यज्ञ पर कि ‘यजति’ का विधान है अर्थात् सामेन यजेत आदि में यज्ञ धातु का कोई विशेष अर्थ है। उसी वाक्य में इनके उद्देश्य से किसी द्रव्य का भी विधान मिलता है। वाक्यान्तर में देवता का भी विधान रहता है। इसी देवता को लक्ष्य में रखकर वहाँ पर ‘इदं इन्द्राय इदन्नमम’ में जो द्रव्य का त्याग है अर्थात् मानसिक व्यापार वही याग पद का अर्थ है। मीमांसा १.२.१.२.२ पर जैमिनी ने याग का यही अर्थ किया है। जैमिनी के सूत्र इस प्रकार है—यजति चोदना द्रव्य देवता क्रिय समुदाय उतायन्वान् नदस्तेः श्रवणाज्ज्ञानि गमेननाचिरं स्यात्। इन सूत्रों में यज्ञ जैमिनी ने यज्ञ का स्वस्व्य बनाना है वहाँ याग और होम का भेद भी दिखलाया है।

यहाँ पर ऐसा समझना चाहिये कि आत्मीय आदि में छोड़ी हुई हवि का जो प्रक्षेप है वही होम कहा जाता है। वह दो प्रकार का है प्रधान होम और अङ्ग होम। ‘अग्निहोत्र जुहोति’ प्रधान होम है और अपने अपने फल उद्देश्य से विहित है। इनमें प्रक्षेप मात्र ही धातु का अर्थ नहीं है किन्तु प्रक्षेप, उद्देश्य और त्याग तीनों ही अर्थ हैं। होम में भी ये तीनों अर्थ होते हैं। परन्तु याग में तीनों अर्थों के होने हुए प्रक्षेपविधिगत द्रव्यत्याग को विशेषता है। होम में तीनों अर्थों की समप्रधानता है परन्तु याग में प्रक्षेप की प्रधानता है और शेष दोनों की समप्रधानता है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि उद्देश्य मम त्याग का सूचक है और याग में इसकी प्रधानता है।

ऋषि दयानन्द इन पर क्या कहते हैं, यहाँ पर थोड़ा सा विवरण दिया जाता है। प्रबन्ध यह रहता है कि यदि ‘इदन्नमम’ में जलपात्र में घी का शेष घृत छोड़ा जावे तो फिर बाद में उसका उपयोग भी



वा कही पर होना चाहिए। जहाँ पर उपयोग है वहाँ पर मर्त्य ने उन होने को बात भी लिखी है। जैसे कि गर्भाधान मन्त्र विधि। मन्त्र विधि के अनुसार नमस्करण पृष्ठ ३५ पर उदय कर्मणोऽयसी-रिच मन्त्र में एक निवारण आहुति घृत की देव। जो इन यज्ञों में आहुति देने समय प्रथम आहुति के समय में जोग रहे घृत को आगे धरे हुए कामे के एक पात्र में उचरु करके गये हो—ज. आहुति हो नके नव इस आहुति के जोग घृत को वधु लके स्नान के घर में जाकर उस घी का घन के नव से लेके फिर पथेन नव आहुति पर महेन करके स्नान करे। वही पर यह भी स्पष्ट है कि यह घी हुत-होप नहीं है।

पृष्ठ ३३ पर लिखते हैं कि 'होम आहुति करने में यकचित् घृत एवं वधु कामे के पात्र में होना के गये हो। उनके पश्चात् भात की आहुति देने के लिए यह विधि करना। प्रथम एक जोरी व कामे के पात्र में भात रखके उसमें घी, दध और मन्त्र मिला करके कुछ थोड़ा देर रखकर जब घृत आहुति भात में एक गवता हाथ पश्चात् नाल गिने एक एक मन्त्र से एक एक आहुति अग्नि में देव और मृत्वा में वा जोग आगे धरे हुए कामे के उदक पात्र में छोड़ना जावे।

पृष्ठ ३५ पर लिखते हैं। मन्त्र की विधि कर न्यो पुष्पहत जोग घृत भात वा मोहन भोग को प्रथम होम के पश्चात् अनिपूर्वक उत्तमान का भाजन कर। वही पर हुतयोग का नामय उदन्मम पात्र जाने में नही अपितु तब के पात्र में वचे हुए घृत आदि में है।

यदि हुतयोग का अर्थ उदन्मम से एकत्र किया हुआ घृत हो होता तो विवाह में लिखा मर्त्य का निम्न मदर्भ संगत न होना। विवाह मन्त्र में पृष्ठ १०८ १०९ पर लिखते हैं 'नवद्वय' जो ऊपर मिला किया हुआ ओदन अर्थात् भात है उनको एक पात्र में निकाल कर उसके ऊपर मृत्वा से घृत मिचन करके घृत और भात को अच्छे प्रकार मिला कर दक्षिण हाथ में थोड़ा थोड़ा भात दोनों जने ने के उनमें से प्रथम मन्त्र से एक एक करके चार स्थानीयक अर्थात् भात का आहुति देनी। त पश्चात् जोग रहा हुआ भात एक पात्र में निकाल उस पर घृत सेवन कर दक्षिण हाथ में रखके इन तीन मन्त्रों को मन में जप कर वा उस भात में से प्रथम थोड़ा सा

भक्षण करके जो उल्लिखित जोग भात रहे वह अगनी वधु क निग जाने को देवे।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उदन्मम में कामे के पात्र में मृत्वा से वचे घी को वही पर छोड़ना चाहिए जहाँ पर लेम करने का लिखा गया हो। सर्वत्र नहीं तथा इस प्रकार मन्त्र किया गया घी हुतयोग नहीं है वकि घी के पात्र में वचा हुआ घी या अन्य प्रकार आहुति से जोग रह गया भात आदि हुतयोग है।

'उदन्मम' का आधार देवता के निम्न अर्थ है। यज्ञ में देवता के नाम से आहुति दी जाती है अथवा मन्त्र में दी जाता है। जहाँ देवता का नाम आता है वही पर अनुर्वा विमर्श लगा कर आहुति दी जाती है और उदन्मम का भी मन्त्र में प्रयोग होता है। जहाँ देवता का नाम नहीं है केवल मन्त्र है वहाँ पर अनुर्वा विभक्ति नहीं लगता है केवल मन्त्र के मन्त्र में स्वाहा लगा कर आहुति दी जाती है। तथा देवता मन्त्र में हो स्पष्ट जाना है वहाँ पर भी स्वाहा के बाद देवता के साथ उदन्मम लगता है। इन विषय में भी कुछ नियम है।

प्राश्ननायन १।३।७ में निम्न सूत्र है—

**'अमुष्मं स्वाहा'**

यह उस बात पर प्रकाश डालता है कि वही पर नाम से होम कहा गया है जैसा कि 'माविन्वे वक्ष्यन् स्वाहा' और वही पर मन्त्र से होम कहा गया है जैसा कि 'अननय मृत्वा रायेऽ'। जहाँ पर दोनों ही नहीं वही पर नाम से किस प्रकार होम होवे, इस अवस्था में यह सूत्र है जो इस प्रकार है—

अग्निगिन्द्र प्रजापतिरिन्द्रे देवा अग्ने-वनादेम। आ० १।३।८

अर्थात् जहाँ पर होम का आदेश न हो और साथ का आदेश हो वहाँ पर इस सूत्र में कह गये अग्नि, इन्द्र आदि देवता होना चाहिये है।

उपांशुवाज में उन्द्र, महेन्द्र को छोड़ कर अग्नि और अग्निमाम, पौणमासी में और अमावस्या में अग्नि तथा इन्द्राग्ना देवता है। इसी विषय पर यह सूत्र है—

देवतादवापिगुयाजे इन्द्रमहेन्द्रवजम्। आ० गृ० १।१।४

पुनः आगे हमारे मुख में कहा गया है कि उपनिषद्वाज में देव काम्य है।

आइए के विषय में देवताओं का निम्न विवरण पाया जाता है—

एक मन में विश्वदेव उसके देवता है, हमारे मन में अग्नि उसका देवता है, नामरे मन में सूर्य उसका देवता है और चतुर्थ मन में प्रजापति देवता है, पंचम विचार में रात्रि देवता है और छठ विचारानुसार नक्षत्र देवता है, सातव विचार के अनुसार अश्व देवता है, अष्टम मन के अनुसार विन देवता है तथा हमारे मन में नव देवता अष्टका का है। आश्वलायन गृह्यसूत्र २.१.१२ पर दीवाकार विचारानुसार ने यह विचार अवलंब किया है और निम्न का मन भी दिव्य लाया है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र २.१.१४ के अनुसार-अग्निना सूर्याग्नि से स्थानीयाक देन का विधान है। इसी प्रकार जहां पर स्थानीयाक के लिए देवता का होम हो रहा है उस देवता का ही मन्य वाज्य जाना चाहिए। इस विषय पर आपस्तम्ब गृह्यसूत्र ३.३.४ पर दीवाकार होमदेन आपस्तम्ब ३.३ का उदाहरण देते हैं जिसका है कि 'जराति' की विधि स्वादाकार प्रदान प्रत्येक है। अर्थात् जराति की प्रणाली होती ही है, चतुर्थी विभाजित देवता के साथ अग्नि की स्वाहा करके प्राहुति देने के लिए। वहीं पर वह पुन विस्मृत है कि किसी के मत में समस्त स्वादा वोल कर अथवा उस देवता का ही अर्चना से प्राहुति का विधान है।

ऐसे प्रसंगों में जहां पर शास्त्र का जैसा उपदेश है वैसा ही देवता की कल्पना करनी चाहिए। परन्तु निवृत्तकृत् अग्नि को छोड़ कर यह कल्पना की जानी चाहिए। विश्वदेव कर्म में विश्वदेव देवता है।

अग्नि के देवता पृथिवी, वायु, प्रजापति विश्वदेव प्राण अर्थात्, वनस्पति आकाश, काम, मनु, नक्षत्र, चित्त तथा सृष्ट है 'हिरण्य' यन गृह्यसूत्र १.१२.३ तथा १.१३.१-२ सूत्रों में इसका पल्लवित किया गया है। इसी प्रकार मम के देवता का अधिक विवरण दिया गया है।

इदममम के विषय का उदाहरण हमने तभी के पर उदाहरण किया जाता है। कुछ योगिक वान हममें पर कर गये हैं। वहि-हुं वा प्राश्नानि पर २.१.१२ पर हरिहर विधान है। अर्थात् अग्नि में प्रक्षेप करके पुनः स्वाना है—ऐसा समझना चाहिए। यहा पर स्वाने का विधान करने में स्वाने की वस्तु भी आकीर्णित है। ना फिर वह हवन करके वचा हुआ पदार्थ अथवा कुछ और है? तब यज्ञों में ग्रहण किये हुए की सम्पूर्ण की प्राहुति नहीं दी जानी है, क्या कि हवन के बाद जेप के स्वाने का भी विधान है। ऐसा मन कल्याण का है। अथवा में ग्रहण किये होम द्रव्य का सम्पूर्ण का होम नहीं होना क्यों कि हवन जेप के स्वाने का विधान भी है। सभी प्राहुतियों का होमद्रव्य अथवा में वचाया गया संशय कहा जाता है। वह हमारे पात्र में डाला जाता है। उगी के स्वाने का विधान है।

इसी पर गदाधर भाष्य उन प्रकार है —

पारम्यरूपवि का उसमें हवन करके पात्रान्तर स्थापित होम-जेप द्रव्य का भक्षण होता है। स्वाने के विधान की प्राप्ति में इसे होमोत्तर काल में समझना चाहिए। जेप का मुखित करना भी जापित होता है। स्वाना तो उसका श्रौतसूत्र में कहा ही गया है। जैसा कि 'पाकयजुष्येनस्यामवहाम्, हु-वा जेपप्राशनम्। अर्थात् अथवा आदि में जो ग्रहण किया गया उसका होम करके कुछ वचा कर पात्रान्तर में रख।

पुन अपनी पद्धति में हरिहर कहते हैं कि प्रजापतये स्वाहा—ऐसा मन में ध्यान करना हुआ आधार करना है। उह प्रजापतये—ऐसा न्याग करके हवन जेप की हमारे पात्र में डाल दे। इन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय—ऐसा न्याग करके भी ऐसा ही करे।

यहां पर पुन पद्धति में गदाधर हममें बहुत ही विनक्षण विस्मृत है कि मन से पूर्वाधार करना। आ प्रजापतये स्वाहा—उह प्रजापतये न ममेति, ऐसा न्याग करके अग्नि में द्रव्य छोड़ना चाहिए। पुनः उसी स्थल पर कहता है। वहिहोम करना चाहिए। उह प्रजापतये न ममेति—ऐसा करके न्याग करना चाहिए।

यहां पर हरिहर भाष्य में पात्र में छोड़ने को विस्मृत है। उह इदमम रूपी न्याग पर आश्रित है। कषाक यज्ञ का अर्थ हो

कान्यायन के हीर कीर्तिमानि-प्रमाण, देवता और याग समान है। परन्तु यज्ञ में घी का छोटना प्रामाणिक नहीं। यह पौराणिक कान्यायन से नहीं है। वस्तुतः जहाँ पर छोटने का विधान है, वहाँ पर ही छोटना चाहिए, सर्वत्र नहीं। हुतशेष का यह अर्थ नहीं है। हुतशेष यह है जो दहन करने के बाद दहन द्रव्य वाले पात्र में बचा हुआ है। कान्यायन श्रौतसूत्र ६।१।१२-१३ सूत्रों का उद्धरण यह देता है। ये सूत्र पाकयज्ञ और अग्निहोत्र में लागू हैं। यद्यपि अग्निहोत्र श्रौतकर्म है।

ग्राहनि में जो स्मार्त यज्ञ होते हैं वे सब पाक यज्ञ हैं। उनमें होमार्थ स्रवा में लिए द्रव्य का सम्पूर्ण का होम नहीं करना चाहिये। किन्तु प्रतिहोम भक्षणार्थ किञ्चित्प्रतिशेषनीयम्—यह पौराणिक अर्थ मान्यमान है। वस्तुतः यज्ञ में बचे द्रव्य को हुतशेष समझना चाहिए। उसे ही श्रवभाग भी कहते हैं। कई लोग 'य ॐ स्ववभा' यज्ञ २।१२ में इस इदन्न मम में एकत्र किये द्रव्य घी की ग्राहनि भी देते हैं। वस्तुतः श्रवभाग का अर्थ कान्यायन उस प्रकार देते हैं। इदन्न मम के बाद पृथक् पात्र में एकत्र घी को न हुतशेष कहा जाता है और न उसको श्रवभाग कह सकते हैं। उसमें श्रवभाग की ग्राहनि देना सर्वथा गलत है।

कान्यायन कहते हैं—सूत्रो प्रगृह्णाति य ॐ स्ववभा उति नमः वात् जुहोति। का० श्रौ० ३।६।१६। यहाँ पर यह विधान है कि यदि स्रवा आदि में घी लगा हुआ रह गया हो तो इस मंत्र में श्रवभाग की ग्राहनि देवे। उसके देवता विश्वे देव है। परन्तु यहाँ पर यह समझना चाहिये कि यदि मध्वान् हो अर्थात् घी लगा हो तभी संस्ववभा से ग्राहनि देनी चाहिए। न लगा हो तो नहीं। अतः टिप्पणी में टीकाकार लिखता है कि 'अतश्च यत्र कर्मणि पूर्ववृत्तहोमसम्बन्धाज्जं पात्रे सलग्न भवति तत्र सर्वत्रापि अयं होमो भवत्येव। अर्थात् जिस कर्म में पूर्ववृत्त होम सम्बन्धी घी पात्र में सलग्न हो उसमें सर्वत्र ही यह होम होता है।

वह प्रागे पुन कहता है कि सूक् में स्थित घी के पत्रने ही निर्वहोपित हो जाने से संस्ववो को याग की सङ्गता नहीं प्राप्त है। इस प्रकार यहाँ पर यह स्पष्ट है कि हरिहर द्वारा कहा गया 'इदन्न मम' से पात्र में अलग प्रक्षिप्त घी आदि श्रवभाग नहीं है। यदि वह श्रव-

भाग होता तो उसकी तो ग्राहनि दे दी जाती फिर स्रवा कहा जाता? विधि में गदाधर ने इदन्न मम के बाद ग्राहनि देना लिखा है—इदन्न मम पात्र में छोटना नहीं। उसमें भी मायम दस्ता है कि यह कल्पित है। अतः जहाँ पर इदन्नमम के बाद पृथक् पात्र में घी छोटने की लिखा गया हो वहाँ पर ही छोटना चाहिए अन्यत्र नहीं।

अग्न्यायेन देवता जब यह श्रौत होता है तब अग्नि, त्वमान अग्नि, शुचि अग्नि और अर्दिति होते हैं। ऋग्वेद २.३ पर हरिहर ने ऐसा लिखा है।

यहाँ एक प्रश्न है कि होम करने समय चतुर्थी विभक्ति लगाकर ग्राहनि दी जाती है परन्तु जयाहोम जो विवाह में होता है उसमें 'चित् च चिति च स्वाहा' लिखा है। वहाँ पर चतुर्थी विभक्ति नहीं है। १।१।६ पर हरिहर इसका उत्तर देता है कि न च नाति देवतापदानि किन्तु मंत्रा एते। मन्त्राश्च ये ते यथास्मान्ता एव प्रयुज्यन्ते। अर्थात् ये देवतापद नहीं हैं। ये तो मंत्र हैं। देवता पद में ही चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है। मंत्र तो जैसा पढ़े गये है वैसे ही प्रयुक्त किये जाते हैं। इनमें चतुर्थी विभक्ति नहीं लगती है।

**कुछ और भी यज्ञ**—गोभिल गृह्यसूत्र २।३।११-१४ में गोयज का विधान है। उसमें गावायन की विधि वर्णित है। इस प्रसंग में ये सूत्र हैं—अग्नि यजेत पूषणमिन्द्रमौषधरम्। कृषभ पूजा, यज्ञ नैवा-श्वयज्ञा व्याख्यातः। यमवरणी देवतानामत्राधिकी। अर्थात् अग्नि में यज्ञ करे अग्नि, पूषा, इन्द्र और औषध देवता निमित्तिक। बैल का पूर्ण मन्त्रादि दे। इस यज्ञ में ही अश्वयज्ञ अश्वपालन यज्ञ का भी विधान समझना चाहिये। परन्तु इस अश्वयज्ञ में दम और वरुण देवता की भी ग्राहनि दी जावे पूर्व कहे गोयज के देवताओं के साथ।

लोणाक्षि गृह्यसूत्र कण्डिका ४८।१ में पुत्रेष्टि का वर्णन है। न्याय दर्शन में इस पर विचार करते हुए यह लिखा गया है कि यह पुत्रेष्टि यज्ञ अपने उद्देश्यों में सफल कब होता है और कब नहीं? उत्तर दिया गया कि 'कर्मकस्तु साधनवैगुण्यात् अर्थात् कर्म कर्ता और साधन में कोई दोष हो तब तो यह सफल नहीं होता है परन्तु निर्दोष अवस्था में सफल होता ही है।

**गोयज, गोसब**—बहुत समय पूर्व हैदराबाद आयें सम्मेलन के अवसर पर एक गोमेध यज्ञ का आयोजन वैदिक रीति में करने का



प्रत्येक व्यक्ति को। परन्तु उस समय का विचार बलवत् नहीं था। उस समय लोग सोचते थे कि हमसे सब कुछ बन करी जायगी। हमारे ही हाथ में है। इसके दो कारण थे। एक तो यह कि गोमय और अश्वमेध यज्ञों के विरुद्ध रूप की अभिमान और दूसरा राजा के विषय में कार्य समाज के पण्डितों की जानकारी का अभाव। पण्डितों को जानने है उनकी तो सम्मेलन आदि का मतानुसार करने वाले अधिकारी और सभाओं के सलाहकार अथवा पण्डितों की। हम जानकार लोग अपनी प्रतिष्ठा के मकोन में स्थित मानते होते। अथ कर्मकाण्ड और वेदविद्या आदि के सम्बन्ध में कार्यसमाज के नामधारी अनभिज्ञ अनपढ़ लड़ा उपरी और पार्श्व वाजोम आगे आये होते नेता बनने वाले पार्श्ववाजी से कार्य लेते हैं। वे लोगों को शिक्षित बनाकर खड़ा कर देने हैं। कई अवसरों पर ऐसा देखा गया है। जिन्हें वे सामने और आगे लाना चाहते हैं वे न सम्मान न कर्मकाण्ड न वेदज्ञान और न किसी विद्या में ही निपुण होते हैं। वे केवल लोग की चापल्यी करके जीवन करना चाहते हैं। अथ कई उनके कर्मों का मतानी दिखाता है तो अनुशासन के बोलने का किसी बड़ विद्वान के नाम से उनका नाम लेकर जान बघाने है। यही कारण है कि लोग। पण्डित पने वाले यज्ञ भी कार्य समाज के लोग करने हैं। गायत्री यज्ञ में कुछ लोग गणपति दूर करने का लोग भी करते हैं। नृगण की शान्ति का भी यज्ञ किया करते हैं। यह अन्धकार तब तक दूर नहीं होगा जब तक कार्य समाज वाध्य विद्वानों के हाथ में नहीं आता है। विद्वान् लोग हमसे दूर होने जा रहे हैं और स्वार्थी, धूर्त, स्वराजनीतिक जिम्मे और पद लिप्ता पत्र नेता बनने वाले आगे आने की होड़ में हैं।

यज्ञ का कार्य सम्पन्न कराने और योग्यतापूर्वक सम्पन्न करने और मान्य की मर्यादा का पालन कराने हूँ। हमें उनके रूप को मद्ध करने का कार्य मर्यादा दयालु और उनकी वैदिक आर्थ पाठ विधि के भक्त माननीय स्वामी ब्रह्मानन्द जी दण्डी सम्मानक श्री गुरु जी कार्य गुरुल पता और उनके सत्योगी पण्डित करने हैं। परन्तु हमें यह धर हमारी नामधारी अयोग्य नेताओं को रहना है कि वेदज्ञ मान हूँ कि सा मुझे की ब्रह्मा का स्थान नहीं देते। बम्बई में श्री सेठ प्रसाद सिंह सरस्वती का सम्मान के द्वारा नामों मध्ये अथवा कार्य भारत के वैदिक पण्डितों द्वारा होने वाले अनुवाद पाठयज्ञ

अवसर पर दण्डी स्वामी और उनके पण्डितों ने इसी दृष्टि में कार्य किया। उस समय उन पण्डितों के लक्ष्य ने ब्रह्मा का स्थान पण्डित किया था। स्वामी जी और उनके पण्डितों ने स्पष्ट रूप दिया कि ब्रह्मा उसी विद्वान की बनावगे जो भारत और उसके बाहर सम्मान वैदिक विद्वान है और शास्त्रज्ञ है और मर्यादा का सम्मान भक्त और वेद की विद्याओं का महान जाना है। अनुवाद ऐसा ही हुआ और उस यज्ञ की भव्यता की कहानी समर है।

गोमय का निवार करने समय मुक्त नामधारी में उन प्रकार के यज्ञ मिले। योगाक्षि गुरुमुख की ३१वीं कण्डिका में गायत्री का स्थान है। यह गोयज ध्याई हुई गाय के स्वास्थ और पुन मरण में यज्ञ निमित्त किया जाता है। यह वसन्त में सम्पन्न किया जाता है। ऐसा ही देवपाल टीकाकार ने लिखा है। इस यज्ञ में मीराय पण्डित आदि मन्त्रों का विनियोग है। ये मन्त्र कृषि आदि में सम्बन्ध रखते हैं। इसमें 'मीनायज' जो कि खेती सम्बन्धी है उसके मन्त्र का भी विनियोग है। यह बहुत ही उपयोगी है। इस यज्ञ में निम्नलिखित मन्त्रों में भिन्न-भिन्न कर्मों का उपादन किया जाता है —

१. न ता अवां गणुकाटी अस्तुमे
२. मीरा यज्ञि
३. पूजा युनवन मविना
४. युनवन मीरा विमुना तनोत
५. गुरु मुफाला विमुदन्तु भूमिम्
६. लीगल पवीरयम्
७. पतेन मीना मधना समज्जनाम्
८. विमुन्वध्वमध्या देवपानी
९. पानार्गमिन्द्रम्
१०. उयो जज्ञे
११. उदन्तमं मुमुग्धि
१२. उदन्तम वसणपाशम्
१३. म वरता दधानत
१४. दिग्गमोदामवटम्
१५. प्रवा दनाममविना
१६. देवभ्यो वसन्तते

१७. इनमें से वीरुत्त  
१८. इनमें से गो  
१९. इनमें से वेदा  
२०. इनमें से अग्निदायनी  
२१. इनमें से गो उवाचरम्

इसके प्रतिष्ठित नाण्ड्य ब्राह्मण के १८वें अध्याय में १३वें सूत्र में गोमय यज्ञ का वर्णन है। यहाँ पर लिखा है कि 'अथ गोमयः स्वायत्तः वा एष यज्ञः। यज्ञ गोमयः कात्यायन श्रौतसूत्र २०।१।१३ में भी वर्णित है। यज्ञ एकादश में 'गो' नामों भी एक एकादश है। इसका वर्णन नाण्ड्य १६।१०, कात्यायन श्रौतसूत्र २०।१।१३ और आपस्तम्ब श्रौतसूत्र २०।१।१३ में भी है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में २।३।३१ में भी 'गोमय' का वर्णन है। इसी का पशुस्तोम भी कहा जाता है।

**भेषज्ययज्ञ**—ऋतुओं की मन्थि के समय में व्याधियों का प्रकोप होता है अतः इनके निवारणार्थ भी यज्ञ किये जाते हैं। ऐसे यज्ञों को भेषज्ययज्ञ कहा जाता है। नाण्ड्य ब्राह्मण 'उत्तरार्ध' १।१२ और 'कोपीवकी' १।१२ में यह लिखा है कि जानुर्मास्य आदि भेषज्य यज्ञ हैं और ये ऋतुओं की मन्थि में प्रयुक्त किये जाते हैं क्योंकि ऋतु-मन्थियों में व्याधि उत्पन्न होती है। दोनों ब्राह्मणों के वाक्यों का अर्थ एक ही है। शतपथ ब्राह्मण १।३।१।३ में लिखा है कि ऋतु-मन्थि होकर प्रजा को उत्पन्न करती हैं और व्याधियों को पकाने हैं। इसलिये ऋतुओं की मन्थि में यज्ञ लाभकारी है।

### प्रमाणसन्दर्भ

- १—भेषज्ययज्ञा वा एते यस्मान्मास्यानि तस्मादनुमन्थिषु प्रयस्यन्ते ऋतुमन्थिषु च व्याधिर्जायते । गो उ १।१२
- २—भेषज्ययज्ञा वा एते यस्मान्मास्यानि तस्मादनुमन्थिषु प्रयस्यन्ते ऋतुमन्थिषु हि व्याधिर्जायते । कोपी० १।१२
- ३—ऋतुः समिद्धाः प्रजादश्च प्रजनयन्ति घोषघोदश्च पचन्ति ॥

श० १।३।१३

## त्रयोदश प्रकरण

### यज्ञरहस्यों के उद्घाटक ब्राह्मण ग्रन्थ

ब्राह्मण ग्रन्थ शतपथादि ब्रह्म अर्थात् वेद के ब्रह्मादि ऋषियों द्वारा किये गए व्याख्यान हैं। जहाँ ये मन्त्र की व्याख्या करते हैं वहाँ ये एक विज्ञान हैं। जहाँ तक उनके विज्ञान होने का सम्बन्ध है वे यज्ञ के द्वारा विविध विज्ञानों को खानते हैं। मन्त्रों में आये शब्दों, यज्ञ की विशेष क्रियाओं के रहस्यों को खानते हैं। यज्ञ में उसकी विशेष प्रशंसा और स्वस्त्वोक्ति में श्रद्धा उत्पन्न करते हैं। निम्बक-कार ने ठीक कहा है कि ब्राह्मण के द्वारा यज्ञों की रूपसमृद्धि आदि होती है। किम प्रकार ये रूपसमृद्धि करते हैं इसके बमशः कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

१—शतपथ ब्राह्मण के प्रथम काण्ड में दशंपीणमाम का वर्णन है। चकि दशंपीणमाम ही सब यज्ञों की प्रवृत्ति है अतः इसका वर्णन किया जा रहा है। यज्ञवेद 'उपेक्षावर्ज' में प्रारम्भ होता है परन्तु शतपथ 'अथ वनमुपैष्यन्—अग्ने वनपते' में प्रारम्भ करता है। बिना वन लिये यज्ञ का अधिकारी नहीं होता अतः पहले यज्ञमान का वनी होना आवश्यक है। ऐसा क्यों? इस पर याज्ञवल्क्य कहते हैं—अमानुष अर्थात् देव के समान हो जाता है वह जो वन धारण करता है। पुनः ऐतरेय कहता है कि 'अवन्तो' की आहुति को देव लोग ग्रहण करते हैं। अतः इसमें यह जान है कि यज्ञ में दा गड़े आहुति को देव लोग ग्रहण कर इसलिये यज्ञमान को वन रखकर देव-व प्राप्त करके पुनः यज्ञ में प्रवृत्त होना चाहिए। इसलिये 'अग्ने वनपते वनम्' मन्त्र से यज्ञमान यज्ञ करने के पूर्व वन अर्थात् नियम को धारण करना है। वह वनधारण उसे मनुष्य में देव बनाना है। वन मन्त्र में क्या है—'अनृतात्मन्यमुपैमि' अर्थात् मैं अनृत में उठकर मन्त्र को प्राप्त होऊँ। इस अनृतात्मन्यमुपैमि के रहस्य को खानते हुए यज्ञवल्क्य शतपथ में कहते हैं कि मन्त्र ही देव है और अनृत मनुष्य

१. इस प्रकार घनत से मन को प्राप्त होने का अर्थ है कि घनत अर्थात् घनत में मन्त्र अर्थात् देवत्व को प्राप्त होकर। इस प्रकार घनत प्राप्त करके यज्ञमान मनःस्थिति में उठकर देवत्व को प्राप्त हो जाता है और यज्ञ करने का अधिकारी बन जाता है। यही यह स्पष्ट है कि वास्तव्य ब्राह्मण ने जहाँ यज्ञ में घन धारण करने का कर्म को उपस्थित और रहस्य को खोलना वही मनः में आये अर्थ मन्त्र और घनत के भाव को भी प्रकट कर दिया। इस प्रकार यज्ञ के रूप समष्टि का यह स्वरूप उपस्थित किया।

२. यज्ञ में आत्ममन किया जाता है। आत्ममन जल में होना है। इसमें क्या रहस्य है। इस पर नापथकार कहते हैं कि चूँकि जलोद्गम ही रहने यज्ञ विस्तारित होता हुआ चालू होता है अतः सर्वप्रथम आत्ममनीय का प्रवर्णन किया जाता है।

३. यज्ञमान जब घन धारण करके देव बन जाता है तब पुनः यज्ञ विमर्जन करता है तब यह नहीं बोलता कि 'मन्वादनतमुरमि' अर्थात् मैं पुनः मन्त्र से घनत को वापस होता हूँ। क्या कि यह बोलता होकर नहीं। अतः वह विमर्जन के समय ऐसा बोलता है 'हमह यन्वादिम मोरमि' अर्थात् यह जो मैं हूँ वही मैं हूँ। यही भी क्रिया और मन्त्र के रहस्य को याज्ञवल्क्य ने खोलना है।

४. यज्ञवेद १।१४ में 'हविःकदेहि हविःकदति' पद पड़े है। घन यज्ञ की क्रिया में जहाँ हविःकृत अर्थात् वाणी का विमर्जन होता है वहाँ इसका आह्वान भी होता है। हविःकृत वाणी का नाम है अतः वाणी को आह्वान किया जाता है। इस वाणी के पुकारने का प्रकार यह है— ब्राह्मण का 'गति' क्षत्रिय का 'आदव' वैश्य का 'आगति' और शूद्र का 'आधाव'। सो जो इसमें ब्राह्मण का आवाहन प्रकार है वही यहाँ पर बोलना होता है। यही सबसे अधिक उपयोगी है। यही वाणी का शास्त्रमय प्रकार है कि 'गति' कहा जावे। अतः 'गति' ऐसा हो करना चाहिए। यहाँ पर याज्ञवल्क्य ने पुनः रहस्य का अपनी प्रकार उद्घाटन किया है।

५. हविःकदेहि हविःकदति— ऐसा पुकारने के पीछे एक क्रिया की जाती है जिसका नाम पाथदहन है। अर्थात् एक ऋत्विज उठ कर मितवर्तु के जम्हा में टकटाकर शब्द उत्पन्न करता है। इन

क्रिया के रहस्य को खोलने के लिए याज्ञवल्क्य ने एक गायक हो है जो इस प्रकार है—

मन के एक आरम्भ था। इसमें अमुरा को नष्ट करने का यह और वाणी का नाश करने वाली वाणी प्रविष्ट थी। अमुर लोग उसका मन का मुनकर व्याकुल होकर भागते थे। मानने लगे कि किम प्रकार इसमें घन। अमुरा के पुत्रोदित थे जो जिनका नाम बिना-कुली था। किलात आकुली ने कहा कि कोई निम्ना की बात नहीं मन ना भ्रष्टा का देव भान्नानाय है। वे मन के पास गये और कहा कि आर्ये निर्मित यज्ञ करो, मन न रूढ़ किमम उत्तर मिला कि ऋषभ म। ऐसा ही हो। कह कर मन ने माना अमुरा के उसका समाप्त जाने से वह वाणी मन की आँखें मनावी में प्रविष्ट हो गई। उसकी आवाज में अमुर लोग फिर परेशान हुए और किलात आकुली मन से बोले कि हम आर्ये के लिए यज्ञ करना चाहते हैं। मन ने कहा किमम, उत्तर मिला मनावी में। ऐसा ही हो कह कर मन ने स्वीकार किया। मनावी के पास जाने ही वह वाणी उसमें से निकल कर यज्ञ और यज्ञाश्रम में प्रविष्ट हो गई। इसलिये इसे अमुर लोग अथ नहीं समझ कर मकें। अमुर का यज्ञ सविनाश है और यज्ञ उनका नाशक है। इसलिये मितवर्तु के जम्हा में टकटा कर ऋत्विज जो पाक प्रत्युदवादन करता है वह उसी वाणी को प्रत्युदवादन करता है।

मन वस्तुतः मन है। आरम्भ अर्थ से मन का नाशयें नहीं अपितु धर्म का नाशयें है। मनावी वृद्धि है। धर्ममया भावना पहल धर्म में थी जो शब्द और अर्थ तथा विचार में था। वह वृद्धि में आया और पुनः वह यज्ञ में प्रविष्ट हो गई। अर्थात् यज्ञ कर्मों के करने में ही सच्चे धर्म का पालन है। इसी बात का प्रत्युदवादन के द्वारा प्रकट किया जाता है। यहाँ पर आख्यायिका में इस क्रिया के रहस्य को खोलना गया है।

६. अष्टकपालों का सम्धारित करके पुरोडाश पढ़ाने की विधि पूर्ण करने के लिए अष्टांगी का अष्टुत अर्थात् समस्त किया जाता है। ये अष्टकपाल जिस क्रम से वेद्य जाने हैं उनका वर्णन करने हुए याज्ञवल्क्य लिखते हैं कि अष्टकपालों में नील ऐसा है जो अथ, धर्म और धर्म है। यज्ञवेद के मन्त्र में वे नीलो ही पद प्राप्त है। ये नीला



के लिए है परन्तु वाजवल्क्य कहते हैं कि जिनने यही पर कपाल है  
पुरुष के भी करने ही कपाल है। पुरुष का मस्तिष्क जो है वही पुरुष  
कपालों में स्थित है। जैसा कि पुराणों में कपालों में स्थित  
होता है। इस प्रकार इस यज्ञ क्रिया में वाजवल्क्य यह बतला देना  
चाहता है कि पुरुष के शिर में भी तीन मुख्य कपाल हैं जो लघु  
मस्तिष्क शीर्ष मस्तिष्क और मेरु-दण्ड के नाम से प्रसिद्ध हैं।

७—ऋग्वेद में ओषधिसूक्त में एक प्रसिद्ध मंत्र है—

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा । मने नु वभ्रूणा-  
महं मन धामानि सन्त च ॥

इस मंत्र में अग्निवयन में क्षेत्र में विभिन्न ग्राम्य और ग्राम्य  
ओषधियों से वपन किया जाता है। अथवा यज्ञ में दीक्षिता को ज्वर  
घाति आ जावे तो इन ओषधियों द्वारा निवारण किया जाता है।  
महीधर आदि के अनुसार मीनायज्ञ में वेदक्षेत्र में ये ओषधियाँ बोई  
जाती हैं। मंत्र में वृत्त स्पष्ट शब्द 'मन धामानि सन्त च' और  
'वभ्रूणाम्' पड़ है। प्रयाक्ता ऋग्विष्णु यह कहता है कि मैं इन ओष-  
धियों के जो कि भूरे रंग के पत्ता वाली हैं १०७ नाम, १०७ प्रयोग  
स्थान और उत्पत्ति स्थानों को जानता हूँ। ये १०७ ओषधियाँ कौन  
सी हैं किसी भी याज्ञिक को ज्ञान नहीं। फिर ये उनका विनियोग  
किस प्रकार करते हैं—यह पता नहीं। यह केवल शब्दों में शेष है—  
विधि का किसी का पता नहीं है। यज्ञ में यदि क्षेत्र में ये वपन की  
जाती हैं तो क्षेत्र कौन सा होगा। वेदी ही क्षेत्र हो सकती है। क्षेत्र  
में जाकर तो १०७ ओषधियाँ नहीं लगायी जा सकेंगी। वेदी भी तब  
क्षेत्र बनेगी जब १०७ स्थान उसमें इनके लिये बने हुए हों। फिर वेदी  
का भी क्या आकार हो? आठवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि की  
तीनों वेदियाँ जो गोत्र अर्ध चन्द्राकार और सम चतुर्कोण हैं एकत्र  
बनाई जावें तो वेदि पुरुष के आकार की बन जाती है। पुरुष यदि  
दीक्षित होकर ज्वर आदि से पीड़ित हो गया तब भी तो शरीराकार  
ही है। गोत्र वृण्ड मंत्र है। अर्ध गोत्र चन्द्राकार उसके बाद का अंग  
और समचतुर्कोण नदनन्तर का शरीर भाग है। इस प्रकार इन  
द्विषों में एक उत्तम वेदा दशा शरीर सा बन जाता है। उनमें एक  
तो मान स्थानों पर इस मंत्र से १०७ ओषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं।  
पुरुष शतायु है और सप्त शीर्षन् प्राण है अतः इनके ही लोगों ने समझ

रखा है। परन्तु शतायु और सप्तप्राणों में इन १०७ का प्रयोग क्या  
सम्बन्ध रखता है कुछ भी ज्ञान नहीं। ज्वरदि १०७ ओषधियों में  
किस प्रकार शान्त होगे जय नाम और प्रयोग के स्थान ही शोक ज्ञान  
नहीं है। रहस्य ज्यों का त्यों बिना उद्घटित किया ही रह जाता है।  
निष्कृतकार ने इस मंत्र की व्याख्या देवाकाण्ड में की है वहाँ पर  
वह 'वभ्रूणाम्' का अर्थ करते हुए 'वभ्रवर्णानाम्' का प्रयोग करता  
है। इसमें ज्ञान होना है कि ये भूरे रंग के पत्ता वाली हैं। ये १०७ हैं  
और इनके १०७ प्रयोग के स्थान हैं। धाम का अर्थ नाम जन्म और  
स्थान है। विनियोग का पूछ पकड़ने वालों में तो कुछ पता नहीं  
लगता है। परन्तु वेदि पुरुषाकार हो अथवा दीक्षित के रंग का उप-  
चार हो १०७ प्रयोग के स्थान और १०७ ओषधियों के नाम और  
ज्ञान का महत्त्व है।

वाजसनेय ब्राह्मण में इस मंत्र का अर्थ निम्न प्रकार किया गया  
है—

'पुरा' ऐसा कहने से यह कहा जा रहा है कि सृष्टि देव है और ये  
ओषधियाँ तीन ऋतुओं अर्थात् वसन्त, प्राक् और शरत् में उत्पन्न  
होती हैं। वभ्र सोम है। ये ओषधियाँ सोम्य हैं। पुरुष शतायु और  
सप्तप्राण है। सप्त शीर्षन् प्राणों का यह वर्णन है। इत्यादि। सप्त  
शीर्षन् प्राणों की विस्तृत व्याख्या शतपथ अध्याय १५ में की गई है।  
इसमें इतना तो सकेत मिल जाता है कि ये १०७ स्थान ओषधियों के  
प्रयोग के पुरुष में ही हैं।

परन्तु अभी भी बात स्पष्ट नहीं हो पा रही है। मुद्गुल शरीर  
स्थान के छठे अध्याय में पुरुष के शरीर में १०७ मर्म स्थानों का  
वर्णन है। ये एक ही मान मर्मस्थान ही हैं जिनमें नाड रोग आदि  
शीघ्र प्रभाव पहुँचाने हैं। यदि इनके इलाज का ज्ञान हो जावे तो  
रोगों की उत्पत्ति का प्रदन ही निपट जावे। इन १०७ मर्मस्थानों पर  
एक ही मान ओषधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं। यह कार्य पुरुषाकार  
वेदि पर १०७ स्थानों की कल्पना करके किया जाता है। ये १०७  
स्थान पुरुष में कहाँ पर हैं याज्ञिक लोग इसका ज्ञान रखते थे। मुद्गुल  
में स्पष्ट लिखा है 'सन्तोत्तर मर्मगतं भवति' अर्थात् १०७ मर्मस्थान  
होते हैं। मुद्गुल में इनके नाम आदि सब गिनाए गये हैं। यज्ञ की  
प्रक्रिया का ज्ञान लुप्त होने से इन १०७ ओषधियों के नाम ज्ञान नहीं

१—अमानुष इव वा एतद्भवति यदस्मत्पुत्रेति । श० १।१।१२३  
 २—न ह वा अस्मत्पुत्र इव वा हविरदन्ति । ऐ० १।११ की ३।१  
 ३—अस्यमेव देवा अन्तं मनुष्या । श० १।१।१२४, १२५  
 ४—अद्भुतं प्रणीयमानः प्राह तावते तस्मादात्मनीयं पूर्वमा-  
 हारयति—गी० पू० १।३८

## यज्ञपद और विविध विज्ञान

यज नमम भानु भग नः मरु न्दव परंमा, नानं वम्  
विद्वान् मरुदम्, भूमि मृग मृग नानमम वनं विद्वान्,  
नमो विद्या, प्रजापति, विद्या जिगिषित विद्या, धनि वाक नानु,  
मनमम नानिना आदि य यजमान आमा वृद्ध, नान धन धान,  
विद्या, धानि धीर नाना

१ मय = धन, मोक्षार्थ, प्रयत्न प्रवर्धयति धारणं जिवितं  
 कर्तुं = आत्मा वृद्धि वा कर्म स्वानन्द, काव्यमयी वाणी तथा विद्याओं  
 को श्रवण करने की प्रवर्धन ज्ञान तथा मूल मूल यज्ञ में मिले हैं।  
 यहाँ पर यज्ञ पद का अर्थ विविध व्यवहारों और विज्ञानों में  
 निपुणता है।

२—प्रथम प्रश्नान्, स्थानम्, त्विन् प्राधान्यं वाच्यं मनः, वक्ष्य  
श्रीय तेज श्रीर वल मूल यज्ञ मे प्राप्तं हा । यही पत्र यज्ञ पर प्राप्त  
विहार स्वतन्त्रमान शरीर माधव्या विज्ञानी के ग्रन्थ में प्रस्तुत है

१-प्राज्ञ मह, प्रामा, अनु गम यम प्रह्म प्रवशा तम्





अथ नानाधर्मोऽपि - विनाशः । तदा यत्प्रतीकं योऽपि शक्यं  
 विनाशं कर्तुं स तज्जगत्प्रतीकं है ।  
 तदा नानाधर्मोऽपि - ननु तस्मिन् काले यत्प्रतीकं योऽपि शक्यं

१- एक मे नर ती-मन्त्र नमो वायव्य शालकला प्रासा,  
प्रथिव्य पुत्रमय धामनीय वाद रति धामनीय और स्वगाकार।  
नदी पर वनवर्तन क प्रथम म वनपद का प्रथम है।  
मन्त्र धर्म धर्म नृप प्राण, धर्ममय पृथिवी, धर्मिनि

—मन्त्रि, यम धर्म मूर्धे प्राण, अथवायु प्रविशति, यदिनि-  
शिदि हो, पञ्चमरा गच्छति च मोर दिनाय यज मे जातः ।  
पक्षी पर ना ज्ञातव्य भूतानां क समर्थ मे पञ्च पर का प्रयोग है ;

यही पर भी निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए—  
 १-यदि कानून का सम्बन्ध में, यथास्थिति उक्त विषय पर  
 विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाय कि यथास्थिति पर भी यथास्थिति  
 विचारों के लिए प्रयत्न होना चाहिए।

[illegible][illegible][illegible][illegible]

जहाँ भी पदविज्ञान और पदगतन विज्ञान के प्रायः से पद पद का प्रयोग है।

[illegible]

संसार की रचना का यथार्थ प्रमाण और कारणन  
भू-भूत में पाया जाता है। शरीर में जो वह विचारन उसके  
निर्माण का प्रमाण है। यही वह निष्कर्ष है कि यदि वह शरीर का रचना  
जाव तो ज्ञान जाव। यदि कोई भी प्राणि प्राणियों का रचना जाव तो  
निश्चय जाव। इसलिए मिट्टी का रचना जाव। मिट्टी का भी  
यही प्रमाण जाव है। पात्र निर्माण हो जाने पर प्रजापति प्राणि में  
उसे पाया जाता है कि वह मजबूत रहे। वह पात्र घाह की रचना आदि  
में उसने के बाद प्रकाश जाव है। इसी विषय में 'अथर्ववेद' का प्रमाण  
धर्मशास्त्रों में देवयजने पृथिव्या मखाय स्वा मयस्य स्वा शाणं' आदि  
मन्त्रों में ३१६ मंत्र विनियुक्त है। यह मन्त्राचार्य के यज्ञों में प्राण  
का वैतन्यागिक प्रमाण है। परन्तु ऋषि दयानन्द ने इसका प्रमाण किया है  
कि वे विद्वान् वृद्ध घोड़े का लोह से बनाता हैं। यही वह साधारण  
व्यक्ति अपनी समझ के अनुसार उपहास करने पात्र जाते हैं। परन्तु  
यह समझना चाहिये कि राग तो वीर, विद्वान् और मन्त्राचार्य सभी  
का होता है। यदि कोई प्रमाण प्रमाण प्रमाणों के राग में जोड़ता  
है तो उसे उस प्रमाण की लक्ष्य प्राण का प्रमाण प्रमाण पर दिया  
जाता है। चरक मुनि प्राणि प्रमाणों में यह विधि एवं उपचार बताया  
गया है। इस प्रकार विद्वान् प्रमाणों का उत्पत्ति प्रमाण और उसको  
कियावों प्राणि से होता है।







ज्यैष्ठ्यं च म साधियं च मे मन्वृश्च मे भामश्च मे ऽमश्च  
मे ऽभश्च मे जेमा च मे महिमा च मे वरिमा च मे प्रथिमा च मे  
वणिमा च मे द्राधिमा च मे वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन  
कल्पन्ताम् ॥४॥

मन्य च मे श्रद्धा च मे जगत्श्च मे धनं च मे विश्वं च मे महश्च  
मे श्रीहा च मे मोदश्च मे जानं च मे जनिष्यमाणं च मे सूक्तं च मे  
सुकृतं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥५॥

ऋतु च मे ऽमृतं च मे ऽयमं च ऽनामयश्च म जीवातुश्च मे  
दीर्घायुत्वं च मे ऽमित्रं च मे ऽमयं च मे मुखं च मे शयनं च मे  
सूयाश्च मे मुदिनं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥६॥

यन्ता च मे धर्ता च मे क्षेमश्च मे धृतिश्च मे महश्च मे मंत्रिश्च  
मे जात्रं च मे मूयश्च मे प्रमूयश्च मे सीरं च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्प-  
न्ताम् ॥७॥

शं च मे मयश्च मे प्रियं च मे ऽनुकामश्च मे कामश्च मे सीमन-  
सश्च मे भगश्च मे द्रविणं च मे भद्रं च मे श्रेयश्च मे वर्मायश्च मे  
यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥८॥

ऊर्कं च मे सूनता च मे पयश्च मे रसाश्च मे धृतं च मे मधु च मे  
सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कुपिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रं च मे श्रीद्रुघं  
च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥९॥

रयिश्च मे रायश्च मे पटं च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे  
पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयश्च मे श्रैक्षितं च मेऽन्नं च मेऽशुश्च मे यज्ञेन  
कल्पन्ताम् ॥१०॥

वित्तं च मे वेद्यं च मे भूत च मे भविष्यश्च सुग च मे सुपथ्यं  
च म ऋद्धं च म ऋद्धिश्च मे वसुतं च मे वसुप्तिश्च मे मतिश्च  
मे मुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥११॥

वीहयश्च मे यथाश्च मे मायाश्च मे तिस्राश्च मे मुद्गाश्च मे  
रत्नवाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे ह्यामाकाश्च मे नीवाराश्च  
मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१२॥

धमा च मे मूलिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च  
मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यं च मेऽयश्च मे ह्याम च मे मोह च मे सीमं  
च मे त्रपुश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१३॥

अग्निश्च मे आपश्च मे वीर्यश्च म ओगभयश्च मे कृष्टपण्याश्च  
मेऽकृष्टपण्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे विर्त्तं च मे  
वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१४॥

वसु च मे वसतिश्च मे शक्तिश्च मेऽर्थं च म ऽमश्च म इत्या  
च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१५॥

अग्निश्च म इन्द्रश्च मे सोमश्च म इन्द्रश्च मे मविता च म इन्द्रश्च  
मे सारस्वती च म इन्द्रश्च मे पूषा च म इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च म  
इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१६॥

मित्रश्च म इन्द्रश्च मे वरुणश्च म इन्द्रश्च मे धाता च म इन्द्रश्च  
मे त्वष्टा च म इन्द्रश्च मे मरुतश्च म इन्द्रश्च मे विष्टे च मे देवा  
इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१७॥

पृथिवी च म इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च म इन्द्रश्च मे द्यौश्च म  
इन्द्रश्च मे समाश्च म इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च म इन्द्रश्च मे दिशश्च  
म इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१८॥

अ० शुक्ल मे रश्मिश्च मेऽवाभ्यश्च मेऽधिपतिश्च म उपा० शुक्ल  
मेऽन्तर्यामिश्च म ऐन्द्रवायवश्च मे मंत्रावरुणश्च म आश्विनश्च मे  
प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च म यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥१९॥

आश्रयणश्च मे वंद्यदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैद्वानरश्च म ऐन्द्राग्रश्च  
मे मशवंदवदेवश्च मे मरुत्वनीयाश्च मे नाकेवत्यश्च मे सावित्रश्च  
मे सारस्वतश्च मे पान्नीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्प-  
न्ताम् ॥२०॥

श्रुवश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे प्रावा-  
णश्च मेऽधिगवणं च मे पूतभृश्च म प्राधवनीयश्च मे वेदिश्च मे  
वह्निश्च मेऽवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२१॥

अग्निश्च मे धर्मश्च मेऽकंश्च मे सूर्यश्च मेऽवमेधश्च मे पृथिवी  
च मेऽदितिश्च मे विनिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शनवरयो दिशश्च मे  
यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२२॥

व्रतं च म ऋतवश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वाशीवे बृहद्र-  
थन्तरे च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥२३॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्चश्च मे पञ्चश्च मे सप्त  
च मे सप्त च मे नव च मे नव च मऽएकादश च मऽएकादश च मे



रत्नम है। तद्वत् को जल भी रत्न की जा सकती है। परन्तु रत्न छोटी कटोरी छोटी कटोरी करने वाली समिधाया राधाग यज्ञ में रत्न की जाती है। जो समिधाया जितनी ज्यादा कोलसालि रखती है वे जलने पर जलती है अधिक मात्रा में कावन राधा-आकम्पना दना की है। जो जलनसारक नेत्र है। संस्कार विधि में जो समिधाया लिखी है उसी का प्रयोग करना चाहिए। न मिलने की स्थिति में उनके गुण दोष का विचार करके समिधाया प्रयुक्त करनी चाहिए।

७—जलमामी—सामर्थ्य और विधि आदि, फल सूखे जिन्हे में वे कहा जाता है। सुगन्धित और और धूल पत्र उसके राव आदि के भेदों में कई प्रकार की बन जाता है। संस्कारविधि में इसका वर्णन कर दिया गया है। वहां पर ऋतु के अनुसार सामर्थ्य का वर्णन किया जाता है।

‘वसन्त छलीरा, तालीम पत्र पत्रज दास, लज्जापत्री नील नीली कपूर चीट, देवदार गिलाय, अंगर नगर, केसर, इन्द्रजय, गुग्गुल कस्तूरी, नीला चन्दन, जलियाँ, जलफल, धूप, मरमों पुष्पमूल कमलगुडा, मजीठ, वनकचर दालचीनी गुलर की छान, तेजपत्र अंगुली, निरायता गोबर खाट, गोधन, ऋतुफल, भात वा मादन भाग तथा जड़।

‘श्रीपक्ष—मृग वायविडग, कपूर, निरीजी, नागरमाथा, पाना चन्दन, छलीरा, निमल, सनावर, खैर गिलोय, धूप, दालचीनी, लवंग, कस्तूरी, मफद चन्दन, नगर, भोजपत्र, भात, रुख की जड़, तालीम पत्र, पट्टाख, दाग हरी लाल चन्दन, मजीठ, शिलारम, केसर, जटामासी नेत्रवास, दलायनी बड़ी उन्नाव, घामले, मूंग के लड्डू, ऋतुफल और चन्दनचर।

‘वर्ण—काला अंगर, पाला अंगर यक्ष, चीट धूप, मरमों, नगर, देवदार, गुग्गुल नकलिकनी, राल, जलफल, मण्डी, गोला निमल, कस्तूरी ममाने तेजपत्र, कपूर वनकचर, बेत, जटामासी छाती दलायनी यक्ष, गिलाय तुलसी के बीज वायविडग, कमलगुडा, शहद चन्दन श्वेत वा नगर, ऋतुफल, नागकेसर, आक्षी, चिरायता, उदद के लड्डू छतार, गोबरखाट, मोचरम विष्णुकाता वाक को समिधा, गोधन, खांड और भात।

‘तद्वत्—चन्दन सकेत चन्दन लाल, चन्दन गोला, गुग्गुल नाग-केसर दलायनी बड़ी गिलोय, चिरायी, विदारगकट मरमों छान, बाक्षी दालचीनी कपूरकचरी, मोचरम, पित्तपापटा, अंगर, भारती, इन्द्रजय, रेणुका, मुनक्का, अष्टमन्थ, गोनल जीनी जलफल पत्रज, निरायता, केसर, कस्तूरी, विष्णुमिश्र खांड, जटामासी, नालमखाना, सट्टेवा, वाक को समिधा धान की खील, खैर विष्णुकाता कपूर गोधन और ऋतुफल।

‘हेमन्त—कूट, मुमली, गन्धकोकिला, गुडवान्छ, पित्तपापटा, कपूर, कपूर कचरी, नकलिकनी, गिलोय, पटोलपत्र, दालचीनी, भारती, मोफ, मुनक्का, कस्तूरी, खांड, गुग्गुल, अखरोट, रामना, शहद पुष्पमूल, केसर, छतार, गोबर, वीर के बीज, कांटेदार गिलोय पपटी वादाम, मुलहट्टो, काले तिल जलियाँ, लाल चन्दन, मुडकवाना, तालीमपत्र, रेणुका, खाया, बिना नमक की खिचड़ी, आम या खैर की समिधा, गोधन और देवदार।

‘शिशिर—अंगरोट, वायविडग, कपूर, राल, मण्डी, मोचरम, मिथान, मुनक्का, रेणुका, काले तिल, कस्तूरी, तेजपत्र, केसर, चन्दन, चिरायता, छतार, तुलसी के बीज गुग्गुल चिरायी, वाकटा मिथी खांड, सनावर, दाग हरी दासपत्री, पदमास, वीर के बीज, जटामासी भोजपत्र, गुलर वल समिधा और मादन भाग।

८—ग्यालापाक मादन भाग (हलवा) खैर, भात लड्डू आदि भी यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं। परन्तु कोई बीज जो तमकान, खटोई या मिच में सम्यक् हो यज्ञ के लिए निषिद्ध है। पुराडाया पकाने की विधि विशेष है और वह जिन यज्ञों में उपयोग में लाया जाता है उसी में उसका प्रयोग होना चाहिए। आमिक्षा आदि की विधि पूर्व प्रकरण में बताई जा चुकी है।

खिचड़ी, चावल, उदद, मूंग और तिल की बनती है। इसमें नमक और मसालों आदि का प्रयोग नहीं होता है। इसमें मीठा भी नहीं पकाया जाता है।

इन सभी पदार्थों के गुण धर्मों का वर्णन करना बहुत विस्तार की अपेक्षा रखता है। आयुर्वेद में इनके गुण धर्म भली प्रकार वर्णित हैं। वहां पर देखना चाहिए। संस्कारविधि में जिन पदार्थों का वर्णन है उन्हें भी वहां पर संगृहीत समझना चाहिए।



६—यज्ञ में यज्ञमान के जो काम हैं, उनका समस्त सम्कारादीय में विद्यमान है। वे सब काम हमने यज्ञ में ही बिना यज्ञमान के सभी 'मन्त्र' द्वारा पूरे कर दिए हैं। यज्ञ मान यज्ञ की सम्पत्ति को धारण करने वाला है। बिना इसके यज्ञमान का सम्बन्ध नहीं हो सकता। यज्ञमान के बिना यज्ञ और यज्ञकार का सम्बन्ध नहीं हो सकता। यज्ञमान ही यज्ञ के सम्बन्ध में काम में ही प्राप्त होता है। यज्ञमान ही यज्ञ के सम्बन्ध में काम में ही प्राप्त होता है। यज्ञमान ही यज्ञ के सम्बन्ध में काम में ही प्राप्त होता है।

जैसे ही यज्ञ पूरा हो जायगा यज्ञमान अर्पित करना भी यज्ञ और यज्ञमान के सम्बन्ध पर विशेष सम्बन्धित है। यज्ञमान के अनुसार यज्ञका सम्कार किया जा सकता है।

## षोडश प्रकरण

### हमारा यज्ञ संसार-यज्ञ के दर्शन से समन्वय स्थापित करता है

माण्डूकीयनिषद् में कहा गया है कि यज्ञ में यज्ञमान द्वारा दक्षी गृही अर्पितया सूर्य का किण्वों के साथ जाकर उसे स्वर्गलोक में मानो बुझाने है। यह स्वर्गलोक क्या है? जहाँ तक यज्ञमान विशा के प्रभाव और भौतिकी का सम्बन्ध है 'स्व' शब्द सूर्य के लिए प्रयुक्त होता है। यह स्व सूर्य है और उसका स्थान आकाश स्वर्ग वा स्वर्गलोक है। सूर्य की किण्वों के साथ अर्पितियों का सार यज्ञमान के साथ सौर प्राणों का सम्बन्ध स्थापित कर देता है। परन्तु वह स्वर्ग जो सूर्य-मांसा विशेष की प्राणि की अस्थि है वह भी इस यज्ञ में प्राप्त होता है। जान का किण्व यज्ञमान के किये यज्ञकर्म के साथ उस सूर्य को भी प्राप्त करती है चाहे वह उस जन्म में प्राप्त हो अथवा उस जन्म के बाद प्राप्त जन्म में। प्रश्न होगा कि अर्पितिये अगले जन्म में प्राप्त होने वाले सूर्य के लिए यज्ञमान को किस प्रकार समर्थ करेगी? इसका उत्तर है कि ये अर्पितियाँ यज्ञ कर्म की संपादिका हैं। कर्म अर्पित उत्पन्न करता है और अर्पित द्वारा वह सूर्य प्राप्त होगा। क्योंकि वही परमात्मा की अवस्था में फल उत्पन्न करेगा।

यज्ञ यज्ञमान यह कहता है और व्रत करता है कि मैं 'अननान् मय्यर्पेमि' अर्थात् मनुष्यत्व से देवत्व को प्राप्त होकर यज्ञ का मया-दन करता हूँ तब वह वस्तुतः देव होकर ही यज्ञ को कर रहा है। देवत्व को प्राप्त ही इस यज्ञ का अधिकारी बनता है। यह देवत्व भौतिक दृष्टि से भौतिक देवों से सम्पर्क स्थापित करना है अर्थात् वह सूर्य लोकस्थ प्राण और यज्ञ के देवों से सम्पर्क कर लेता है और कर्म-मांसा की दृष्टि से वह नैतिकता के द्वारा मनुष्यत्व से ऊपर उठकर देव बन जाता है। दोनों ही प्रकार से यह देवत्व-प्राप्ति यज्ञमान को यज्ञ क्रिया के योग्य बनाती है।

प्रस्तावित विषय पर। पर हमारे यज्ञ का आरा है। जब हम यजुर्वेद के अध्यायी को प्रथम अध्याय में यज्ञ आरम्भ करते हैं तब ऐसा जाना जाता है कि यज्ञ हमसे बड़ा हम से बड़ा गया है। यह हम यज्ञ का है। यदि हम यज्ञ की सम्मति करेंगे तो फिर हमारे यज्ञ और भगवान् के समान यज्ञ का सम्मन्वय और दायनिक पूजाभूमि खन जावेगी। ब्राह्मण ग्रन्थों में उन वेदों के शब्दों और क्रमों को खोलने का प्रयत्न किया गया है। परन्तु आजकल उन ग्रन्थों को न कोई पढ़ता है और न पढ़कर उनके सम्मन्वय में पढ़ने का प्रयत्न करता है। कारण यह है कि इसके लिए विशेष ज्ञान की प्रवृत्ति चाहिए जो है नहीं। आर्यसमाज में कुछ विद्वान्मधारी उन ग्रन्थों का नाम अपने को चमकाने के लिये लेते अवश्य है परन्तु उनके ज्ञान में तनिक भी सम्पर्क उत्पन्न होता नहीं। यहां पढ़ते हम समाज में चल रहे यज्ञ को देखें। समस्त यज्ञ का वर्णन यजुर्वेद में इस प्रकार मिलता है—

(१) यज्ञं न यजमरजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यामन्।

यजु० ३१।१६

(२) सन्ताम्यामन् परिधयः वि सन्त ममिधः कृताः।

देवा ययज तन्वाना अक्वन्त पुर्य पथुम् ॥१० ३१।१५

(३) यजुर्गुणेण हविषा देवा यजमन्वन्त।

वसन्तो ज्यार्मादाज्य ग्रीष्म उष्म शरद् हविः ॥

यजु० ३१।२४

हम यज्ञ का वर्णन शतपथ १।२।२।३६ में मिलता है। शतपथ ब्राह्मणकार हम यज्ञ का सकेत करते हुए हमारे पार्थिव यज्ञ की भूमिका स्थापित करने हुए कहता है कि प्रजापति—परमेश्वर ने हम यज्ञ कर्म को पढ़ने किया और तदनन्तर देवाने उसे किया। यहां पर प्रश्न यह उठता है कि प्रजापति के बाद देवों के हम कर्म के करने का विधान है। मनुष्यों का तो सकेत नहीं है। हमका उत्तर यह है कि देव भी तो मनुष्य ही हैं। जब यज्ञ कर्म मनुष्य करता है तब देव बनकर ही करता है। ऊपर पढ़ते ही पक्तियों में हम विषय को बता दिया गया है। इसलिये ठीक ही वर्णन किया गया है। हम विस्मय किये जाने वाले हमारे यज्ञ में तीन प्रकार की अग्नियां होती हैं। वे हैं आहवनीय, गाहपत्य और दक्षिणाग्नि। कभी कभी इन तीनों को त्रेता भी कहा जाता है। चूंकि हमारा यज्ञ प्रजापति के महान् यज्ञ

की पार्श्वभूमि पर है और प्रजापति के महान् यज्ञ की भी तीन वेदियां हैं और इन्हीं पर हमारा भी सम्बर्धन है। प्रजापति के महान् यज्ञ की तीन वेदियां हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य। हमारा ब्राह्मण के अनुसार गाहपत्याग्नि पृथिवी सम्बन्धी है, दक्षिणाग्नि अन्तरिक्ष और आहवनीय सूर्योत्पत्तीय है। हम प्रकार उन यज्ञों लोको में प्राकृतिक नियम यज्ञ चल रहा है। यह वस्तुतः अग्निप्राप्तिय और वितानयज्ञ है। हमारा यज्ञ प्राकृतिक यज्ञ की प्रतिरूपि है। सूर्याग्नि में सोम को आहुति हो रही है इसीलिये यह अग्निप्राप्तिय है। हम पृथिवी पर यज्ञकुण्ड में सोमलता, गिलाय आदि की आहुति जलाते हैं—यही हमारा पार्थिव यज्ञ है। इन हमारे यज्ञ का सम्बन्ध उस महान् यज्ञ से रहता चाहिये। उस महान् यज्ञ तक पहुँचने के लिए यह हमारा यज्ञ एक प्रकार का रथ है। सूर्य की रश्मियां ही उन दोनों का सम्बन्ध जोड़ती हैं।

जिम मंत्र को अग्नि जलाते हुए हम पढ़ते हैं वह उन वेदियों का स्मरण कराता है। यह बताता है कि महान् वेदों तो जो में हैं। हम उसे प्रदीप्त नहीं करते हैं वह तो भगवान् ही करता है। हम देव-यज्ञी पृथिवी पर अग्नाद अग्नि का स्थापित करते हैं।

सुलाक के यज्ञ को देख। यह हमारी पृथिवी में २१ वे सोम = अंगुण पर है। यह सूर्य हमसे ६ करोड़ मील की दूरी के लगभग ऊपर विद्यमान है। गैरग्य ब्राह्मण कहता है कि यह २१ सोम पर है। यह सूर्य अग्निमय है और उसके चारों तरफ सोम का समुद्र भरा हुआ है। उस ऊँद अर्थात् सूर्य के अग्नि और साम भाई हैं। उस सोम के सम्बन्ध से सूर्य में प्रकाश है। उस सोम समुद्र को ही पारमेष्ठ्य मण्डल कहा जाता है। शतपथ ब्राह्मण हमका वर्णन करते हुए कहता है कि 'यह जो परम स्थान में स्थित है उसी में उसे परमेष्ठी कहा जाता है। यह सोम वस्तुतः विषेय शक्ति वाला भौतिक पदार्थ है जो सूर्य में प्रकाश भा उत्पन्न करता है और जान होता है कि यह सूर्यस्थ अग्नि को स्वर्गक भी देता है। सूर्य का वेदों में एक नाम सव-त्सर भी है। जैमिनीय और शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि जो प्रकाश है वह सवन्त है और जो प्रकाश नहीं है वह सर है। २४ प्रकार सूर्य में भी घट्टे = कालेपन की कल्पना की गई है।

महाराष्ट्र का नाम कालः १००० म. नाम पहाड़  
मिनाई

[illegible]

अपने अन्तर्गत प्रत्येक विभाग में एक या अधिक उप-विभागों का प्रभार संभालता है।

## मनोला

इस यज्ञमान सूर्य में अग्नि तीनों आहुत—ये तीन मनावा  
रतन है। इसी में मन् प्राण और वात्स्य सूर का मनाभाग प्राप्त  
होता है। यह मनाभाग हमारा अरुह का मनाभाग नहीं वात्स्य  
नान् भीयन्वत् है। दवा के तीन मनावा माने जाते हैं। वे हैं मन,  
प्राण और वाक्। मन, प्राण और वाक् में अग्नि का आध्यायित करने  
के लिए यजमान की क्रमशः ज्योतिष्ताम, गोष्टोम और आयाष्टोम—  
ये तीन यज करने चाहिये। जिस प्रकार शरीर के परमाणु मण्डल  
का यज कहा गया है उसी प्रकार सम्बन्ध भी एक मण्डल यज्ञ है।  
ब्राह्मण ग्रन्थों में इस सम्बन्ध यज्ञ के अन्विज् ऋतु आदि बनाये गये  
हैं। इस प्रकार यजमान जब पवित्रा पर अन्ताद अग्नि की स्थापना  
कर यज्ञ करना है और देवत्व को प्राप्त करना है तब इन सभी से  
उसके यज्ञ और उसका सम्पर्क स्थापित होता है।

यज्ञ करना हुआ यज्ञमान देवा शक्तियां से सम्पर्क कर देव होता है और माना वह प्रयत्न स्वर्ग अर्थात् मोरनाक में स्थित है अथवा मृत्यु में स्थित है। इस यज्ञ में यज्ञमान यज्ञ में वाली गई आहुतियों द्वारा वा सूर्य किरणों द्वारा प्राकृतिक देवा से सम्पर्क करता है और यज्ञमान के यज्ञ में ये यज्ञ देवता भी सम्पृक्त रहते हैं। यही देवा और यज्ञमान का सम्बन्ध माना यज्ञमान का स्वर्ग प्राप्त करना और देवा कायज्ञ में आना है। इस अवस्था को प्रकट करने वाले ये ऋग्वेद के निम्न मन्त्र हैं —

अग्नि दूत पुरोदध हव्यवाहमुपवृत्ते । देवा प्रासादयादिह ॥

गरी मय मे निान वरि कही गई :-

१—यजमान अग्नि का दूत बनाना है देवा नर तत्र नर क रिया ।

२ वह अग्नि इत्येवाह अर्थात् अग्नि की लज्जा कर देना तक पहुंचाना है और वही वस्तुतः इसका मा-यम है।

३—वह देवों का यज्ञ में प्राप्त करता है। क्योंकि सभी यज्ञ के देव अग्नि के मुख में ग्राह्य आदि प्राप्त करते हैं।

देवता यज्ञ में जड़ और चेतन दोनों प्रकार के हैं। जिन्हें अर्घ्य दी जाती है वे भौतिक पदार्थ जड़ हैं। यज्ञमान कृत्विज् आदि चेतन हैं। किम प्रकार ये उपयुक्त ढंग पर यज्ञ से सम्बन्ध रखने हैं, इस पर विचार किया जाता है।

जिग मीर यज्ञ का परमप्रीमण्डल नाम से वर्णन किया गया है उसके और यज्ञमान द्वारा किये जाने वाले यज्ञ के स्थाना का नाम 'देवयजन' है। अर्थात् इसमें देवता के निमित्त यज्ञ किया जाता है इसलिये यह देवयजन है। इसलिये अग्न्याधान के प्रथम मन्त्र में पृथिवी को देवयजनी कहा गया है।

पहले यह बताया जा चुका है कि यह परमेष्ठीमण्डल सोम का महान समुद्र है जो सूर्य के चारों तरफ भरा है। यह महान सोम आप, वायु और सोम तीन प्रकार का है। इसी दृष्टि से पदार्थ भी आप, वायव्य और सोम्य भेद वाले होते हैं। सोम वस्तुतः देवताओं का अन्न है। यह सोम रूप देवान्न सूर्य की किरणों के द्वारा सर्वत्र फैला है और पृथिवी तक आता है। पृथिवी तक आने में इस सोम की कई अवस्थायें हो जाती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि इस सोमरूप देवान्न में आसुर प्राण मिल जाते हैं। ये आसुर प्राण ही राक्षस नाट्टा आदि नामों से विख्यात हैं। ये आसुर प्राण क्या हैं? वस्तुतः आप्य प्राण ही आसुर हैं। मेघ सम्बन्धी प्राण आसुर है ही।

पहले यह भी कहा जा चुका है कि सूर्य में तीन मनोवा है—  
ज्योति, गो, और आयु । सोम के भृगु, अङ्गिरा और अग्नि—ये तीन  
मनाता है । भृगु के भी तीन भेद है—अग्नि, वायु और सोम । इनमें  
सोम के अनिर्विक्त ये सारे ही लब्धवाय वैकारिक है । सोम को प्राण  
कहा जाता है । यही प्राण ऋषि भी कहा जाता है । इसी प्राणों को  
पितर का भी संज्ञा दी जाती है । ये नाम प्राण के गुण और कर्मों के  
कारण है । अग्नि में डाले गये पदार्थ से ये गूढ़ होकर समार के लिए







[illegible]

## प्रमाणसन्दर्भ

- १—प्रजापतिर्वा एतदग्रे कर्माकरोत्तत्ततो देवा अमुकवन् ।  
श० ६।२।३।११  
२—अयं वै लोको गार्हपत्यः । श० ७।१।१।६ ; स्वर्गो वै लोक  
आहवनीयः । श० ६।३।२।१२  
३—एकविंशो वा इतः स्वर्गलोकः । ऐ० ४।३।१८  
४ यत्परमे स्थाने तिष्ठति तस्मात्परमेष्ठो नाम । श० ११।१।  
६।१६

५—त्वमिमा ओतथो मोम विद्वान्मममपो मत्तनमममगा ।  
त्वमा ततम्योवन्तश्च स्व गगतिना वितमो मयय ॥

১১৩৩

६ तिस्रो देवानां मनोनाम्नाम् हि तेषां मनास्योक्तानि, वाग्देवानां मनोना तस्यां हि तेषां मनास्योक्तानि, गीर्वादेवानां मनोना तस्यां हि तेषां मनास्योक्तानि अग्निर्व देवानां मनोना तस्मिन् तेषां मनास्योक्तानि ।

७ - एष वै सोमो राजा देवानामन्नम ॥ श. १.६।३.५

८—सहस्राश्वीने वा इतः स्वर्गोलोकः । ऐनरेय २।७

६—मरुतो हव देवविश्वेऽन्तरिक्षभाजना ऐतः ११०  
मरुतो देवानां विशः ॥ ऐतरेय ७।१६

१०—विष्णुर्व देवानां हारणः । ऐतरेय १।००

११ त्रयस्त्रिंशद्देवाः सोमपा त्रयस्त्रिंशदमोनपाः । अष्टौवसव  
एकादश रुद्रा द्वादशादिश्याः प्रजापतिः वषट्कारश्चने देवाः  
सोमपाः । ऐत० २।१८

१० - मा छन्दः तत पृथिवी अग्निदेवता, प्रभा छन्दः तदन्तरिक्षं  
वातो देवता, प्रतिभा छन्दः तद्वायो, सूर्यो देवता, अस्तौ च छन्दः  
तद्विश्वः सोमो देवता । आप० श्री० १६।२८।१



## सप्तदश प्रकरण

## यजुर्वेदीय ऋत्विक्मवाद

यज्ञ में ऋग्विज्ज्ञान करने है। उन ऋग्विज्ज्ञानों का अध्ययन बहुत विचार के साथ किया जाता है। ये ऋग्विज्ज्ञानयज्ञ और आचार विचार और कर्म की दृष्टि में बहुत उत्कृष्ट कक्षा के होने चाहिए। मन्त्री तक वह विज्ञान के विज्ञान होने चाहिए और ब्रह्मा चतुर्वेद विद्वत् होता चाहिए। यज्ञ वस्तुतः विज्ञान उत्तम कर्म है और विज्ञानपूर्ण है। उसी तरह उसके ऋग्विज्ज्ञान भी उसके कोटि के होने है। चतुर्वेद के वैदिक ऋग्विज्ज्ञान के ८५ व मन्त्र में ६० व मन्त्र तक ब्रह्माद्यम् है। ब्रह्माद्यम् क्या है? ऋग्विज्ज्ञान का परस्पर विद्या सवाद ब्रह्माद्य है। यज्ञ में होता अथर्व आदि सम्वाद करने है। ये मन्त्र वस्तुतः यज्ञ के ऋग्विज्ज्ञान के सम्वाद हैं। इस सम्वाद का अध्ययन करने में यज्ञ के स्वर और उसमें ज्ञान विज्ञान की प्राप्ति के विषय पर उत्तम प्रकाश पड़ता है। यज्ञ पर उन मन्त्रों को देखकर उनके अर्थ भी जानकारी के लिए दिए जाते हैं :—

१. यं शिवदेवाकी जगति यं उ शिवज्जायते पुन । किं शिवदि-  
मस्य भेषजं विवापनं मदन । यजः २३।४५

होना अवश्य में पड़ता है—

हे भगवन् ! कौन भगवन् भगवन् कीली पर चिता किंगी की परि-  
कमा किण घमना है ? कौन है जो लाका के चांगे तरफ वूमना है ?  
उण्ही वा जाड की दवा क्या है ? बीज बोने का महान क्षत्र क्या है ?

२ - सूर्यं एकस्मिन् चरति चन्द्रमा जायते पुनः ।

अग्निहिमस्य भेषजं भूमिरावपनं महत् ॥४६॥

अध्वर्यु उत्तर देता है—

इस प्रकार 'सूर्य' प्रकाश 'विद्युत' किन्ता 'मार्ग' का 'विद्युत' प्रकाश  
प्रदान करने पर प्रकाश है। 'मार्ग' 'सूर्य' प्रकाश 'विद्युत' प्रकाश  
प्रदान है। प्रकाश 'विद्युत' का 'मार्ग' है। 'मार्ग' 'विद्युत' प्रकाश  
विद्युत प्रकाश प्रदान करने है।

३ वि. वि. मूद्रमम इति वि. मूद्रमम मम १४ वि.  
ममिमे इति मम मम न विदुः १५

अथर्वं सोमं तदनाहं—

हे होत ! मयंक समान प्रकाशमान वस्तु कहा है ? समस्त व  
समान महान लोकाय कहा है ? पृथिवी से बड़ा कहा है ? प्रो. 'रुम  
की मात्रा अर्थात् नील कहा है ?

४—ब्रह्म मुरेसम आनिशो समुद्रमम-अर

८-२ मृषिये वर्षायां नान्मात्रा न विदुते ॥८॥

प्रत्युत्तर देना है—

सूर्य के समान प्रकाशमान जगति वस्तु है । अतः अन्तर्गता मनुष्य के समान विनाशित नाशवान् है । इन्द्र अर्थात् सूर्य पृथिवी से बहुत दूर है । वाणा की मात्रा वा ताप नहीं होता है ।

५-तृ-छा-म-वा-नि-ये-दे-व-म-व-य-दि-व-म-व-म-न-मा-ज-ग-न्य-

मेरा विनाशिका पदम विश्व भवनमात्रिकाः १५८

ब्रह्मा उदगाना मे पृच्छता है—

है उद्घातः । मैं तुमसे जानकारी के लिए पछता हूँ यदि ग्रन्थने  
मन में उस विषय को जाना हो यज्ञ के उन तीन पदों को जिनमें  
समस्त भवन प्रविष्ट है अथवा व्यापक भगवान् के तीन कर्मों को  
जिनमें सारा भवन प्रविष्ट है ।

६—प्रति तेन विना पदेऽस्मिन् येन विद्वद् भवतमाविशेत् ।

मद्यः पर्यामि पृथिवामात्मानमर्केनाह्वेन दिशो ध्रुवः प्रथमः ॥५०॥

प्रत्युत्तर—

हे ब्रह्मन् ! यज्ञ के उत्तरी तीन पदों गार्हपत्य, आश्विनोय और दक्षिणाग्नि अथवा भगवान् के तीन कर्मों पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग लोक में मैं और प्राण दोनों विद्यमान हैं जिनमें कि सारा भवन स्थित है । अपने एक अङ्ग अर्थात् मन से मैं सारा प्राणियों को देखता हूँ फिर स्वर्ग लोक को देखता हूँ और देखता हूँ समस्त लोकों के विभाग का ।



१६ वेदस्य भवन्तः नाभि वेद लावापयिवी अन्तरिक्षम् ।  
वेद स्यन्तः कर्त्तुं जनिष्यन्ति वेद चन्द्रमस यतो जाः ॥६०॥  
ब्रह्मा अन्तर देता है—

जानना है मैं इस भवन के नियंत्रक कारण (ब्रह्मा) को । जानना  
है मैं इस और पृथिवी जाको हा तथा अन्तरिक्ष का । महान् सूर्य के  
निमित्तकारण (ब्रह्मा) को जानना है और जानना है ब्रह्मा को  
जिसकी निमित्तता से चन्द्रमा प्रकाशित है और चन्द्रमा के स्वयम्  
को ।

१७—पुनश्चासिन्वा परो अन्तः पृथिव्या पुनश्चासि यत् भवन्तः नाभि ।  
पुनश्चासिन्वा वृणा अद्वयं रेतः पुनश्चासि वाचः परमव्योम ॥६१॥  
यजमान अन्तर में पड़ता है—

हे अन्तर्यामी मैं पड़ता हूँ आप में कि इस पृथिवी का मध्य क्या  
है ? पड़ता है कि भवन की नाभि—व्यवस्थित क्यों है ? पड़ता हूँ  
आप में शक्तिशाली बीज की और पड़ता हूँ वाणी के परम उद्गम  
स्थान का ।

१८—य वेदिः परा अन्तः पृथिव्या अयं यजो भवन्तः नाभि  
अयं मासा उणा अद्वयं रेतः ब्रह्माय वाचः परमव्योम ॥६२॥  
प्रान्तर—

यह वेदि अन्तः पृथिवी का कोई भी बिन्दु पृथिवी का मध्य है  
क्योंकि भूमि गोल है यह यज—पृथिवीय भवन्तः ही भवन की नाभि  
है । यह मास—विद्युत् का शक्तिशाली अग्नि का बीज है । आकाश  
अथ ब्रह्मा वाणी के परम उद्गम स्थान है ।

इस मन्त्र में यज के व्याख्यान पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है—यह  
गिरित है ।

## अष्टादश प्रकरण

### मीमांसा और वैदिक यज

व्यास और जैमिनि ने अपने दर्शनों में यज का उल्लेख किया है ।  
व्यास और जैमिनि का मत एक सा ही था । जैमिनि ने यजों को  
दार्शनिक दृष्टि से विभागा । उसका स्पष्ट तथा स्पष्ट यह है कि वैदिक  
यज—दर्शन दर्शनी प्राचीन दर्शन है । सभी दर्शनों में यजानुष्ठान का  
वर्णन है । उपनिषद् भी इसी प्रकार यज की प्रक्रिया का वर्णन करती  
है । यज प्रक्रिया का दार्शनिक स्तर पर विचार करने का कार्य  
जैमिनि का है । इसीलिए पूर्वमीमांसा की छ दर्शनों में एक दर्शन  
स्वीकार किया गया है । लागू करते हैं कि मीमांसा की दार्शनिकता  
क्या है ? इस प्रकरण में इस पर थोड़ा सा विचार किया जावेगा ।  
मीमांसा के कुछ वैज्ञानिक विचारों का दिखाना जावेगा जिससे उसका  
दार्शनिकता स्वयं सिद्ध हो जावेगा ।

कुछ ऐसे विद्वान् हैं जो यज प्रक्रिया के दार्शनिक सिद्धि में ही  
अपने को गौरवान्वित समझते हैं । उनका विचार ऐसा है कि यज-  
प्रक्रिया में वेद का अर्थ बहुत प्राचीन नहीं है । परन्तु उनकी यह  
धारणा सर्वथा निर्मूल है । जब से वेद है तभी से यज प्रक्रिया और  
यज परक मन्त्रार्थ भी है । जैमिनि, व्यास और निम्बककार यजप्रक्रिया  
को स्वीकार करते हैं । लगभग सभी दर्शन इस मानते हैं । व्याकरण  
आदि में इस आधार पर व्याकरण के सूत्र रचे गए हैं । शास्त्राग्रा में  
यह प्रक्रिया पाई ही जाती है । अतः यह महाभारत काल में ही यी  
ही ।

उसके अनन्तर शतपथ और तेनवेय ब्राह्मण में यज प्रक्रिया का  
पूरा विधान है और वेदार्थ भी इस दृष्टि पर किया गया है । इसमें  
यह बात बड़ी लाज क्यों का हो जाता है । यजवन्तः नाभय  
ब्राह्मण के कर्त्ता हैं महाराज जनक के पास हैं । यह काल बहुत  
ही पुराना है ।







वेद की प्रामाणिकता है कि वेद के स्वयं प्रमाण होने से उनके लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। वेद की स्वयं प्रामाणिकता है। इसके लिए प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं जानी जाती है। वैशेषिक दर्शनकार ने भी धर्म के विषय में इसी प्रकार का विचार प्रस्तुत किया है। वेद का अर्थ है कि धर्म का वचन एवं ईश्वर का वचन होने से वेद की प्रामाणिकता प्रसिद्ध है।

इस प्रकार वेद के प्रमाण का सिद्ध करके वेदिक कर्मा, यज्ञ आदि को करने के विषय में होने वाले ऊपर लिखे गये प्रश्नों का समाधान कर दिया। पुनः वेद मन्त्रों की गूँजा बाँध दो। मन्त्र यज्ञ और धर्म। यद्यपि वेद सार है। परन्तु यज्ञ का परिभूषण में जोमिति ने वाली वेदों के मन्त्रों का नीचे की प्रमाण माना है। नारी वेदों के मन्त्र इन्हीं नीचे प्रकारों में हो सकते हैं।

वेद की प्रामाणिकता अन्य शास्त्रों में प्रधान और अनिवार्य एवं श्रेष्ठ है। अन्य शास्त्र वेदानुसार होने पर ही प्रामाणिक है। अन्यथा नहीं। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं है। जोमिति ने इसका पुरा निर्णय किया है। ब्राह्मण ग्रन्थ का स्वर भाषित होता है जब कि वेद मन्त्रों का स्वर रेख्य है। अतः शास्त्र प्रामाणिक है।

शाखाओं के विषय में भी इसी प्रकार निर्णय दिया है। मीमांसा के अनुसार भी शाखाओं की वर्णानुसारी नियत नहीं है। जबकि वेद-मन्त्रों की वर्णानुसारी नियत है। अतः शास्त्र में भेद है। इस प्रकार शाखा और ब्राह्मणग्रन्थ वेद न होकर वेदों के व्याख्यान है। किन्तु शास्त्रों और मन्त्रों की प्रामाणिकता किम कारण से मानी जावे इसका भी विचार जोमिति ने किया है। वेदों की प्रामाणिकता स्वयं और गवापरि है। यह स्थापना जोमिति ने की है।

## २—धर्म के भेद और अपूर्व

धर्म पर यज्ञ प्रामाणिक है। अतः धर्म क्या है इसका प्रतिपादन होने पर भी इसके भेदों का जानना आवश्यक है। मीमांसा ने इसका विचार दार्शनिक स्तर पर किया है। ये धर्म के भेद तीन प्रकार के हैं : वे हैं—मनुष्य धर्म, पशुधर्म और आवष्टार धर्म। मनुष्य धर्म यह है जो धार्मिक उन्नति के लिए प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। नम्र का करना मनुष्य के अधिकार में है परन्तु

मनुष्य धर्म रूप फल ईश्वर के राज्य में है जो मनुष्येतर जीवों के लिए नहीं है। अग्निहोत्र, पंचमहा यज्ञ विशेष यज्ञों का करना पशु धर्म है। खेती, व्यापार आदि की प्रवृत्ति आवष्टार धर्म है। इन सब के मोलिक सिद्धान्त है और धर्म में एक मनुष्य धर्म में ये सभी धर्म-मिलते हैं।

अपुनः अपूर्व पर विचार करना अपेक्षित है। जब मनुष्य कोई कर्म करता है तो कर्म नाश हो जाते हैं। मरमक कर्म कुछ परिणाम पैदा करके नाश हो जाते हैं—यह प्रत्यक्ष है। यज्ञकर्म किया गया। वायु शब्द उड़ अथवा वरिष्ठ है। ये परिणाम तो देखने में आये, परन्तु यदि यज्ञ फल उन यज्ञों के है तो जब आवश्यकता पड़ना कर विषय जावेगा। यही स्थिति में ये नैतिक कर्तव्य नहीं बन सकते, परन्तु ये ये कर्तव्य जब कोई भज पैदा होता है तब उनका स्वाभाविक विचार जाता है। अगर यही फल उन यज्ञों का है तो जब आवश्यकता होगी तब इनकी कर्तव्यता भी होगी। मात्रा परिमाण आदि का भी परिमाण अनुसार करना होगा। परन्तु यज्ञ-प्रक्रिया का ज्ञान्योप-दशन ऐसा नहीं करता है। वह कहता है कि किया कर्म एक भाव वा अदृष्ट पैदा करके नाश होता है। कर्म किया हुआ सबका ही नाश हो जावे ऐसा नहीं। इसका विशेष विवेचन मेरी पुस्तक 'धर्म-मीमांसा' में देखें। फिर यह अपूर्व क्या है ?

यज्ञ किसी फल की प्राप्ति के लिए किये जाते हैं। जैसा कि कहा गया है कि "स्वर्ग की कामना वाला यज्ञ करे"। यह किता हुआ उसका यज्ञ तो करने के बाद समाप्त हो जाता है। स्वर्ग मिलना मृत्यु के पश्चात्। फिर कैसे माना जावे कि स्वर्ग यज्ञ का फल है। मीमांसा में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है। यज्ञ में एक अदृष्ट उत्पन्न होता है। उसी का नाम अपूर्व है।

यह अपूर्व समय पर परमेश्वर की व्यवस्था में फल देता है। यज्ञ करने के आदेश वाक्य या विधि वाक्य यज्ञकर्त्ता में प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं। यह प्रवृत्ति कर्त्ता को यज्ञशान्त करती है। इसकी निराश कहते हैं। यह नियोग नियोज्य अर्थात् कर्त्ता में एक वाक्यना उत्पन्न करता है जो कर्म की समाप्ति में लेकर फल की प्राप्ति वह रहता है। यही अपूर्व है। इसे अपूर्व इसलिए कहा जाता है कि यज्ञकर्म करने से पूर्व न यह था और न फल के पश्चात् यह रहेगा। यह यज्ञ



करने में उत्पन्न होता है। अर्थात् नार प्रकाश के होने हैं। वे हैं—फल  
आयं समुदाय आयं, उपनि आयं और अह्न आयं। फल आयं  
वा मध्य आयं है जो अन्तिम फल की प्राप्ति करता है। समुदाय  
आयं समुदाय यज्ञ यज्ञों के हर एक समुदाय का अपना अलग आयं  
है। यज्ञ आयं उस समुदाय के हर एक यज्ञ का अपना आयं है।  
अह्न आयं हर उस छोटा किया का आयं है जो यज्ञ का अह्न है।

कुछ यज्ञ कई यज्ञों के समुदाय नहीं है। उनके करने में फल  
अर्थात् उत्पन्न होता है। कुछ यज्ञ कई समुदायों की मिला कर होते  
हैं। जैसे दशगोणमास। उनके दो समुदाय हैं। एक दश वा अमा-  
वस्या का होने वाला और दूसरा पूर्णिमा की। ये दोनों समुदाय  
अलग अलग आयं बनाते हैं। जिनको समुदाय आयं कहते हैं। इन  
समुदायों में से हर एक में तीन-तीन अवांतर यज्ञ हैं जिनमें से हर  
एक उपनि आयं बनाता है। इन यागों में कई छोटे कर्तव्य हैं उनका  
आयं अलग बनाता है और नही अह्न आयं है। पिछले तीनों आयं  
मिल कर फल आयं बनाते हैं।

जैमिनीय दर्शन इस बात पर भी विचार करता है कि विधि वा  
प्रणवावाक्य का बोधना पद वा शब्द आयं का शीतल है। ज्ञानार्थ  
जैमिनीय का यह विचार है कि वाक्य का हर एक पद भिन्न-भिन्न  
आयं नहीं बनाता है। किया पद जो विधि निष्ठ है (जैसे यज्ञ)  
यह एकल भी आयं नहीं बनाता। वस्तुतः कियापद अन्य पदों से  
मिल कर उनकी मर्यादा में आयं का शीतल होता है।

कर्म दो प्रकार के होते हैं। एक प्रधान कर्म और दूसरे गौण  
कर्म। जो कर्म आयं फल के लिए किये जाते हैं और जिनका फल  
दृष्ट नहीं है अर्थात् जिन विधियों द्वारा न कोई चीज बनाई जानी  
न सम्पन्न की जाती है वे प्रधान कर्म हैं। उदाहरणार्थ यज्ञ, ज्ञानि,  
जानि, शानि अर्थात् यज्ञ करना है, होम करना है और दान करना  
है। इनमें जो द्रव्य काम में लाये जाते हैं पुरोडाश पत्र, स्वर्ण आदि वे  
मुख्य नहीं गौण हैं। मुख्य तो यज्ञ है। जो द्रव्य होम में काम आता  
है उसे गृह्य कहा जाता है। जिन कर्मों द्वारा वे द्रव्य बनाये वा शोधे  
जाते हैं वे गौण कर्म कहलाते हैं। जैसे “बाहीन् हन्ति” धान कटना  
है—बाकल पीसना है—वभे बनाता है आदि में कटना, पीसना  
बनाता गौण कर्म है। मुख्य कर्मों में धान, चावल आदि द्रव्य गौण

होते हैं प्रधान नहीं। कर्म ‘यज्ञनि’, ‘ज्ञानि’ आदि प्रधान हैं गौण  
कर्मों में द्रव्य प्रधान है कर्म अप्रधान है। गौण कर्मों का फल दृष्ट  
होता है। जैसा कि यह सभी की जान है कि धान कटने में चावल  
निकलता है।

प्रधान कर्मों का आयं बनता है। गौण कर्मों का आयं नहीं  
होता। यथा हो मात्रना, आग की ठीक करना परिधिवा का  
करना, पुरोडाश का अग्नि पर रचना गौण कर्म हैं। मन्वन्तु ज्ञानि  
अर्थात् मन्वन्तु में आहुति देना है—यह प्रधान कर्म है। स्नाय मन्त्रों  
का गान करना और जम्भ मन्त्रों का पाठ करना यह प्रधान  
कर्म हैं।

### ३—यज्ञ में आये शास्त्रीय सन्वेहास्पद पदों का स्पष्टीकरण और विधि आदि का निर्णय

यज्ञ के आचार ग्रन्थों में अनेक यज्ञों का विधान है। उनमें प्रयुक्त  
शब्द नाम कर्म आदि के विषय में कभी सन्देह उत्पन्न हो जाता है।  
उनका निर्णय करना भी मीमामा दर्शन का विषय है। इसीलिए उसे  
दर्शन का भी स्थान प्राप्त है।

अ—स्येनयाग और उपयाग नाम से भी यागों का करना लिखा  
है। ये शत्रु के नाश के लिए हैं। भले ही ये शत्रु काम, क्रोधादि रूप  
हों। परन्तु जैमिनीय का निर्णय है कि याग की कोटि में नहीं आते।  
क्योंकि उनका सम्बन्ध यज्ञ करने के उद्देश्यों से नहीं है।

आ—एक यज्ञ का नाम सप्तस-सम्बन्धरीय यज्ञ है। सप्तस  
सम्बन्धर अर्थात् सप्तस वर्षों तक यह यज्ञ अनवरत कैसे चलाया  
जावे यह सम्भव नहीं। कान्यायन श्रौत सूत्र और मीमामा दोनों में  
इस पर विचार किया गया है। दोनों के ही सूत्र प्रायः एक दूसरे से  
मिलते-जुलते हैं। कुछ आचार्यों इसका समाधान यह करने है कि मनुष्य  
की आयु उतनी लम्बी नहीं है अतः यह पृथक् दर पृथक् चलाया जावे।  
परन्तु जैमिनीय मीमामा और कान्यायन श्रौत सूत्र में दूसरा समा-  
धान यही किया गया कि सम्भव ही दोष होने से ‘सम्बन्धर’ का अर्थ  
दिन माना जावे, वर्ष नहीं। सम्बन्धर पद का अर्थ वर्ष होता है।  
परन्तु आचार्यों ने यहाँ पर उसका अर्थ दिन किया है। अर्थात् महस्र  
सम्बन्धरीय यज्ञ का अर्थ महस्र दिन पर्यन्त चलने वाला यज्ञ है।



इस प्रकार ये छः कर्मोपनिषद् बलवी हैं। अग्नि, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान और समाम्या। इनके उदाहरण इस प्रकार हैं :-

१. अग्नि-तेन्द्रियाणां पञ्चमपनिष्ठते यथा पर अग्नि मे ही गाहं-  
पद पर और विनियोग पाया जा रहा है। कुछ लोग वाक्य को देख  
कर यह कहते हैं कि यहाँ पर तो 'तेन्द्रिया' पद स्पष्ट बना रहा है  
कि इन्द्र सम्बन्धी ऋचा में उपस्थान ही भवत इन्द्र का उपस्थान  
प्रतीत होता है। 'तेन्द्री' शब्द से गाहपत्यग्नि का उपस्थान नहीं हो  
सकता है क्योंकि वह तो अग्नि में सम्बद्ध है। यथा पर लिङ्ग में  
यद्यपि इन्द्र का उपस्थान सिद्ध हो रहा है परन्तु अग्नि से गाहपत्यग्नि  
का ही सम्बन्ध है। 'तेन्द्रा' ऋचा ये है— न कदाचन मन्त्रीरग्निः, केन्द्र-  
मन्त्रमि दास्यते। ऋ० ८. ५। ११७। इनमें इन्द्र का लिङ्ग द्वारा उप-  
स्थान स्पष्ट है। परन्तु मन्त्रों में उपस्थान सूचक कोई शब्द नहीं है।  
परन्तु वाक्य में 'गाहपत्यम्' पद से गाहपत्य सम्बन्धी उपस्थान  
स्पष्ट है।

इसी प्रकार इस वाक्य का अर्थ भी होगा। यथा पर लिङ्ग की  
अपेक्षा अग्नि की प्रधानता रही। वाक्यार्थ की सगति ठीक बन  
जावेगी। 'तेन्द्री' का अर्थ है इन्द्र सम्बन्धी। परन्तु गाहपत्य में आग्नि  
का देवत्व है। अतः इन्द्र पद का अर्थ भी अग्नि ही होगा। जिन्हीं  
दोनों धातु से इन्द्र शब्द बना है। जिसका अर्थ है जलाने वा दोष  
करने वाला अग्नि। अतः 'तेन्द्रया' का अर्थ होगा 'आग्नेय्या'। पूरा  
वाक्य होगा 'आग्नेय्या गाहपत्यमुपनिष्ठते'।

२. लिङ्ग—वसिष्ठेव सदन दाधि। यथा पर कृश का अर्थ लिङ्ग  
वचन से ज्ञात है। यथा पर लिङ्ग की प्रधानता है जब कि क्रम के  
अनुसार यथा पर कृश विछाने और पुरोडाश का प्रकरण है, परन्तु  
'स्थान' से सदन 'कणामि' इस पुरोडाश वाक्य में भी लिङ्ग 'सदन-  
कणामि' कृश विछाने का ही समर्थन कर रहा है। यथा लिङ्ग ने  
प्रकरण का बाध कर दिया है। १-अग्निषोमाविद हविरजुषेताम्  
अवीवक्षताम् मही ज्यायो कानाम्। २-इन्द्राग्नी इद हविरजुषेताम्  
मही ज्यायो कानाम्। नै० शा० ३. ५. १०-३॥ यथा पर वाक्य बली  
है अतः मन्त्रों एक को पूर्णमास में और मन्त्रों दो को दश उष्टि में  
विनियुक्त करना चाहिए। यदि प्रकरण को प्रधानता दी जावे तो  
दोनों वाक्यों को मिला कर पढ़ना पड़े और इस प्रकार पूर्णमास

दृष्टि में 'अग्निषोमाविद हविरजुषेताम् मही ज्यायो कानाम् अवीवक्ष-  
ताम् मही ज्यायो कानाम्—यथा पर इन्द्राग्नी' छोड़ दिया जावे  
क्योंकि इन्द्राग्नी पूर्णमासों का देवता नहीं है।

दश उष्टि में—इन्द्राग्नी इद हविरजुषेताम् अवीवक्षताम् मही  
ज्यायो कानाम्, अवीवक्षताम् मही ज्यायो कानाम्—यथा पर अग्नि-  
षोमो छोड़ दिया जावे क्योंकि दश उष्टि के देवता अग्निषोमो नहीं है।  
अतः यथा वाक्य के बली होने में दोनों वाक्यों को मिलाया नहीं गया।

३. वाक्य का उदाहरण है 'अग्नेय्या कणामि'। परन्तु जब इन  
तीनों बलवानों का अभाव हो तो क्रम से जानना चाहिए।

४. प्रकरण का उदाहरण है 'समिधो यजति, तनूपातं यजति,  
इहो यजति यजियंजति, स्वाहाकार यजति' (नै० शाखा २। ६. १। १)  
ये वाक्य दशगुणमास के प्रकरण में दिये हैं अतः इनका विनियोग  
बड़ी समझना चाहिए। इनका ज्योतिष्टोम या अग्निष्टोम में सम्बन्ध  
नहीं है।

५. स्थान अर्थात् क्रम का उदाहरण इस प्रकार है—त्रैमे एक  
स्थान पर आग्नेय, उपायुयाज और अग्निषोमोय का एक क्रम से  
उत्प्रेष्य है। इसी क्रम से तीन मन्त्र भी हैं। पहला मन्त्र है अग्नेरहे  
देवगज्या०, दूसरा मन्त्र है—दधिर्नामामि० और तीसरा मन्त्र है—  
अग्निषोमायवोरहम्॥ नै० शाखा १। ६। १। ६. श्री० १। ६। २। ४॥  
इसलिये क्रमानुसार दधिर्नामामि०—यह मन्त्र उपायुयाज में पढ़ना  
होगा।

६. आग्नेया अथवा नाम का उदाहरण यही है कि जिस क्रम को  
आवश्यक कहा गया है उसको अवश्य ही करना होगा। इस प्रकार  
इनमें वाद वालों की अपेक्षा पूर्ण वाले बली हैं। ये बलवन्त व्यापक  
नियम हैं जो अर्थ की सगति लगाने में सहायक हैं।

#### ५—यजमान के कर्त्तव्य आदि

यजमान के कर्त्तव्य पर भी पर्याप्त विचार होना चाहिए  
किया गया है।

१—दधिना प्रदान कर ऋत्विजों की सेवाओं का क्रय करना।  
जैसे ज्योतिष्टोम में १००० मुद्रा देना अथवा दशगुणमास में अग्नि-  
होम अर्थात् पके चावल देना।



परन्तु जहा विशेष विधान है वहा यह दक्षिणा हमरे भी दे सकते हैं। **उत्तरायण**—य उत्तरायण नाम पञ्चम मास में तीन वरान् दद्यात् के अर्थमा १।३.३०। अर्थात् जो इस ईश को रखे वह तीन गाय दान में दे। वहा यह ईश रखने वाला और दक्षिणा देने वाला यजमान से अन्त है।

२—उत्तरायण के मन्त्रस्थ में जो केस और दाढ़ी मराने दोन धोने साधन रखने और स्नान करने का विधान है वह यजमान को करना है।

३—दिन में दो बार न खाये नान बार न खाये—यह कार्य भी यजमान का ही है।

४—द्वेय रात में नान पानी और नान वस्त्र पहनने का तथा उत्तरायण में मरण की भांति पहनने का विधान मन्त्र कृत्रियों के लिये है।

५—जातिशोभ—यदि कामयेत यजमान उत्ति नीचे सही मिलना। जो कि यजमान की उत्तमा मन्त्र का नीचे ही आरचना यजमान का काम है। परन्तु जहा विशेष नाम दिया हो वहा अन्य भी कामना कर सकते हैं। जैसे उदगाथा—मन वा व काम कामयेत तमागावति अन्तर उदगाथा अन्तर निग या यजमान के लिये जो कामना करना चाहें सका गया करे। वहा यह काम उदगाथा को करना है—यजमान का ही।

—जातिशो अन्ते मि अन्तमे दोन वस्त्रावा अन्ते मि वस्त्रो मे दोन वस्त्र मन्त्र यजमान के लिये कहें। यह पञ्च स्थान में दूर होने लगे भी न पहना कर सकता है क्योंकि लिखा है 'यह पञ्च मन्त्र वस्त्र मन्त्र नाम्ने उदगाथा अन्तम् यह अन्त रहा है और मैं यहा हूँ। मैं यजमान से पहना करता हूँ।

यदि कोई मन्त्र दो बार दिया हो तो यजमान भी पड़े और कार्य भी। जैसे पचाना वा पाचाना यन्वा धपाय गृह्णामि तं० अन्ता १।३.३०। इस मन्त्र को पढ़कर उदगाथा में आगत निग जाना है। इस मन्त्र धपाय के पहरण में भी दिया है और यजमान के पहरण में भी अन्त दाना का ही पहना होगा। इस प्रकार वाक्य मा प्रसवेन० तं० अन्ता १।३.३२१। भी दोनों को पढ़ना होगा।

३—वाजपेय यज के मन्त्रस्थ में यह आदेश है। कर्त्तव्य यजमान वाचयति उत्तिनीय यजमान वाचयति अर्थात् कर्त्तव्य मन्त्र को यजमान में पढ़ावे और उत्तिनीय मन्त्र ही यजमान में पढ़ावे। ये दोनों मन्त्र यजमान में ही पढ़वाने चाहिये।

४—दर्शपौर्णमास के यजमान काण्ड में जो बारह द्रव्य या जोड़ दिये गए हैं वह अश्वयु को करने लगे। उन द्रव्यों का वर्णन तैत्तिरीय शाखा १।३।३-४ में इस प्रकार दिया है :—

अ—वस्त्र के को (जहा दान आदि का प्रसंग हो) सोने और कपटी को आग पर रखे।

आ—अनाज का छुर और मियवट्टे को जम्हा में साफ कर।

इ—आटे को गंध और कपडों का आग पर रखे।

ई—पूरा गंध पकावे और पौ विचलावे।

उ—मन्त्रयज्ञ को लाव और गहन करे तथा वेदी का स्पर्श करे।

ऊ—यजमान पानी की कमर में रखी बांधे और प्रोक्षणीयव तथा प्राश्य रहे।

५—जातिशोभ नामक प्रवृत्ति की एक विवर्ति दृष्टि है जिसका नाम कृत्तवाविनामयन है। इसमें जहा ही अश्वयु का काम करना है। अश्वयु अदम्य नहीं होता है। कृत्तवाविनामयन में एक मन्त्र पढ़ा जाता है जिसे करण मन्त्र कहते हैं। यह मन्त्र है—'परिशीरमि'। जातिशोभ में इस मन्त्र का पढ़ना अश्वयु का काम है। परन्तु कृत्तवाविनामयन में यह कार्य होता वा हो करना चाहिये। इसी प्रकार अश्वयु का कार्य है कि वह आश्वयं वरुं कम करने के लिये आश्वीय का आजा देवे। अश्वयुं आजा देना है कि प्रोक्षणी लाओ, समिधाव और हुजय रखा सखा का मीजा। यह आजायें तो दुसरा ही पालेगा अन्त आश्वीय को यौण रूप में अश्वयुं भी कहा जावेगा क्योंकि वही आश्वयं वरुं कम का पालन कर रहा है।

यद्यपि करण मन्त्र का पढ़ने वाला अश्वयुं है तथापि यज का फल मिलना है यजमान को क्योंकि उसी के लिये के लिये यज 'करा' जाता है। इसलिए यद्यपि 'ममाने वस्त्रा आदि मन्त्र अश्वयुं बोलता है, परन्तु यह प्रार्थना वह यजमान के प्रतिनिधि के रूप में करता है। क्योंकि स्पष्ट कहा है कि 'या वं काचन अश्विज आश्वयं-

मन्त्रमन्त्रे यजमानस्यैव मा अर्थात् जो कुछ भी आदेश आधिकारिक माना है वह यजमान की ही होती है। परन्तु कुछ ऐसी बात भी है जिसका फल आचर्यो वा अध्वर्यु का भी मिलना है।

एक दूसरा उदाहरण है। दक्षिणद्विविधान (गादी) के नीचे चार छिद्र होते हैं। ऊपर खन और नीचे मिले हुए। अध्वर्यु उनमें हाथ डालकर पूछता है कि उनमें क्या है? यजमान उत्तर देता है—मद।

आचर्य प्रत्यन्तर में कहता है 'हम दोनों का भद्र हो'। यह आशीर्वाद अध्वर्यु के लिए भी है।

१६—स्वयं की कामना करने वाला यज करे—इस कथन से यह समझना चाहिए कि यजमान में पहला गुण स्वयं की कामना का होना चाहिए।

१७—यज का अधिकार केवल मनुष्य की ही है। पशु पक्षी आदि की नहीं। जो मनुष्य योग्यता रखता है उसकी वही यज कर सकता है। मनुष्य में नर और नारी दोनों सम्मिलित हैं। पति पत्नी दोनों का मिलकर यज करने का अधिकार है। सम्प्राधान का अधिकार पकेले पति को है। पति और पत्नी दोनों ही यज के साभोदार हैं परन्तु पति प्रमुख है और पत्नी स्त्री है अतः उनके कर्तव्य बँटे हुए हैं। आशीर्वाद और ब्रह्मचर्य आदि कर्म दोनों को करने चाहिए। धर्म्य वा धी का निरीक्षण पत्नी का ही करना चाहिए। मिर मड़ाने आदि कार्यों को पति करेगा। द्रव्यहीन को यज करने का अधिकार है। अज्ञानी भी यज करने का अधिकारी है, परन्तु ऐसे अज्ञ से विशेष न हो कि यज करने में सर्वथा अशक्य हो। रक्षक और स्थपति को भी यज करने का अधिकार है।

१८ सत्र में १७ से कम और २४ से अधिक यजमान नहीं होते। ये सब मिलकर यज करते हैं। हर एक को पूरे यज का फल मिलता है। क्योंकि यदि पचस्य अर्थात् एक हाथी की देखते हैं तो प्रत्येक पुंगु ही हाथी देखता है। दशयाग, पूर्णमास, ज्यातिष्टोमयाग आदि में यजमान एक ही होता है।

१९ जो काष्ठ याग आरम्भ किये जाय उनको समाप्ति तक जारी रखना चाहिए। इसे बीच में छोड़ने पर प्रायश्चित्त लगता है।

यजमान आदि को कनज, लक्ष्मण, आदि खाने का शास्त्र में निषेध है। उन से हानि होता है। निषिद्ध कर्मों का अनुष्ठान अनिष्ट है।

१७—वेदिक कर्मों की कर्तव्यता उपनयन के उपरान्त लागू होती है। जैसे गुरु के पीछे चलना, गुरु की प्रशंसा करना। वृद्ध पुरुष के सामने खड़ा हो तो खड़ा होना चाहिए। उसका आदर करना चाहिए। ये सब कर्म अनित अवसरों पर करना चाहिए।

१८—अग्निहोत्र वा दर्शपौर्णमास आदि याग जिनके वाक्पञ्चोदय करने का विधान है अपने अपने समय पर ही किए जाने चाहिए। निरन्तर लगातार नहीं।

१९—यदि यज करने हुए पात्र टूट जाय या द्रव्य फैल जाय तो प्रायश्चित्त ही प्राप्तिवादी जाती है। जब जब ऐसी दुर्घटना होगी तब तब आर्ति दी जावेगी।

२०—जायमानों के वे ब्राह्मणस्त्रिभिर्ह्वयान् जायते ब्रह्मचर्येण अग्निभ्यः यजन दत्तभ्यः प्रजया पितृभ्यः (नं० शा० ६।३।१०। ५) जब ब्राह्मण उत्पन्न होता है तो तीन ऋण उस पर होते हैं। ऋषि ऋण ब्रह्मचर्य रखकर चुकाया जाना है। देव ऋण यज करके और पितृ ऋण मन्तान उत्पन्न करके चुकाना होता है। यज्ञ पर ये ऋण न केवल ब्राह्मण के लिए ही हैं अपितु क्षत्रिय और वैश्य के लिए भी हैं। यद्यपि इस शाखा वचन में ब्राह्मण पद का प्रयोग है परन्तु अन्य श्रुतियों के आधार पर यह क्षत्रियों आदि पर भी लागू होता है।

न्यायदर्शन में भी इस पर विचार किया गया है। वही प्रश्न यह उठाया गया है कि 'जायमानः' पद 'उत्पन्न होते हुए' अर्थ को देता है। उत्पन्न होने ही बालक अशक्त और अयोग्य है। फिर उसे इस कर्म का अधिकार देना अशक्त और अयोग्य को कर्माधिकार देना है जो उचित नहीं। भाष्यकार वान्वायन कहते हैं कि इन प्रमाणों में शब्दों की योगिकी समाख्या माननी चाहिए। अर्थात् इनका योगिक अर्थ लेना चाहिए। अतः जायमानः का अर्थ होगा गृहस्थ मपचमानः अर्थात् गृहस्थ होता हुआ। इसी प्रकार ब्राह्मण पद भी योगिक ही लेना चाहिए। अन्यथा अन्य वर्णों को यह अधिकार और ऋण लागू नहीं होंगे। अतः यज्ञ पर ब्राह्मण पद का अर्थ वेदाधिकारी द्विव अथवा मनुष्य लेना चाहिए।





ग्यारह ग्यारह बार पढ़ना चाहिए ? इस प्रकार तो ५५ हो जावे।  
यह पर हम विचार में सिद्धान्त यह है कि पांच प्रयाज पढ़ा फिर पांच  
और यही जब दस हो जावे तो अन्त का प्रयाज पढ़कर ग्यारह की  
संख्या पूर्ण कर दो। ग्यारह अनुयाजों की पूर्ति भी ऐसे ही करो।  
इसी प्रकार चारुर्मास्य के ६ प्रयाजों और ६ अनुयाजों की पूर्ति होनी  
चाहिए।

—जब किसी मंत्रों का दहराकर मंत्रा पूर्ति की जानी है तो  
हम ध्वनि या दहराने की दो रीतियां हैं। एक का नाम है दण्ड-  
कलितवन आवाज। यहा दण्ड का अर्थ है पैमाना (गज आदि)। जब  
गज से जमीन नापने है तो पूरा गज भर पहने नाप कर फिर उही  
गज का अन्त जाना है वहा से दूसरे गज का आरम्भ करते हैं। ऊपर  
प्रयाजों की ग्यारह मंत्रा करने में दण्डकलितवन आवाज की गई।  
दूसरी रीति यह है स्वस्थानविबुद्धि। इसके अनुसार पहले एक मंत्र  
को दहरा लिया जाता है। फिर दूसरे मंत्र को दहरा लिया जाता है।  
अग्निवेदी में छ उपमद बनाए गए हैं। प्राति याग में ३ उपमद  
बनाए गए हैं। प्रश्न यह है कि इन तीनों को ६ कैसे किया जाय।  
सिद्धान्त यह है कि यही दण्डकलित विधि न लगाई जावे। यही  
पर स्वस्थानविबुद्धि रीति लगाई जावे। क्योंकि इन उपमदों को  
अनुपूर्वी (पूर्वार्त्तभाव यम) नियत है। दण्डकलितवन विधि लगाने  
पर तो तीसरे उपमद के पीछे पहला उपमद घा जाएगा। यह अनु-  
चित होगा।

३—दशपौर्णमास में सामिधेनी ऋचाय पढ़नी होती हैं। ये  
सामिधेनी ऋचायें ग्यारह हैं। परन्तु व्यवहार में इनकी समस्यायें  
भिन्न हैं। जैसे शतपथ ब्राह्मण (१. ३. ५. ७) में १५,  
शतपथ १. ३. ५. १० में और ३. १. ३. ६ में १७; तथा ३. ३.  
५. १७ में २१ १५ की संख्या पूरी करने के लिये पहली और अन्त  
वाली सामिधेनी ऋचाओं को तीन बार पढ़ते हैं। २१ संख्या की पूर्ति  
के लिए ऋग्वेद १० व मण्डल की कुछ ऋचायें जोड़ दी जाती हैं। ये  
अन्त में जाती जाती हैं परन्तु दो ऋचाओं को जिनका नाम धार्या  
है सामिधमानवती ऋचा (ऋग्वेद ५. २. ८. ५) के बीच में पढ़ना  
चाहिए। धार्या दो ऋचायें हैं। ऋग्वेद मण्डल ३, सूक्त २७ की  
पांचवीं और सप्तमी। यह पृथुपात्रा शब्द वाली है और उष्णिक् और  
ककुप् छन्द की हैं।

४—प्राति याग में वशिष्ठवर्मान मंत्र २ होने हैं अर्थात् तीन वच।  
पहले वच का नाम है स्तोत्रिय दूसरे का अनुष्टुप और तीसरे का  
नाम पर्याम है। वशिष्ठवर्मान के विकार में अग्निर्विष्णु मंत्र जोड़कर  
संख्या पूरी की जाती है। २१ करने ही तो चार वच या १० मंत्र  
जोड़ने २३ करने ही तो ६ वच अर्थात् १० मंत्र, तीसरे वच को  
ती ८ वच अर्थात् २८ मंत्र। द्वादशाह में दो वच या स्तोत्रिय और  
अनुष्टुप के फिर कुछ वच होने हैं जिनका नाम वषणवन्त है। इनका  
अन्तिम वच पर्याम होता है। द्वादशाह में जो मंत्र जोड़ गए वह  
पर्याम के पूर्व जोड़ गए। परन्तु वशिष्ठवर्मान में पर्याम के पीछे  
बढ़ाया जावेगा।

५—पढ़ने दो परमान स्तोत्रा में कुछ साममंत्र जोड़ने होते हैं।  
उनको गायत्री, यही ती, अनुष्टुप के बीच में जोड़ना चाहिए।

(क) इसी प्रकार कुछ दण्डकावा का वर्णन है। वे हैं त्रिषिणी  
दण्डका, वशिष्णी दण्डका और अनुष्टुप दण्डका। दण्डकाय अग्निवेदी के भाग  
हैं। त्रिषिणी, वशिष्णी आदि इत मध्यमविधि अर्थात् बीच के परत  
में रखनी चाहिए।

(ख) ये त्रिषिणी, वशिष्णी इत लोकपूण इतों के पूर्व रखी  
जानी चाहिए। लोक का अर्थ है शिवत इत आ स्थान। पूण का अर्थ है  
भरने वाला। लोकपूण इतों में इन छिद्रों को भरा जाता है। जो इत  
जिनने में रह जाते हैं।

६—गवामयन अथवा सव्य-सर-याग में कई पत्नीक होने हैं। इन  
पत्नीकों को बार बार दहराया जाता है। दहराने की दो विधियां  
इसी प्रकार में कही गई हैं और वे हैं दण्डकलितवन विधि और स्व-  
स्थान-विबुद्धि। यह कम दहराने वा अभ्यास का है। मोटे तौर पर इसे  
इस प्रकार समझा जा सकता है। जैसे कोई कहे कि 'जय जगदीश  
हरं' को तीन बार कहो।

दण्डकलितवन अभ्यास तो यह होगा—जय जगदीश हरे, जय  
जगदीश हरे, जय जगदीश हरे। स्वस्थानविबुद्धि के अनुसार यह  
प्रकार बनेगा—जय, जय, जय जगदीश, जगदीश जगदीश हरे,  
हरे, हरे। सिद्धान्त यह है कि गवामयन में स्वस्थान विबुद्धि का नियम  
लागू होगा। क्योंकि दिनों की संख्या प्रत्यक्ष नहीं।

गवामयन के दिनों का हिसाब इस प्रकार किया जाता है। इसमें



## एकोनविंश प्रकरण

### कुछ ब्रह्मपारायण यज्ञ के विषय में

उत्तर वाद-विवाद चलने के घन-तर और गम्भीरतापूर्वक विचार करने के उपरान्त मार्बेदेशिक सभा ने उसकी धर्माय सभा के निष्पत्ति-नुसार ब्रह्मपारायण यज्ञ के करने का प्रचलन चलाया। धर्माय सभा ने इसकी विधि भी बनाई और प्रकाशित की। वह विधि बहुत ही उत्तम और शास्त्रीय दृष्टि पर बनाई गई है। फिर भी कभी-कभी अपनी बात को छोड़े रखने के लिए कुछ ऐसे व्यक्ति जिन्हें न यज्ञ सम्बन्धी शास्त्रों का परिज्ञान है और न वेद आदि का ही कुछ मालूम है अपने मनमाने चलाये यज्ञ का खण्डित होना देख कर ब्रह्मपारायण पर कटाक्ष करते हैं। ऐसे कटाक्षों से उनकी घनभिज्ञता ही प्रकट होती है, ब्रह्मपारायण का कुछ भी बिगड़ना नहीं।

यज्ञ समय पूर्व मैने और श्री पं. धर्मदेव जी विश्वामित्र ने इस विषय पर एक पुस्तक ही लिखी थी जो सर्वत्र प्रसारित हो गई थी। उसी आधार पर धर्माय सभा ने इसके विषय में निर्णय लिया था। यह ब्रह्मपारायण यज्ञ बहुत बड़ पैमाने पर श्री सेंट प्रतापसिंह शूर जी बलभद्राम ने बम्बई में दो बार कराया था। दोनों ही यज्ञों के घनमरा पर अभूतपूर्व दाय दिवाई पहना था। भारत में ऐसे यज्ञ कहीं घन-य नहीं हुए, ये बहुत सफल ढंग पर सम्पादित हुए। इसमें भारत के लगभग सभी वैदिक विद्वान् उपस्थित थे।

मैंने वैदिक ज्योतिष पुस्तक में इस यज्ञ का बहुत ही विस्तार में उल्लेख किया है। इसको बड़ा पर ही देखना चाहिए। यहा पर कुछ बातें सा विचार किया जाना है। चारों वेदों के प्रत्येक मन्त्र में यज्ञ मन्त्र का विधान है। सायमसमाज के सम्मेलनों पर देश-दशान्त में सर्वत्र यह यज्ञ होना रहा है। इस विषय में कवि ज्योतिष का ही पैमाना है कि ये प्रत्येक वेदमन्त्र से यज्ञ करने का विधान बना है। वेद-ज्योतिष १२० मन्त्र में आये हुए यज्ञ

यज्ञ यज्ञ पर विद्यते है कि वेद के प्रत्येक मन्त्र में यज्ञ शब्द है। वैदिक ज्योतिष में मैने ऋग्वेद और सामयान गृह्यसूत्र के प्रमाण से ब्रह्मपारायण यज्ञ की सिद्धि की है।

कई लोग ऐसा कहते हैं कि पूरे यज्ञवेद का पारायण करने समय ३२७ प्रश्नार्थ के मन्त्रों की आहुति नहीं दी जानी चाहिए। क्योंकि वे मन्त्र ग्रन्थेष्टि में पाये जाते हैं। ऐसे लोग हैं जिन्हें शास्त्र का कोई भी परिज्ञान नहीं है। परन्तु वनते हैं यदि भना तब यज्ञवेद के ३२७ प्रश्नार्थों का यज्ञ किया गया और उसमें सारे ही संस्कार आ गये तो ३२७ ग्रन्थेष्टि के मन्त्र भी आ गये तो क्या शक्ति। क्या गभातनादि के मन्त्रों में आहुति देने पर उन संस्कारों का करना सिद्ध हो गया।

यदि ऐसा नहीं तो फिर ग्रन्थेष्टि के ३२७ प्रश्नार्थ के मन्त्रों में यज्ञ करने पर ग्रन्थेष्टि की सिद्धि किम प्रकार हो जावेगी। वैदिक ज्योतिष में मैने इसका समाधान विस्तार में किया है। यज्ञ में मन्त्र और ईद्वर देवता होते हैं। ब्रह्मपारायण यज्ञ में तो यज्ञ बहुत स्पष्ट हो है कि उसमें मन्त्र ही देवता है। मन्त्र देवता होने से वेद मन्त्रों में जो जान है वह ग्रहण होगा। जहा सब संस्कारों और विषयों का जान होता है वहा ग्रन्थेष्टि मन्त्रों में जो जान है वह भी प्राप्त होना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मपारायण यज्ञ की शास्त्रायता और समो-चीनता सर्वथा सिद्ध है।

सौर्यायन गृह्यसूत्र ४।१।६५ में यह वनलाया गया है कि चावल, मक्कन और धान को दही में मिलाकर उससे बड़ की प्रत्येक ऋचा से आहुति देवे। स्वाहाकार यज्ञ भी इसी प्रकार का है और इसी का नाम है। वेदमन्त्रों के इस यज्ञ में किये जाने वाले उच्चारण में नियमा आदि का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। जैसा पूर्व प्रकरणा में नियम दिखाया गया है उसका परिपालन पणनया होना चाहिए। सोम आदि लगाने का विधान भी जैसा दिखाया गया है जैसा पालन करना चाहिए।



## विंश प्रकरण

### कुसुम मनःप्रभूत प्रशास्त्रीय कर्मकाण्ड

प्रायश्चित्तमात्र वृद्धिवादी समाज है। यह प्रसिद्ध है और पुराणों पर, स्मृति भी तेसी ही रही है। उधर दूसरी तरफ देखा गया है कि वा लोग अपने को पौराणिक कहते हैं उनमें और दूसरे धर्मवाला में प्रत्यक्ष विश्वास अधिक है। इनके कर्मकाण्ड का कोई मिर पेंर नहीं। कभी नृत्तमोक्ष समायण का यज्ञ होता है तो कभी शतकुण्डो और मरुत, कुण्डो यज्ञ होते हैं।

हनुमान चालीसा में भी इतने होते देखा गया है। मन्वन्तरायण की कथा और दुर्गापाठ आदि का भी यही स्थिति है। इन पौराणिकों के यहाँ सब कुछ वेद है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। इनके यहाँ कर्मों का कोई मूल्य नहीं है। ये गायत्री के नाम पर भी एक अन्धविश्वास उत्पन्न करने हैं। तथा ऐसा करने में ही वे धर्म समान धर्म समझते हैं। वही वृद्धि का कोई स्थान नहीं।

परन्तु पौराणिक जगत के लिए तो कुछ कहने का आवश्यकता नहीं। उसका अर्थ ही अन्धविश्वास और अनगंलता है। जिस धर्म विश्वास में परमात्मा का परतार स्वीकार किया जाता है उसका स्वर इसी में समझ सेना ठीक होगा। पुराणों के अनगंल प्रचार का भी जो धर्म की मजा है उसमें और क्या घाशा की जा सकता है। परन्तु वर्तमान समय में प्रायश्चित्तमात्र का स्वर भी पर्वान्न निरगण है। उसमें भी पौराणिक लोग घुस गये हैं और वे प्रायश्चित्तमात्र के नाम पर पौराणिक बातों का प्रचार करते हैं।

जिस प्रकार पौराणिक लोग बिना मिर पेंर का कर्मकाण्ड चलाते हैं वैसे ही वे लोग भी चलते हैं और बोलते हैं कि यह वेद का कर्मकाण्ड है और मरुति दयानन्द द्वारा प्रतिपादित है। यदि पूरा यह कि कही पर ऐसा प्रतिपादित है तो उत्तर केवल यह देने कि यह इनको उस सब घाम छीनी है हमें वेदशास्त्र का ज्ञान नहीं है।

इस बात में ही इनकी वेद शास्त्र और सिद्धान्त की योग्यता का ज्ञान चल जाता है। यदि इनकी वेद शास्त्र का ज्ञान होना तो ऐसा उत्तर नहीं देने। वेद शास्त्र केवल पतञ्जल धर्मों और रमण पर निर्भर है और मंत्र शक्ति में नहीं घुसा।

मरुति दयानन्द के सिद्धान्तों का इस वर्तमान योग्यता और योग्यता जो मन्त्री समझा जा सकता है। उसमें समझने में दयानन्द और रमण का आवश्यकता है। प्रायश्चित्तमात्र में पारिणाम का सब प्रभाव होने लगा है। सभी धर्मग्रन्थों में उनके जना और गहन धर्म समान है। कुछ सिद्धान्तों में और सिद्धान्तानभिज्ञ पदार्थानुपेक्षा और विज्ञान करने लगें हैं। ये जेना कुछ भी कह सकते हैं और कहते हैं और किसी भी चीज पर व्यवस्था दे सकते हैं।

प्रायश्चित्तमात्र में पुराणों की योग्य पुराणियों का प्रभाव है। जो पुरोहित नामधारी हैं भी वे न कर्मकाण्ड की शिक्षा प्राप्त किये हैं और न प्रायश्चित्त दयानन्द के सिद्धान्तों से प्रभाव कर्मकाण्ड को ही जानते हैं। प्रसंगी नुक मारते हैं और पारिणामों की तरह कर्मकाण्ड को विनाश करने हैं। इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

प्रायश्चित्तमात्र के मन्त्रकारी और इतने में पुरोहित के बाद जेना पारिणाम शतधारमों मंत्र का बोलकर बचे हुए भी को करने का विधान नहीं है। परन्तु कई प्रायश्चित्तमात्रों में प्रायश्चित्त में यह प्रचलित है। यह कैसे प्रचलित हुआ ? प्रायश्चित्तमात्रों में जो उपदेशक कार्य करते थे उनमें कुछ पौराणिकता में प्रभावित थे वे अधकचरे थे वे मरुति की भी मन्त्रियाँ निकालने में लगे रहते थे जबकि यह उनको बुद्धि का बाध था। मरुति की कोई मन्त्रियाँ नहीं हैं वे स्वयं ही गलत थे। प्रायश्चित्तमात्र में पुराणों में ही कुछ पौराणिक प्रायश्चित्त और वे प्रच्छन्न रूप में अपना कार्य करने रहे हैं।

उन्होंने यह कृत्य जाड़ दिया और बराबर सभी तक कई समाजों और आचार्यों ने इस प्रचार किया है। मरुति यह यज्ञवेद का मन्त्र है। इसका विनियोग भी पुराणों में है। परन्तु यह प्रचार देविक यज्ञों और मन्त्रकारी मन्त्रों के प्रचार का विधान नहीं है।

कुछ उपदेशक स्वभाव से हैं और उन्होंने इस प्रकार का प्रचार रज में किया। स्वभाव क्या है ? इसका तात्पर्य क्या है ? यह अज्ञानि कहा दी जाती है। यदि जाना का विना ज्ञान किये उसका



संस्कृत में गायत्री मंत्र का प्रयोग करनेवाली जो ने सर्ववेदशास्त्रों में  
 ज्ञान होने की वरिष्ठता से नवनी जाती जो कुछ दिन नमस्कर  
 करने का रहै। उन्होंने दत्तारम में भी एक बार ऐसा ही किया।  
 उसमें एक बार सर्वे नाम गायत्री मन्त्रा की आवाज़ों की और कुछ  
 वीर-जगन्नाथ और मन्त्रों की भी वीर उस मन्त्रोत्तम में गये  
 कही दत्तारम का धर्मगुरु माना जा का मिल गया था। न भी  
 मिला है अब भी देखने की जाना है। और कर अपने पत्र में कहा  
 'क' उपायों के विद्वानों के ऊपर धर्ममार्ग की धार। वेद के  
 विषय में जीवने ऐसे आचार्य जी ने कमान कर दिया और उनके वर-  
 ज्ञान पर प्रतिमूर्तनी मुग्ध थी। बाह बाह मच गयी। परन्तु उस  
 में जिस विषय पर आचार्य जी का भाषण था और जो कुछ उन्होंने  
 कहा था जब उसी बातवादी के भाषण में उसी पत्र में पढ़ा गया था  
 पता चला कि यदि मचमच कोई विद्वान आचार्य जी के उस भाषण  
 का पढ़ना तो उसका शिर लज्जा में नत हो जावेगा। धर्म  
 ममान और दत्तारम की रीतों पर धार जमनी तो दूर रहा  
 उसकी मूर्तता की सर्वत्र प्रशंसा अवश्य होगी।

आचार्य जी ने भाषण में क्या कहा था जिसकी सम्पादक और  
 उस मन्त्रा के कर्णधार कह जाने वाले ने गर्व के साथ छापा था। वह  
 भाषण यह था—

गायत्रीमन्त्र ने वेदभाष्य किया परन्तु उन्होंने उस नहीं समझा  
 वेद की केवल अर्थ दत्तारम ने समझा। उदाहरणार्थ 'सुवेद के भाष्य  
 में सुवेद के इस मन्त्र 'आजामसी' 'गोविन्द' 'गुरु' 'गण' 'म' की व्याख्या में  
 गायत्रीमन्त्र ने अज्ञा का प्रथम वरणी और अज्ञ का प्रथम वरणी किया  
 था। मन्त्र में अपने भाष्य में इसका अर्थ न पढ़ा होने वाली प्रकृति  
 और अर्थ अर्थ उन मन्त्रों के लिये। आदि आदि।

उस भाषण पर कैंदिक रीतों ने बाह बाह प्रशंसा की जानी  
 क्योंकि इसमें सर्वत्र अतीवज्ञानी की प्रकट हो रही है। अज्ञानिकों  
 मन्त्र सुवेद में ही नहीं। यदि भी उस गान ग्रन्थ में सुवेद में नहीं  
 किया गया है। जब यह सुवेद का मन्त्र ही नहीं। किन्तु मन्त्रों  
 कायने उस मन्त्र का अर्थ अज्ञान में यह अर्थ कहा और मन्त्र दत्तारम  
 ने यह अर्थ कहा—यह अर्थ का कोई नुक ही नहीं होगा। यह है  
 निमित्त।

जैसे लोग नये मन्त्र कहाने मिलते हैं जो उनका अर्थना मन पकर  
 जाता है। ये कहते हैं मन्त्र करकर ये मन्त्रों में सुनाया जा  
 शास्त्रों प्राप्ति करते हैं। इस प्रकार के मन्त्र भी न कहते हैं।

ये मन्त्र भी प्रचारित करने हैं कि गायत्री मन्त्र में एक गुरु की शक्ति  
 बोलते हैं और गुरु का गुरु मन्त्र ही समान हो गया।

उनका यह भी कथन है कि मन्त्रों के प्रभाव में बिना वेदों के मन्त्र  
 की प्रधानता नहीं होगी है। क्योंकि ये बिना विज्ञानी के मन्त्र  
 मन्त्रों की भी नहीं बना करने। कुछ ना कहा न कहते हैं कि मन्त्र  
 का अर्थ मन्त्र में पाना वरुं सम जाना है। उनकी जीवना का भगवान्  
 ही जाने। अर्थ के मन्त्र में मन्त्र पर पढ़ाती पर एक पढ़ कर मन्त्रों  
 तो दूरी जाती है। मन्त्रों पर मन्त्रों के बाजे भी राख दिये जाते हैं।  
 परन्तु अर्थ मन्त्र में पानी जमकर बर्फ बन जाता है यह विषय  
 ही बात है। इस प्रकार की अनेक गल्पें चलती हैं।

### गायत्रीमहायज्ञ नामक कल्पित यज्ञ

गायत्री मन्त्र का अर्थ की दृष्टि में बहुत बड़ा महत्व दिया जा रहा  
 है। इसमें भगवान् में प्रार्थना की गई है कि वह हमारी वृद्धि का  
 उत्तम उर्म की ओर प्रेरित करे। यह सब हो सकता है—इसका भी  
 मन्त्र इसी मन्त्र में बना दिया गया है। यह यह है कि ऐसा न कहना  
 जब हम उसके वर्णों गुरु की धारण कर। इस प्रसंग में हम पर  
 विचार किया जाता है। गायत्री में गायत्री छन्द का भी यज्ञ है  
 है और गायत्री नाम में प्रसिद्ध 'उमस्विनर्वरुणम्' आदि मन्त्रों  
 का। गायत्री छन्द का इतना बड़ा महत्व प्राप्त है जवना गायत्री  
 में गायत्री मन्त्र की यह देखने की बात है।

जहां तक गायत्री छन्द की बात है यह तो बहुत ही स्पष्ट है।  
 यदि गायत्री छन्द का इतना बड़ा महत्व दिया जावे तो गायत्री छन्द  
 में बहुत केवल यही मन्त्र नहीं है। और भी अनेक मन्त्र वरुं मन्त्रों  
 छन्द में गुरु हैं। फिर सभी का यह महत्व होना चाहिए। विज्ञान  
 मन्त्रों में प्रसिद्ध गायत्री छन्द है। मन्त्रों दत्तारम ने इस मन्त्र का  
 अपने दत्तारम भाष्य में बार बार प्रयोग किया है। मन्त्र मन्त्रों का  
 शिक्षा भी अनेकी है। इसमें परमेश्वर में प्रार्थना की गई है।  
 वह हमारे दुर्गों की हम से दूर करे और उत्तम गुणों की हमें  
 दृष्टि का दूर होना और सुगुण की प्राप्ति मन्त्र की वरुं है।







यज्ञ का नाम ही भगवत् है यज्ञ का विशेषण महा-  
 मत्ता का प्रयोग महात्म्य के लिए ही पाया जाता है। अन्य किसी  
 यज्ञ में महा नहीं लगता है। यह शब्द पारिभाषिक है पारिभाषिक  
 शब्दों में प्रयोग होकर होता है जहाँ पर उसकी अपनी उप-  
 भाषणा है सब जगत् पर वह नहीं लगाया जा सकता है। श्रीगुरु, ब्रह्मा  
 और सीमादि आदि में वह गये यज्ञों में किसी के भी साथ महा  
 नहीं लगाया जाता है। यज्ञ में भी यह प्रयोग नहीं है। कुछ यज्ञ  
 का नाम ही और जब उनकी आवश्यकता से कामना के अनुसार  
 प्रयोग है वह वही किये जाते हैं। परन्तु कुछ यज्ञ और कर्तव्य में  
 यह वैयक्तिक है और नियम ही उनका करना बलव्य है। पर महायज्ञ  
 वैयक्तिक बलव्य है और प्रतिपाद कर्तव्य है अतः उनके साथ महा  
 शब्द इस भावना के लिये लाया है। दूसरे यज्ञ वैयक्तिक है  
 उनका करना निमित्त पर आधारित है।

एक वर्षा यज्ञ महायज्ञ में अन्य में एक नियम लाया गया कि  
 यह उस विषय का कस-ग भी परिज्ञान नहीं। उन्होंने किया कि  
 महाशब्द तो कही भी लगाया जा सकता है। यह महत्ता ही मानक  
 है, न कि मात्र का परिज्ञान नहीं नहीं घन के कुछ भी मान सकते  
 हैं। यह शब्द के प्रयोग का भी परिज्ञान नहीं। वकाल की मान्यता  
 मान नमस्कर निम्नता वाणिज्य मार्ग केला ही वकालत में शब्द  
 के प्रयोग को है। परन्तु कि भाषा और पत्रा ही या न ही यह में  
 मन्दा मारना। यदि शब्द के प्रयोग का कोई नियम न हो तो  
 व्याकरण आदि शास्त्रों और विद्वानों की आवश्यकता ही नहीं  
 थी। पर एक स्थान पर हर एक शब्द का प्रयोग नहीं होता।

महाशब्द केवल महत्ता का ही गानक नहीं। कही पर निम्नता  
 का भी गानक हो जाता है। महाश्राद्ध, महापात्र, महाजप,  
 महापथ आदि शब्दों में महा विधिति महाशब्द की है। कही भगवान्  
 ही निश करने समय महानिद्रा और यात्रा करने समय महापात्र  
 न कर है। यहाँ पर महा पद भयकर हो बन जाता है। यह कार्य  
 विद्वानों का है। हमें सभी को भाषा मारने की आवश्यकता नहीं।

किसी भी यज्ञ में यह देखना पड़ता है कि वह और है का गुण  
 है। उसकी प्रतीति क्या है और विरति क्या है। उस यज्ञ का महाशब्द  
 जो विधि आदि भी होती है। परन्तु गायत्री यज्ञ की विधि और  
 महाशब्द आदि कुछ भी नहीं।

गायत्री मंत्र की जप आदि का महत्ता के आधार पर हमें सब-  
 कुछ ध्यान महात्म्य रहता हीर नहीं। वेद के सभी मंत्र अपने  
 स्थान और विषय आदि की दृष्टि से महत्ता है। किसी एक मंत्र को  
 महत्तम कहना ही वेदमंत्रों के प्रति अनादर प्रदर्श करता महत्तम  
 पड़ता है। ऐसा ही ही नहीं सकता कि भगवान् के द्वारा प्रदत्त  
 वेदमंत्रों में कोई एक मंत्र महत्तम ही और सबका पुरक ही। यदि  
 वेद का ज्ञान देने वाले भगवान् का भी यह बात स्वीकार होनी कि  
 गायत्री ही सर्वोत्तम है। हमें ज्ञानने, हमें यज्ञ करने और जप  
 करने में सब कुछ मिल सकता है तो वह अन्य मंत्रों का प्रकाश ही  
 क्या करता। यह केवल गायत्री मंत्र का ही प्रकाश करना और मारा  
 वेदमंत्रों ज्ञान ही, जैसा कि हमें समझना मानने है। हमें ही  
 समझा पड़ा है। ऐसा होने से निश्चय के लिए एक नमस्कार होना कि  
 सर्वज्ञ भगवान् ने एक ही गायत्री मंत्र में सब कुछ दे दिया। महाशब्द  
 मंत्र और यह वह पाया में समझने वाले ज्ञान की फिर आवश्यकता  
 ही नहीं थी। और तो और गायत्री में हमें समझने वाले अन्य  
 मन्त्र वाला में निम्नता में आसानी ही जाती कि भगवान् ने एक ही  
 मंत्र में सब कुछ दे दिया। हमें नारायण पोथा की शीघ्र मारने ही। एक  
 छोटे में मंत्र में मारा ज्ञान, कम और उपमाता का विषय था गया।  
 विश्व हमें नरित होकर हमें स्वीकार करना। परन्तु वस्तु-व्यति  
 ऐसी नहीं है।

### फलश्रुति

गायत्री यज्ञ आदि के फल का वर्णन करने लगे हमें पायक  
 यह कहने है कि हमें सब कुछ प्राप्त हो जाता है। यज्ञ नमस्कार  
 वा हमें ऊपर कोई वस्तु नहीं जो हमें प्राप्त न हो। तथा कोई  
 मनःकामना नहीं हो पूर्ण न हो। यदि यह तथ्य है तो फिर यज्ञ आदि  
 अन्य कर्मों के करने की कोई आवश्यकता ही नहीं रह जाती है।  
 सब कुछ गायत्री ही कर देगी। एक प्रदत्त सामने यह खड़ा पड़ा  
 है कि क्या गायत्रीयज्ञ ब्रह्म की प्राप्ति करा देगा? यदि ऐसा ही  
 मके तो योग आदि साधना की फिर की आवश्यकता ही नहीं रह  
 जाती। क्या गायत्री यज्ञ और उसके जप में किया हुआ पात्र भी  
 निवृत्त हो सकता है। यदि हो सकता है तो यह विद्वान् विद्वान् बात  
 है। अन्यथा फिर इन कार्यों के लिए हमें करने की आवश्यकता  
 ही नहीं रह जाती।







लिखा है। यह अधिक आर्हात होने की समय तक ही सकती है जबतक मरिचक है। यदि गायत्री यज्ञ करने का विधान करना महर्षि का अभिप्राय होता तो इसी नाम का यज्ञ चालू करते। पंच महायज्ञ विधि में फिर नाय प्रातः के अग्निहोत्र का ही विधान क्या करते : यही पर यह सुनाराम स्पष्ट है कि महर्षि के इन प्रमाणों से गायत्री यज्ञ आदि का विधान नहीं चलता है। उनका करना सर्वथा मिथ्या-निर्विन्द बात है।

कुछ लोग महर्षि के जीवनचरित्र में निम्नलिखित प्रमाणों का अपने विविध गायत्री यज्ञ की पुष्टि में प्रस्तुत करने हैं। उन पर भी यहाँ पर विचार किया जाता है। वे प्रमाण ये हैं—

१—श्यामिलर महाराज को भागवत सप्ताह के बदले गायत्री पुरश्चरण करने का परामर्श दिया।

२—कर्णवाम में क्षत्रियों को यज्ञोपवीत के लिए पहले प्रायश्चित्त रूप से गायत्री पुरश्चरण कराया जिसमें समाप के छनेक पदित बुलाये गए। कुछ दिनों में यह पूर्ण हुआ।

३—कल्याणदास ने नाना जगन्नाथ जी के यज्ञोपवीत पर ११ पहियों में ११ दिन जप गायत्री का कराया और यज्ञ हुआ।

४—मेरठ में जपाराधन का वर्णन करते हुये श्री स्वामी जी महाराज ने कहा था—“वट्टीनारायण से रहकर मैंने भगवती गायत्री का जपानुष्ठान किया था।”

५—दिल्ली में ८ अक्टूबर १८७८ में जब श्री स्वामी जी महाराज आये थे तो उसके वर्णन में लिखा है—

“स्वामी जी यज्ञों में और यज्ञोपवीतादि सम्कारों में गायत्री पुरश्चरण कराया करते थे। बहुत से विद्वान् मिल कर बारह चौदह दिन तक गायत्री का जप करते। यज्ञमान में भी यह जप कराया जाता।”

६—उपर्युक्त प्रसंग में आगे लिखा है कि—जयपुर के राजा रणजीत सिंह ने बड़ा भारी यज्ञ कराने का सकल किया था। उस पर महाराज ने उन्हें कह रखा था कि “हमारे कथनानुसार गायत्री का अनुष्ठान करना होगा।”

इन प्रमाणों पर कोई विचार करने से पूर्व यह देखना है कि जीवन चरित्र की बातों का विद्वान् क. विषय में प्रामाणिकता कहा

नव माना जा सकता है। जीवन चरित्र में गायत्री यज्ञ का प्रमाण प्रमाणों के अभाव में सर्वथा अमान्य है। विद्वान् क. विषय में महर्षि के अपने विद्वान्त्व का ही प्रमाण है। जीवनचरित्र और उपर्युक्त आदि का प्रामाणिकता विद्वान्-निर्णय के विषय में नहीं हो सकती है।

आज का प्रमाण दिया गया है। उनमें पुरश्चरण और जपानुष्ठान का वर्णन मिलता है। कहीं पर भी उनमें गायत्रायज्ञ का वर्णन नहीं है और न गायत्री मंत्र में हवन करने का ही वर्णन है। गायत्री यज्ञ आदि का तो नाममात्र का भी वर्णन नहीं है। कश्चित् गायत्री यज्ञ के पुरस्कर्ताओं के सामने एक नम्रया पुरश्चरण की भी आ जाता है। यह पुरश्चरण क्या है? पौराणिकों का मार्ग-मोड़न आदि क्या पुरश्चरण है या क्या? मोक्ष मिद्ध करने गये गायत्री यज्ञ पुरश्चरण गले पड़ गया। स्यात् ये गायत्री महायज्ञ करने वाले ही बता सकते। उपर्युक्त तीसरी सप्ताह के प्रमाण में “जप गायत्री का कराया और यज्ञ हुआ” ऐसे शब्द पड़ हैं। यहाँ पर स्पष्ट है कि जप तो गायत्री मंत्र का किया गया। परन्तु यज्ञ पृथक् से जो यज्ञ किया जाता है वह हुआ। गायत्री मंत्र में यह यज्ञ नहीं हुआ। यह यज्ञ या जो यज्ञ महर्षि न सम्कार विधि में लिखा है वही हुआ।

इन प्रमाणों से गायत्री यज्ञ की कोई भी मिद्धि नहीं होती है। गायत्री यज्ञ हो, गायत्री महायज्ञ हो, लक्षाद्वि गायत्री महायज्ञ अथवा महर्षिर्वा गायत्री महायज्ञ हो—कोई भी मिद्धि नहीं होता। उनमें किमा का भी शङ्क्ययता प्राप्त नहीं। यह तो पौराणिकों की अपनी कल्पना थी जिसे कुछ आर्यगर्माजियों ने अपने स्वार्थ में उसे जनता में चालू किया है। न कि पौराणिक लोग अन्ध श्रद्धालुओं से इसके द्वारा लाभ उठाने है वही लाभ उठाने के लिए ये अर्थ-प्रार्थ-सामाजिक भी उसका महाराज लेने लग है। वस्तुतः अर्थ ने ऐसे यज्ञ करने का कोई भी विधान नहीं किया है—यह उपर की चर्चा में निराम् मिद्ध है।



## एकविंश-प्रकरण

### मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य और यज्ञ

मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्षानन्द की प्राप्ति है। इसका अर्थ है कि मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य है। इस मानव शरीर में जो अन्तिम उद्देश्य है वह यज्ञ है। यज्ञ का अर्थ है कि मानव देह कब पुनः मिले। इसमें चूकने वाला फिर पर्याप्त समय तक इस अन्तिम उद्देश्य में प्रयत्न करता रहता है। ब्रह्म-ज्ञान आदि जो इनकी प्राप्ति का साधन हैं उनका अधिकार मानव को ही प्राप्त है पशु आदि योनियों को यह अधिकार नहीं है। यजुर्वेद १८ मंत्र में भी इसी उद्देश्य दिया गया है कि भगवान् ने मनुष्य को आत्मा की इस मानव शरीर में अन्तिम युक्त किया है कि वह कर्म और ज्ञान का मिश्र करे। कर्मण वा वपाय वाम्, यह किन्तु मन्दर उपरम है। प्रश्न यह उठता है कि इस अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति में ये वैदिक यज्ञ किस प्रकार सहायक हैं? क्या इन के करने से इस उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है? यदि नहीं तो फिर उनका करना ही व्यर्थ होगा।

इसी के साथ एक विचारक जब विचार करने लगता है तो उसके सामने उपनिषदों के वे कथन उपस्थित होते हैं जिनमें यज्ञ आदि की एक प्रकार की निन्दा दिखाई पड़ती है। जब ब्रह्म की प्राप्ति और मोक्ष की सिद्धि उन से नहीं आती तब इनकी इतनी बड़ी दुर्गन्धों का फिर कोई अर्थ रह नहीं जाता। अगर ये मानवजीवन के अन्तिम उद्देश्य के पूरक नहीं हैं तो फिर इनके इतने विशाल आडम्बर से क्या लाभ। उपनिषदें भी तो शास्त्र हैं और हैं वे वह शास्त्र जो ब्रह्मविद्या से सम्बन्ध रखता है। जब ये इन कर्मकाण्डों की इस प्रकार निन्दा करती हैं तो फिर इनके करने का लाभ भी क्या है? यहां पर कुछ विचार इसी दृष्टि से किया जाता है।

मुण्डकोपनिषद् में निम्न उल्लेख मिलते हैं :—

२०१

१—एतन्वा त्वं ते प्रवृद्धा यज्ञकृपाः प्रवृद्धाश्चोक्तमन्तरं वेदं कर्म ।  
एतच्छ्रुत्वा ये अभिनन्दन्ति मृदा जगाम्यु ते पुनरेवाविरन्ति ॥

मु० २।१८

२—इष्टापूर्तं मन्यमानावरिष्टं नान्यच्छ्रुत्वा वेदयन्ते प्रमृदाः ।  
ताकस्य पृष्ठे ते मुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनं नरकवाविशन्ति ॥

मु० २।१०

इनके अर्थ क्रमशः इस प्रकार हैं :—

१—निश्चय ये अग्निहोत्र आदि कर्म जिनमें १८ ऋग्विज आदि होते हैं अवर अर्थात् अश्रेष्ठ कर्म हैं, स्थिरता रहित और नाशवान् हैं। जो मूठ पुरुष यह ही मोक्ष का साधन है ऐसा समझकर सन्तुष्ट होते हैं वे बुढ़ापे और मृत्यु को पुनः प्राप्त होते हैं।

प्रमृद लोग इष्ट और आपूर्त कर्म को श्रेष्ठ मानकर इसमें मिलन मोक्ष आदि कुछ नहीं है ऐसा मानते हैं। वे मकाम कर्म के फल को स्वर्ग की स्थिति में स्वर्गसुख प्राप्त कर उसके भोगानुसार इस लोक और हीनतर लोक को भी प्राप्त होने हैं।

यहां पर दिखाई पड़ता है कि यज्ञ आदि कर्मों की निन्दा की गई है। परन्तु सूक्ष्म विचार से यह बात गलत बन जाती है। प्रथम मंत्र में कहा गया है कि ये कर्म नाशवान् हैं और इन्हीं को मोक्ष समझ बैठना मूर्खों का काम है। ऐसे लोग स्वर्ग का सुख भोगने के बाद पुनः जरा मृत्यु को प्राप्त होते हैं। देखना यह है कि कर्म तो सभी नाशवान् हैं। चाहे यज्ञ हो चाहे और नैतिक कर्म। परन्तु समझने की बात यह है कि इनका फल भी नाशवान् है और स्थायित्व वाला नहीं है। इनके फल को भोगने के बाद पुनः शरीर धारण कर बुढ़ापे और मृत्यु का सामना तो करना ही पड़ता है। अतः ये स्थायी नहीं बार-बार योनियों में आना जाना बना रहता है और यह बंधन बना रहने से मोक्ष नहीं होता। अतः बन्धन का कटना मोक्ष है और उसके लिए इन कर्मों को निष्काम रूप में करके ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए जिससे मोक्ष मिट हो। इन्हीं को एक मात्र चर-मोक्षान्ति मान बैठना ठीक नहीं।

दूसरे मंत्र में उसे और भी स्पष्ट कर दिया गया है। वहां साथ ही कहा है कि इष्ट और आपूर्त कर्म के अनिरिक्त मोक्ष के अन्य साधनों को न मानने वाले लोग ठीक नहीं करते। उन्हें मालूम



कर्म है। उनका करना सम्भवतः है अविमर्श-रूप का प्रवृत्ति के लिए।

कर्म न करके और यज्ञ न करके केवल ज्ञानमार्ग का अनुसरण करना भी एक योग है। बिना इसके कोई भी व्यक्ति ज्ञान की प्राप्ति नहीं कर सकता है। वह ज्ञान भी जिस कार्य का होगा जिसका कोई प्रयोजनमय अन्त न हो। ज्ञान का मार्ग कर्म में अपनाया जा सकता है। यही कारण है कि वैदिक धर्म जिसमें ज्ञान का मार्ग प्रशस्त है। प्रवृत्ति का प्रतिफल है कि विज्ञान कर्म, उपासना और ज्ञान पर एक दृष्टि है। बिना कर्म किए कोई व्यक्ति एक जगत् के लिये भी नहीं रह सकता है। इसलिए वैदिक दशम ज्ञान और कर्म के समन्वय में मोक्ष की सिद्धि का प्रतिपादन करते हैं। न केवल कर्म और न केवल ज्ञान में मोक्ष मिलता है। न तो ज्ञान के समन्वय में मिलता है। न यह गैर है कि ज्ञान का पूर्वोक्त भाव समझा जाता है।

### मोक्ष का साधक ज्ञान-कर्म-समुच्चय

प्रत्येक मनुष्य की यह स्वाभाविक इच्छा है कि मैं दुःख में न चूँ और सुख प्राप्त करूँ। किसी भी कार्य में प्रवृत्त होने के पूर्व वह यह परिणाम निश्चित कर ही प्रवृत्त होता है कि उसका फल अनिष्ट से प्रवृत्त या दुष्ट ही प्राप्त करना होगा। बिना इसके बिचार किए मनुष्य की किसी भी कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती। चाहे लोक सम्बन्धी कार्य ही चाहे परलोक सम्बन्धी, दोनों में ही दुःख धारणा का समा-दल है। लोक में योगक्षेम का सिद्धि के लिए भी प्रवृत्त हुआ मनुष्य निष्ठा में वृत्तता और लौकिक अभ्युदय का लाभ करना चाहता है। नया पारलौकिक कर्मा में लगा हुआ प्राणलोक जन्म आदि विष्ठा का परिहार और निरोग्य का लाभ चाहता है। यही कारण है कि सामान्यतया यज्ञ याग, जाना जल, योगाभ्यास आदि कर्मों के अनु-सरण में मनुष्य प्रवृत्त होता है जब जान लेता है कि उनका फल हमारे समान दुःख का परिहार तथा आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति है। अथवा परिश्रम साध्य इन कर्मों में मनुष्य की प्रवृत्ति का नतीजा मिलती है। न कि मनुष्य की प्रवृत्ति दुष्ट की प्राप्ति और अविमर्श-रूप फल का दण्ड-रूप में रक्त कर ही देना करती है। अतः मनुष्य को ज्ञानमार्ग से प्राप्त ज्ञान की गति प्रवृत्ति का

पारम्भ करने से पूर्व ही फल का वर्णन कर दिया है। मनुष्य को फल ही देखकर उनके अध्ययन आदि में प्रयत्नशील रहना है।

जब यह जान ही गया कि मनुष्य मृत्युप्राप्ति और दुःख-याग का अभिलाषी है तब यह महज ही में सिद्ध हो जाता है कि उनका अदृश्य दुःख अभिलाषा की पूर्ति करना है और दमोनिष्ठ वह समार में प्रयत्नशील है। वे दुःख क्या है जिनका मनुष्य परिश्रम करना चाहता है? शास्त्र की प्रकिया में उनके तीन वर्ग हैं, आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक। उनमें प्रथम से तात्पर्य उन दुःखों में है जो कि अपने जरीर, मन आदि साधनों में होते हैं जैसे राग, मोह, क्रोध और पीडा आदि। दूसरे आधिभौतिक दुःख वे हैं जो कि अन्य प्राणियों के संगर्भ में होते हैं जैसे सर्प आदि में काटा जाना आदि। आधिदैविक दुःख वे हैं जो देवी शक्तियों के सम्बन्ध में होते हैं, जैसे अविर्भूति और अनावर्ति आदि। यद्यपि दुःख अनेक प्रकार के हैं, फिर भी शास्त्रकारों ने उपकरण भेद में उनका वर्गीकरण तीन प्रकार में ही किया है। वेदानुसार संसार तीन प्रकार का है। आध्यात्म आधिभौतिक और आधिदैविक। अतः उनमें होने वाले दुःख प्रायः मुख्य भा तीन प्रकार का ही है। ये पञ्चानन तीन दुःख दुःखों के समुदाय का होने से महान दुःख माना जाते हैं। फिर भी उनका मूल मिथ्याज्ञान है, जिसमें यह गिनती लाभ करने है, इसलिए शास्त्रों में मिथ्या ज्ञान का ही परम दुःख कहा गया है। मनुष्य जिन दुःखों का परिश्रम करना चाहता है, उनका वर्णन कर लेते हुए पुनः दूसरा प्रश्न समझा उभयित होता है कि वह मुख्य क्या है जिसका वह प्राप्ति करना चाहता है। उसका समाधान यह होगा कि मुख्य भी उपकरणों के भेद से पूर्वोक्त तीन प्रकार का है—आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक। उनका लक्षण तीन दुःखों के लक्षणों में दुःख के स्थान पर मुख्य शब्द जोड़ देने पर समान ही होगा। जैसे पूर्वोक्त तीन प्रकार के दुःख मनुष्यों को प्राप्त होते हैं वैसे ही ये त्रिविध मुख्य मनुष्यों को संसार में प्राप्त होते हैं। यद्यपि ये तीनों प्रकार के मुख्य मनुष्य का समार में प्राप्त होते हैं फिर भी वह इन्हीं मात्र न सन्तुष्ट नहीं, क्योंकि उनके मध्य में दुःखों को नाश या जाया करनी है। ये तीन प्रकार के मुख्य जिस कारण से मूल कहे जाते हैं वह जानें जा कि उन तीनों मुख्यों में काम किया करना है। पहले कहा गया है कि ये तीनों मुख्य दुःख-निमित्त हैं, अतः मनुष्य की



में मनुष्य नहीं। फिर किस मनुष्य में उसकी मूर्ति होनी है ?  
अतः विचार करने से पता चलता है कि वे मृत्यु जित मनुष्य के पक्ष  
में हैं वे ही मनुष्य मृत्यु प्राप्त होना।

अतः मनुष्य मनुष्य का निमित्त इस प्रकार है। मनुष्य में हृदय न हृदय  
न हृदय न नीमिषिक रूप में है। अतः कि वह अतीन्द्रिय मनुष्यों की  
नियता है। इस मनुष्यमान की अन्तिम परमात्मा परमेश्वर में है।  
इसी प्रकार मनुष्यमान भी किसी न किसी माया में नीमिषिक रूप  
में प्रकट है। इस जीव भी भी परम माया परमेश्वर में है। इसी  
कारण में मनुष्यमान कहा है। इसी दशन में 'मानन्दमया' कहा  
गया है। इस मनुष्य में परमेश्वर की मानन्दमय कहा गया है। वेद में भी  
इस प्रकार, और मानन्द में मान और प्रमा कहा गया है। इस-  
निमित्त पदे पदे कहा है। मानन्दमय प्रतिपादित करती है। अतः  
इस मानन्दमय है। उसके इस मानन्द (परम मनुष्य) की अपेक्षा  
दूसरा विविध मनुष्य लौकिक और दुर्गमिषित मान मनुष्य है।  
अतः मनुष्य मनुष्य में तो व्यावहारिक रूप में उन मनुष्यों की चाहना  
ही है परन्तु परमात्मा में उस परम मनुष्य परमानन्द की ही प्राप्ति  
करना चाहता है। उन तरह यह स्पष्ट है कि मनुष्य मनुष्य के मनुष्यों  
की निमित्त नोट में मानन्द होकर मनुष्यों की निर्वर्तिपत्रक जिस मनुष्य  
का प्राप्ति करने की अभिलाषा रखता है वह यही परमानन्दमय मनुष्य  
है। परमाण्व की माने तक माने के अन्तर यह परिणाम निर्या कि  
मनुष्य की मनुष्य में दुर्गम तीन और अज्ञान रूप मानन्द दुर्गम है जिसकी  
विश्व निर्वर्ति चाहता और माया ही परमानन्दमय परमा माया मनुष्य  
है, या प्रमा है नहीं और मनुष्य यह प्राप्ति करना चाहता है। इस  
दुर्गम की निर्वर्ति और मानन्द की प्राप्ति की ही प्रमा का प्रयोजन  
माना गया है।

### मोक्ष का स्वरूप

उपर कहा जा चुका है कि मनुष्यों की अत्यन्त निर्वर्ति और मनुष्य  
प्राप्ति मनुष्य का मनुष्य उद्देश्य है। अब हमसे मुक्ति का स्वरूप  
क्या हो जायगा। शब्दों में भाव की इस प्रकार प्रकट करने कि  
पञ्चमूलक विविध दुर्गम की निर्वर्ति अथवा तत्त्वक परमानन्द  
प्राप्ति मोक्ष है। इस निमित्त में वर्तमान समय के दुर्गमिका से बड़ा  
दुर्गमिका है फिर भी आज हमें उक्त ऐसा ही मानना अभि-

प्राप्त है। अज्ञानकार कृपियों में भी मान्वा की प्रकिया के कारण भेद  
भव ही रहा परन्तु वास्तविक मिद्वान्तभेद नहीं था। यह मैं प्रा-  
प्त करूंगा। यही पर ही था मा विचार माक्ष के स्वरूप पर  
ही किया जाता है। वेद में मुक्तिविषयक अनेका प्रमाण है, यथा पर  
मान्वा में दिये जाते हैं, जिनमें पता चलता कि वेद में मुक्ति का  
स्वरूप क्या है ?

१—अतः देवाः स्वराभ्युत्थिताः शरीरममृतस्य नाभिम् ॥ ऋ०

श्री११६

२—उवाचमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीम मामात्मात् । यजु० ३६०

३—यथा देवा अमृतमानशानामृतोये धामन्नध्वेययत्न ।

यजुः० ३२१०

४—उद्गम मनुष्यममृतमानशः । ऋ० १०६२१

इसके अर्थ प्रमाण, निम्न है, "जिस (धर्माचरण) से जानीजन  
शरीर का त्याग कर अमृत की नाभि मानन्द के केन्द्ररूप प्रकाश की  
प्राप्ति करते हैं।" परमेश्वर के अनुग्रह में हम पका स्वर्गज्ञा जिस  
प्रकार अमृत पत्रक होता है वैसे ही मनुष्य बन्धन से छूटे परन्तु अमृत  
मानन्द में नहीं। जिस परमेश्वर में विद्वान जीव, मोक्ष-मुख की  
प्राप्ति करते हुए जीव, प्रकृति में विनक्षण धाम में विचरते हैं।  
जा उपायना आदि शुभ कर्म में परमात्मा की मंथी और माक्ष मनुष्य  
का प्राप्ति करते हैं। इन मंथी में से प्रकट मनुष्य में शरीर की छाडकर  
अमृत की नाभि मानन्द के केन्द्र का प्राप्ति करना निम्न है। शरीर  
दुर्गमय बन्धन का उपलक्षण है और इसकी निर्वर्ति के बाद मानन्द  
का प्राप्ति करना निम्न है।

इसी प्रकार दूसरे मनुष्य में मनुष्य का बन्धन कहा गया है। उसमें  
छटना और अमृत मानन्द में मान छटना वर्णन किया गया है।  
उपाय ने तो और भी मनुष्य वर्ण भाव व्यक्त किया है अथवा स्वर्गज्ञा  
पत्रक जिस प्रकार बन्धन (होती) में अलग हो जाता है वैसे ही  
बन्धन से अलग होकर मानन्द की प्राप्ति होती है। यदि दुर्गमनिर्वर्ति  
माया ही मुक्ति होती तो फिर 'मामात्मात्' पद में अमृत से न छूटने  
की भावना की व्यक्त करने की आवश्यकता ही बचा थी। अतः यही  
भाव अभिप्रेत है कि मनुष्य बन्धन में निर्वर्ति होकर अमृत की



"नानन्दमिच्छन्ति मुक्तिर्निर्गमकं वा" ५।३४

अर्थात् पुण्य के निषेध होने से आनन्द की अभिव्यक्ति रूप मुक्ति नहीं जो यह कहा है यह ब्रह्मानन्द प्राप्ति का निषेध नहीं अपितु जीव का नियम उस ही अभिव्यक्ति द्वारा इस का निषेध है। कई एक आचार्य यह मानते थे कि जिस प्रकार मुक्ति में जीव की मर्तिमा बंद जाता है उसी प्रकार उसका नियम मुख भी अभिव्यक्त हो जाता है और उसमें यह सुखा हो जाता है। इस पक्ष का खण्डन मण्डि के इस सूत्र में किया है न कि ब्रह्मानन्द प्राप्ति का। यदि दुःखान्ध-निवृत्ति की ही मुक्ति मानकर ब्रह्मानन्द प्राप्ति का खण्डन करना ही सामान्याचार्य की अभिप्राय होता तो वह

"—समाधिमुक्तिमोक्षपदहास्यता" ५।११६

अर्थात् समाधि, मुक्ति और मोक्ष में ब्रह्मसत्ता होती है यह सूत्र न लिखते। जैसे मान्य ने इस पूर्वोक्त सूत्र द्वारा उन कथित आचार्यों के विचार का खण्डन किया है उसी प्रकार वाक्यायन ने भी न्याय १।१.२ सूत्र के भाष्य में जीव के स्वराय नियमस्वाभिव्यक्तिवाद का विचार में खण्डन किया है। हा जिस प्रक्रियाभेद से ब्रह्मानन्द प्राप्ति का खण्डन न करते हुए दुःखायना निरोध का ही मुक्ति कहा वह प्रक्रिया भेद यह है कि दर्शन का विषय लक्षण द्वारा सबका नश्वररूप वर्णन करना है। अतः मिथ्या जो आत्मा का प्राप्ति के योग्य है उसकी ध्वस्त करके प्रकृति, धात्मा और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का अलग अलग रूप दिया। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति तारे धात्मा में शास्त्र का विषय है अतः दुःख, परमेश के सम्बन्धों का वर्णन करने वाले दर्शनों ने उसका वर्णन नहीं किया। यह विषय उपनिषदों का था। यही कारण है कि वेदान्त में समस्त उपनिषदों से हा पाया उसने उसका भी वर्णन किया। दूसरी विशेष प्रक्रिया यह है कि विषयतया ये दर्शन हय, हेय-हय-हय धारणावाच्य दर्शन विचारों का वर्णन करते हैं।

अज्ञान में जीव प्रक्रिया स्वरूप की गई है और न्याय में भी यह प्रक्रिया ही गई है। अतः विचारधारण शास्त्रायन के प्रथम सूत्र भाष्य से स्पष्ट होता है। यह मान्य और वैशेषिक, उनमें भी मान्य की ही और वैशेषिक की न्याय से समानता होने के कारण यही प्रक्रिया रही होगी प्रमाण ही है। दूसरे समस्त हेय प्रधान और पश्य का समस्त हेय हेय स्वभाव का अन्तर्गत निवृत्ति होने और सम्यक्

दर्शन हानोपाय है। इसी चारों का प्रतिपादन करने की प्रक्रिया का अवलम्बन करने से उन दर्शनों में दुःखान्धनिवृत्ति तक का ही वर्णन किया है। उसके आगे होने वाली ब्रह्मानन्द की प्राप्ति का वर्णन नहीं किया। वास्तव में दुःखा को निवृत्तिपूर्वक परमानन्द प्राप्ति का नाम मोक्ष है यह इस प्रकरण में सिद्ध किया गया।

वेद उपनिषद और दर्शनों से यह प्रतिपादन करते हुए अपने आचार्य यतिवर दयानन्द की सम्पत्ति भी उल्लेख कर दी जाती है जिसमें यह विदित हो जायगा कि अरुण ने किस प्रकार सबका समन्वय किया और मिश्रित रूप में सार सामने उपस्थित कर दिया। महाराज जी अपनी पुस्तक आर्योद्देश्यरत्नमाला में लिखते हैं—मुक्ति अर्थात् जिनमें सब बुरे काम और जन्म-मरण आदि दुःख मागर से छुटकर मुख्य रूप परमेश्वर की प्राप्ति होके मुख ही में रहना है वह मुक्ति कहाती है।

आचार्य ने सबका निचाट रख दिया। मुक्ति के इस स्वरूप के विचार करने के बाद आगे उसकी प्राप्ति के साधन पर विचार किया जायगा।

### मोक्षप्राप्ति के साधन

मोक्ष का स्वरूप दर्शाया गया। अब उसकी प्राप्ति के साधनों का विचार किया जाता है। पूर्व यह कहा जा चुका है कि तापो (दुःखों) का मूल महादुःख अज्ञान है। उसकी निवृत्ति करना ही उचित है। उसकी निवृत्ति से दुःखों की निवृत्ति हो जायगी क्योंकि अज्ञानरूप कारण के नाश हो जाने पर कार्य भी नाश हो जायगा। पुण्य का संसार में जो कुछ भी बन्ध है वह अज्ञान से है अतः उस अज्ञान की ही निवृत्ति करने के विधान शास्त्रों में बताया गये हैं। कई एक भक्तनामधारी, जिनको अन्धविश्वासमयी कोरी भक्ति ही प्यारी है। यह समझते हैं कि सिर्फ काम से ही भिख्याज्ञान की निवृत्ति हो जायगी तथा उसकी निवृत्ति होने से पुण्य बन्धनमुक्त होकर सबका मुक्त हो जायगा।

ऐसे विचार वालों के विषय में यही कहना चाहिए कि वे फिर भक्ति के स्वरूप को जानने ही नहीं। वास्तव में परमेश्वर परमेश्वर में समस्त कमों का अर्पण करना भक्ति है। यही वास्तविक कामयोग





से समग्र मोक्षानन्द को प्राप्त करता है। २—निराकाम जानी जन  
 जिसके द्वारा शरीर को छोड़कर भाव के केन्द्र आनन्द प्रकाश को  
 प्राप्त करता है उस परमात्मा को आनन्द में यशस्वी होकर मुक्ति  
 के पथ का प्रकाश करा। ३—अनात्मक और व्यापक (जीव,  
 प्रकृति आदि परमात्मा) कथा का वृद्धि जान द्वारा खोजता है।  
 उन शक्तियों से आनन्द आनन्द का उद्धार उद्धार प्रत्यक्ष सभी को  
 करता है।

४— भिक्षा । ज्ञान म, कौन जानता है ? परमेश्वर जानता है । भिक्षा । जानता है ? परमेश्वर की प्राप्ति के लिए जानता है । और कम क्या जानने के लिए जानता है । ५— हे जीव कम की क्या हवा तु को क्या तक जाने की हवा कर । इस प्रकार भिक्षा म कम करने मत तुमसे कम भिक्षा न जाना । इस भिक्षा (माय) का ।

۷۹۷

पनिपद शान्तजलद क वातावरण अभाव है इससे हमारे मन में  
जीवन भर कम करने का आदेश देने का भी योग्य आदिपद में  
ज्ञान में मोक्ष का प्राप्ति का वर्णन है । एतदपिपद अत्र ही में मोक्ष-  
नेता ने यमाचार में कहा कि है आचार, य-यय यमः-यय यमः-य  
वा-भावा का काल अर्थात् यम यम में अ-य यया किण और न  
किण कम में अ-य जो य य-य-य य-य ज्ञानने है । य मुक्त ययय,  
हमवाक्य में यययय यया है कि य-य-य-य यम में यय है ।  
यह यम में यय नहीं हो सकता ।

प्रारंभ में प्रकाश करती है और तब ही मिश्र-ज्ञान के कारण से होते हैं। वेदान्त में प्रकाश मिश्र-ज्ञान पर्यन्त का चर हो वास्तव में समान है। नहि इससे प्रारंभ का कारण मिश्र-ज्ञान है और इसकी प्रकृति ज्ञान में ही प्रकाश है अतः ज्ञान मोक्ष का कारण है। वैशेषिक दर्शन में भी ज्ञान का कारण मिश्र-ज्ञान का ही माना गया है जैसा कि—

“तदभावे नानिगमनात् प्रमादित मोक्षः”

इस सूत्र में स्पष्ट किया गया है। सांख्य में वत्सा विप्रश्नान्, ज्ञान-मुक्ति इन सूत्रों द्वारा प्रथम के कारण अज्ञान का मानकर ज्ञान से मोक्ष मानी गया है। योग में भी प्रकृति पुरुष का ज्ञान कैवल्य का कारण है फिर भी मार्ग प्रकिया इसका कर्म पर निर्भर करती है इसलिए कर्म का खण्डन नही। वेदान्त दर्शन में ज्ञान और कर्म दोनों ही समुच्चय से ही मुक्ति मानी गयी है जैसा कि—

“अविद्यायादि तु यत्कवयोपैव न हर्षनात्” ४।१।१६

इस सूत्र में अभिव्यक्त होता है। यद्यपि ज्ञान से मुक्ति प्रतिपादन करने वाले शास्त्रों ने ज्ञान को विशेषता दी है फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वे ज्ञान के साथ कर्म को मुक्ति का साधन नहीं मानते। वेदान्त तो स्पष्ट ही उपनिषद् आदि कर्मों को मुक्ति का साधन मानता है। योग में स्पष्ट ही २।१ में तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान परमगुरु परमेश्वर से कर्मफल के त्याग को क्रिया योग अर्थात् कर्मयोग कहा गया है। यह क्रियायोग कर्मयोग चित्त को समर्पित करता है। इस प्रकार यह भी निष्काम योगाभ्यासादि कर्मों को ज्ञान के उदय का कारण मानते हुए मुक्ति का साधन कर्म को स्वीकार करता है। रहे सांख्य वैशेषिक और न्याय। ये ज्ञान पर इसलिए बल देते हैं कि मिथ्याज्ञान का निवारक ज्ञान ही है। अतः उसकी मोक्ष के प्रति मुख्य कारणता है। पूर्व कहा जा चुका है कि प्राचीन दर्शनों में प्रक्रियाभेद होते हुए भी मिथ्यात्व-भेद न था। लेकिन नवान्तों ने अपनी नीला से भेद और विरोध दिखाना दिया। यहाँ भी वैसी ही बात है। प्राचीनों का मतभेद न होते हुए भी नवीनों ने भेद पैदा किया। कई नवीन दार्शनिकों ने ज्ञान कर्म के समुच्चय का खण्डन करके ज्ञान को मुक्ति का कारण सिद्ध किया है। यह खण्डन इनका स्वतः साध्य के इस सूत्र—

“नियतकारणत्वात् समुच्चयसिद्धिः” ३।२५

में प्राप्त हुआ होगा। परन्तु इसका यह भ्रम है। इसमें वास्तव में ज्ञान की मोक्ष का मुख्य कारण माना गया है। अतः समुच्चय-ज्ञान का वर्णन करने का यह वक्तव्य माना गया है कि मुक्ति का मुख्य कारण समुच्चय और विकल्प नहीं। यदि कर्म मोक्ष के लिए ज्ञान के सहायक के रूप में स्वीकृत न होता तो सांख्यकार कभी भी—

“स्वकर्मसंघातमविरहितकर्मोत्पत्तिम्” ३।२५ तथा

धारणामनस्वकर्मणा तस्मिद्धिः ३।३३

आदि सूत्रों द्वारा यह प्रतिपादन न करते कि अपने आश्रमों में विधान (कर्म कर्म स्वकर्म है और उनके तथा धारणा और आसन के द्वारा ध्यान का सिद्धि होती है। इसमें स्पष्ट है कि सांख्य ज्ञान कर्म दोनों का स्वीकार करता है। सामान्यरूप में यहाँ यह बात समझनी चाहिए कि ज्ञान की मोक्ष साधन मानने वाले दर्शन यदि कर्म का उसके साथ सहयोग न मानते तो, जिस ज्ञान की वत्सा का निवर्तक मानते हैं उसकी सिद्धि के लिए योगाभ्यासादि का करना स्वीकार न करते, परन्तु इसका स्वीकार सभी ने किया है। जब योग आदि स्वयं कर्ममय है तो फिर कर्म का निषेध हो ही कैसे सकता है। उदाहरण के लिए इन दर्शनों के प्रमाण दिये जाते हैं। सांख्य तो योग का ही पोषक है अतः वह वैराग्य और अभ्यास को मानता है और योग के ध्यान धारणा आदि अंगों को भी मानता है।

“वैराग्यादभ्यासाच्च” ३।३६। “धारणामनस्वकर्मणा तस्मिद्धिः” ३।३३ आदि सूत्र प्रमाण हैं। न्याय के—

“धरणयगुहापुनिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः” ४।२।४२ तथा “तदर्थं यमनियमाभ्यामात्मसंस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः” ४।१।४६

आदि सूत्रों में अपवर्ग की प्राप्ति के लिए यम नियम आदि का पालन करना लिखा है। इसी प्रकार वैशेषिक ६।२।२ में ब्रह्मचर्य गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, यज्ञ, दात आदि को अपवर्ग का साधन माना गया है। इसके अनिवार्य तात्त्विकज्ञान जो स्वयं जीव का स्वाभाविकमात्र ज्ञान नहीं अपितु नेमित्तिक ज्ञान है और मोक्ष का दाता है उसकी सिद्धि भी इन दर्शनों ने योग आदि निष्काम कर्मों के द्वारा













पुत्रक विद्या गया था। गणित करने पर आज तक यह समय  
१९६०-४-२०-६ होगा। कवि ने गणित करने मन्वन्तरों और वन-  
मान वैवस्वत मनु के बीच समय को दिखाकर यह बात निर्णय  
किया है। एक निम्न का प्रमाण का निम्न न-हुत भाग में है।  
परन्तु पता चलने पर आगे भाग भाग में है। प्रथम यह कैसे निर्णय  
हो कि इनमें ही वन पर और जन्तु की उपाधि में बीच गये है।  
उत्तर - यह जो प्रमाण गणित है हमसे मानके वैवस्वत मनु का  
वर्तमान है हमसे पर छ मन्वन्तर ही चके है। स्यापम्भ १ स्वा-  
रोचिष ३ अंजलि ४ तामस ५ वैश्व ६ वासुदेव ७ तो बीच  
गये है और ८ (माया) वैवस्वत वर्त रहा है। स्यापम्भ आदि ९ (माय)  
मन्वन्तर आगे भागों ये सब मिलके १६ मन्वन्तर मान है। आगे  
१७ चतुर्विंशति का नाम मन्वन्तर धरा गया है।

[illegible]

विष्णु ग्रन्थों में इन चार प्रकार चतुर्गुणियों की ब्राह्म दिन संज्ञा रखी है और खनी ही चतुर्गुणियों को चतुर्विंशत जानना चाहिए । जो मूर्ति की स्थापति करके हजार चतुर्गुणों पर बना है वह उसको बना रखता है इसी का नाम ब्राह्म दिन रखा है और हजार चतुर्गुणों पर बना मूर्ति को मित्र के प्रलय अर्थात् कारण में तीन रखता है इसका नाम ब्राह्म रात्रि रखा है

अथानां एव मृष्टि के वतमान होने का नाम दिन और प्रलय होने का नाम रात्रि है। यह जो वतमान ब्राह्मदिन है उसके (१८००८४२६७५) एक अरब, सानवें बराह, आठ लाख, ब्राह्म हजार, नव मी, स्रान्तर वर्ष उस मृष्टि की नया वदों की उत्पत्ति से भी अर्थात् द्वय है और (२३३३२०००२४) दो अरब तृतीय बराह वन्तीम काश, सन्तार्डम हजार, चौबीस वर्ष उस मृष्टि का योग करने के बाकी रहे है..... । इस प्रकरण में मनुस्मृति के श्लोक माश्री के लिए लिख चुके है सो देख लेना । उन श्लोका में देव वर्षों की गणना की है अथानां चारु युगा के बारह हजार (१००००) वर्षों की देवयुग संज्ञा की है ।'

महर्षि के इस कथन में निम्नवातों स्पष्ट है

१-१८६०=१२८७६ वर्ष वद की उत्पत्ति में व्यतीत हुये हैं ।

२. उन्ने ही वषं मृष्टि के उत्पत्ति के भी व्यतीत हुये हैं ।

३ - यह लेखन मनुस्मृति के प्रमाणों के आधार पर है जो दैव  
यग के अनुसार है।

४ यह गणित साप्ताहिक जो ६००० अनुयुक्तियों का होता है उसके बनाने के लिए है।

५-१४ मन्वन्तरो का समय जो ४२६४०००००० वर्ष है उसमें से १६६०५४२६७३ वीन तक है और २३३३२२७०२५ वर्ष बाकी है।

६. जिस १००० चतुर्युगी के व्रतदिन अथवा कल्प काल का वर्णन किया गया है और जिसके लिये यह मन्वन्तर का पंचमा प्रवृत्त किया गया है उसमें छः चतुर्युगी की कमी पड़ती है। यह कमा क्या पड़ रही है? इसका कारण बूझना चाहिये।



### छः चतुर्थी के समय की खोज

इस विषय का विचार करने लगे किसी लोगो ने एक नया वाद प्रस्तावित कर दिया है। वे समझते हैं कि मानव की उत्पत्ति होने से पूर्व छः चतुर्थी के समस्त पृथिवी आकाश पर एक नक्षत्र आदि उत्पन्न होत है। इसके बाद मनुष्य उत्पन्न होता है। उसे वेद ज्ञान मिलता है। इस समय में वह समस्त मानव होता है और तब से लेकर ६६६ चतुर्थी तक वह जगत् का मानव रहता है और बाद में सबका साथ ही प्रलय हो जाता है। इस प्रकार मर्त्य का दिवाला गया मनुष्य और वाकी का मर्त्य भाग का समय दोना शेष रहने है। परन्तु यहाँ पर विचारना है कि यह समाधान क्या ठीक है? यह वाद वस्तुतः कथना पर आधारित है। वेद द्वारा प्रतिपादित ज्योतिषशास्त्र में सिद्ध और न्यय मर्त्य द्वारा स्वीकृत १००० चतुर्थी के समय में पड़ने वाला इस वाद का यह समाधान नहीं है। छः चतुर्थी मानव के पूर्व की सृष्टि बनने में लगती है और यह समस्त वाकी समय का समाधान है—इस पर नाचे निम्ने प्रश्न करते हैं।

१. हमसे वेद ज्योतिष शास्त्र प्रथमा मर्त्य का प्रमाण क्या है? क्या यह केवल हिमाचल का पूरा करने के लिए बनाया वर दिया गया है? और यही हमका प्रमाण है।

२.—यह हम ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वाले मन्त्रों में कहा हुआ है या नहीं। यदि कहा हुआ है तो फिर १००० चतुर्थियाँ वाले काल में खोज नहीं पड़ती चाहे पर्वत गणित करने में बहुत साहस प्रयोग हो सके है। यदि नहीं कहा हुआ है तो फिर यही सृष्टि मन्त्र किस प्रकार से कहा गया है किया जा रहा है। सृष्टि मन्त्र का इस दृष्टि में भी छः चतुर्थी का मानव के उत्पत्ति के बाद के प्रथम एक वर्ष का एक धरत लाने का साहस कहा है। अर्थात् मनुष्य के उत्पत्ति के बाद ही हम प्रकार मर्त्य मन्त्र १६२००-१६२०२ छः चतुर्थी का प्रमाण है। १६२००-१६२०२ का प्रमाण चाहे और इस प्रकार मन्त्र के लिये मर्त्य काल में मनुष्य का जन्म है। यदि यह हम प्रकार से प्रमाण हो फिर किस प्रकार प्रमाण है। इस प्रकार में जाकर जाह्नव कहा जाता है। फिर भी मर्त्य का कोई व्यवस्था रहती है। यही बताया कि दिन मास वर्ष घटण आदि निकालने की गणित का

इस सृष्टि के काल में ही निकाला जाता है। फिर मारा ज्योतिष-शास्त्र द्वारा प्रमाण।

इसके अतिरिक्त तब इतना समय बताया ही कहा है तो वह जगत् का न जाने और सृष्टि मन्त्र का कालमान यहाँ से न प्रारम्भ करके मानव के उत्पत्ति होने से कहा किया जावे और उसे छोटा कम कर दिया है।

३.—यदि छः चतुर्थी का समय मानव में पूर्व की सृष्टि के निमाण में लपका प्रलय में भागी यह समय 'मनुष्य' ही चाहे पर्वत उत्पत्ति के ही भागी कहा किया नहीं गया।

४. मानव का जन्म सृष्टि के पूर्व समय अर्थात् एक ब्रह्मदिन का प्रमाण क्या प्रमाण है या नहीं। यदि वेद प्रमाण है तो वह गणित में १००० चतुर्थी का ही मान बताया गया, छः चतुर्थी का मान क्या माना गया होगा। यदि मनुष्य के गणित का पैमाना पूर्ण ब्रह्म दिन का हिस्सा देने में समर्थ नहीं है तो उसका प्रयोग ही क्या किया जावे? जहाँ कहा गया हिस्सा तो नहीं कहा सकता है। यदि यह ज्योतिष विद्या का पैमाना है और हिस्सा कहा सकता है परन्तु नहीं कहा सकता तो कहा जायगा कि इस पैमाने के प्रयोग में कभी कहा गया है। इस पैमाने का ज्योतिष शास्त्र के अधिनियम ने पूरा पूरा बताया और छः चतुर्थी के खोज प्राने नहीं पायी है। मनुष्य ने ही मान का प्रयोग किया है। मर्त्य ने प्रमाण इस देवमान का मनुष्य का उद्धार किया। परन्तु पैमाना मनुष्य के प्रयोग किया ब्रह्मदिन का गणित सिद्ध करने में यदि यह ही पैमाना न होता तो इसका प्रयोग वे क्यों करते?

परन्तु यह वाद सदा करने वाले न ज्योतिष जानने, न मर्त्य के निश्चय का ज्ञान और न वेद और सृष्टि विद्या का ही समझने के लिये विज्ञान का बुरा भ्रम करना और नया नया नुसखाना वाद प्रयोग करके विद्वन् जनता चोटने है। दंड कहा है और दंड कहा है। यह है।

५. भ्रम का यह प्रमाण प्रमाण ब्रह्मदिन का काल प्रमाण मानने के लिये। जहाँ मनुष्य का ब्रह्मदिन के पूर्व का काल निश्चय और निश्चय है तो मनुष्य जानने वाला इस समय जोड़ रहा है। इन वक्तव्यों में सृष्टि विद्या के ज्योतिष मन्त्रों में सिद्धांत कृत्युग के



एक मन्वन्तर का प्रमाण भी मिली है। एक ब्रह्म दिन में १४ मन्वन्तर होते हैं और उनके १४ मधिया होती हैं। मन्वन्तर-प्रक्रिया बिना इन मधियों के पूर्ण नहीं होती है। एक मन्वन्तर का काल एक हजार चतुर्थियों का होता है और मन्वन्तर एक मन्वन्तर जिनका अन्तर्गत मन्वन्तर का प्रमाण है। एक ब्रह्म दिन में १४ मन्वन्तरों की १४ चतुर्थियों होती हैं और १४ मधियों का काल छ चतुर्थियों का काल बनता है, इस प्रकार १००० चतुर्थियाँ पूर्ण होती हैं और मन्वन्तर भी बन जाता है।

परन्तु मन्वन्तर का मानकर आधी प्रक्रिया यदि मधि की न मानी जायेगी तो यह नहीं रहेगी और उसकी प्रति नहीं हो सकती। एक मधि में १०००००० वर्ष होते हैं। १४ मधियों का समय  $1000000 \times 14 = 14000000$  प्रमाण दो करोड़ उत्तम लक्षणों का होता है। यही समय छ चतुर्थियों का भी होता है।  $14000000 \times 6 = 84000000$  वर्ष होते हैं। इस प्रकार मन्वन्तर समस्या सुलभ जाती है।

### वर्तमान सृष्टिसंवत् की समस्या

योग कहते हैं कि वर्तमान सृष्टि संवत् १८६००५८०५०० है और वर्तमान मन्वन्तर १८०२८६००००० गणित है। परन्तु यह बहुत कथन मात्र है। मन्वन्तर ने इसका विरोध नहीं कर दिया तो यह बनाना चाहिए। परन्तु ऐसा नहीं कर दिया गया। इसलिए मन्वन्तर का जो वर्णन ऋग्वेद आदि भाष्यभूमिका में किया है उसमें तो यही वर्तमान सृष्टि संवत् ही बताया जाता है। एक अर्थ छानव बताया मन्वन्तर मान लेंगे। यदि कहें कि वह बदोर्ध्व सन्वत् तो भी ठीक नहीं है। मन्वन्तर ने दोली मन्वन्तर एक ही मान है।

जैसा वर्णन किया जा चुका है मन्वन्तर ही योग ही सृष्टिसंवत्। मन्वन्तर का प्रमाण भी मिला परन्तु पुराने नहीं। छ मन्वन्तरों का ही मान लिया गया परन्तु मधिया नहीं जोली गई है। छ मन्वन्तरों का मन्वन्तर मधियों का ही है। इनका काल ५ मधियों जिनका प्रमाण है। वह यह मान मधियों का काल इस ऋग्वेद आदि भाष्यभूमिका के मन्वन्तर मान मान काल में मान दिया जाय तो वर्तमान सृष्टि संवत् ही बनता है।  $1000000 \times 14 = 14000000$  मधियाँ— $10000000 \times 14 = 140000000$  वर्ष होते हैं। यह ही सृष्टि संवत् है। कुछ लोग कहते हैं कि

है कि जानकारी तो रखने नहीं और सृष्टिसंवत् १८६ करोड़ तो छानना प्रारम्भ कर दिया। परीपकारी जैसा पत्र ने बड़ी जल्दी छानना प्रारम्भ किया। योगों ने सावधानीक पत्र पर भी दयाव डाला था। एक बार छानना बंद भी हो गया था। परन्तु फिर मन्वन्तर के पत्र ने अनुभव किया कि ऐसा करना ठीक नहीं और वह बतलान सृष्टि संवत् का प्रमाण छानना है।

कुछ लोग कहते हैं कि बदोर्ध्व का मन्वन्तर ऋग्वेद आदि भाष्यभूमिका वर्णन छानना जाये और सृष्टि संवत् जो वर्तमान है वह छानना जाये। निम्न प्रमाण यह है कि ऐसा मन्वन्तर कैसे होगा। क्या सृष्टि संवत् के अनुसार माने जायें प्रमाण मान की वृद्धि मन्वन्तर की प्रमाणा करती रहेगी। ऐसा मानने से अनेक समस्याएँ पैदा होंगी जिनका समाधान हो नहीं हो सकेगा।

### सृष्टिसंवत् की गणना का प्रकार

भगवान् यानी भिक्षुओं में प्रकृति में जगत् पैदा करने की इच्छा चल पड़ा करता है। प्रकृति पर्वतानि अथवा मन्वन्तर के उदय होते ही काल का व्यवहार प्रारम्भ हो जाता है। किमी किया अथवा कार्य पदार्थ का प्रमाण होते ही काल का व्यवहार होने लगता है। जब भगवान् ने प्रकृति में सृष्टि का बनाना प्रारम्भ किया तभी म प्रथम मधि और तदनंतर स्वायम्भव मन्वन्तर का प्रारम्भ हो गया। एक मधि में मन्वन्तर का २८ हजार वर्ष और एक मन्वन्तर में ३१ चतुर्थियों होती हैं। इस मधिका काल और स्वायम्भव मन्वन्तर की ३१ चतुर्थियों के काल में ही तीन चतुर्थियों पयल पृथिवी, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, नदी, पर्वत समुद्र और जीवजन्तु अदि का सृष्टि हुई। यह सृष्टि भी बाद के जन्म के साथ हुई। उसके बाद मानव उत्पन्न हुआ और उसे बाद ज्ञान की प्रणाम मिला। इस प्रकार आग समय चलता गया और मन्वन्तर के बाद प्रथम मधियाँ और मन्वन्तर बीतने लगे। आज तक इस प्रकार मात्र मधियाँ और छ मन्वन्तर बीत चुके हैं। मन्वन्तर मधियों का काल १००००००० वर्ष है। और छ मन्वन्तरों का समय  $10000000000$  वर्ष होते हैं। मानव मन्वन्तर की २८ चतुर्थियों है। इसमें कवियोग के १०३३ वर्ष बीत चुके हैं। तथा जगत्, प्रकृति और द्वापर के  $20000000$  वर्ष बीत चुके हैं।

अगर आज तक का इन सबका योग कर दिया जाय तो सृष्टि







[illegible]

ਸਰਕਾਰੀ ਦਫ਼ਤਰੀ ਟਿਕਾਣਾ

[illegible][illegible]

✓ **सूर्यसिद्धान्त की संगति**—सूर्यसिद्धान्त पर अक्षांश व लंबाई से जगत् बिना किसी प्रश्न की बात लेकर आयाई प्रकट करते गते है परन्तु हमने सूर्य सिद्धान्त का सम्मान न होकर इसकी प्रकृति मानस का सम्मान ही जताते है ये कहते है मनुसूत्रे मुष्टि क समस्त का पुरा करने क विधि एक मणि प्राद मे प्राद एक मणि प्रद म मानी । अतः १६ मानी हो हो सकती है १५ नहीं ।

इन ऊलजलल वाता को कौन मानेगा । १३ संधि क्यों हो सकती है, १५ क्यों नहीं । इसमें कौन सा ज्योतिष का प्रमाण वा शास्त्रीय मानदण्ड है कि ये नहीं हो सकती है । आपकी तरह का ही कार्ड कह सकता है कि मन्वन्तर भी १२ वा १३ ही हो सकते है चौदह नहीं । ये जो चौदह की कल्पना है यह लोगों ने बना ली है । एवं संधि प्रलय के बाद होने से प्रलय का मृष्टि के प्रवाह के साथ जाडने वाला है और प्रलय की संधि मृष्टि का होने वाले प्रलय के प्रवाह के साथ जाडने वाला है । १३ संधि मानने पर वह नहीं हो सकता है ।

ब्रह्मदिन और ब्रह्मरात्रि का चक्र रात्रि दिन के प्रवाहचक्र के समान है। उसे उस प्रकार मधियों और मन्वन्तरों द्वारा पूर्ण किया गया है। रात्रि के बाद प्रातः उषा और वाद का दिन। दिन के बाद मायकान्तिक उषा और पुनः रात्रि। इन जैसा आदमी कह सकता है कि दो उपाय क्या हैं। भिद्वान् का आधार तो ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि है। उनके पूरा करने का पैमाना बनाना है न कि अपनी कल्पना का। ये मन्वन्तरों से बिना मधि के पूरे नहीं हो सकते हैं। पहले मधि से सृष्टि प्रारम्भ होती है अतः अन्त भी मधि से होता है। सृष्टिकाल मन्वन्तर से नहीं प्रारम्भ होता है मधि से प्रारम्भ होता है अतः १५ वीं मधि का १४ वें मन्वन्तर के बाद होना स्वाभाविक है।

१५ वीं संधि जब तक न पूरी हो तब तक तो ब्रह्म दिन के १३२८००० (सत्तरह लाख अष्टादश हजार वर्ष) शेष हैं ही। वह १५ वीं संधि के भोग का समय है। आप १६ मन्वन्तर में सृष्टि को पूरा करते हैं तो इसमें कोई प्रमाण तो दें। १६ मन्वन्तरों में ब्रह्मदिन पूरा होता है और १६ वें मन्वन्तर के बाद प्रलय है—इसका कोई प्रमाण दें। बातें करने से तो कार्य बनता नहीं। यदि १६ वें मन्वन्तर की समाप्ति पर सृष्टि का प्रलय प्रारंभ हो जाता है और ब्रह्म दिन समाप्त हो जाता है तब तो १५ वीं संधि के भोग का काल नहीं रहता। परन्तु यह आप की कल्पना है। १६ वें मन्वन्तर में ब्रह्मदिन की समाप्ति का कोई प्रमाण नहीं। अतः आपको शका व्यर्थ है। संधि को मयामुख ने नहीं चलाया है। इसके प्रवर्तक तो मनु भी है। जो प्रमाण महर्षि ने मनु के दिये हैं उनमें संधियां हैं। आपने मन्वन्तरों को अर्थात् आधा सिद्धान्त मान-

क. दोर मधि सम्बन्ध। प्राधा सिद्धान्त सोहवर १२१ ब्रह्मदिन  
मन्वन्तर और मन्वन्तर प्रसिद्ध १४ भी नहीं सिद्ध कर सकते।  
मन्वन्तरों के साथ नहीं गई मधियों को अलग करके कोई  
मन्वन्तर अवस्था बन ही नहीं सकती है। वह मन्वन्तर की कल्पना  
नहीं है। वह प्रजापति का मान है। इस सूत्र माना ० म० १४  
हलाक २०। मान है ब्रह्मदिन के मान का अर्थ उस पर पूरा उत्तरना  
चाहिए। मन्वन्तरों का मानना प्रायः मधियों के बिना यह अना  
कल्पना ही नहीं और वह ब्रह्मदिन का मान नहीं होगा।

### ५—अपनी बुद्धि का दोष सूर्यसिद्धान्त और विद्वानों पर न डालें

यह पर हम नरान नाद की कल्पना का एक और उदाहरण  
दशनाम है। सूर्य सिद्धान्त का समझा नहीं और नुक प्रपत्ति मार  
ही। यह पर उनकी वाक्यों का खलव किया जाता है—

(२) पाचरा शेष तो एक मरान शेष है। जिसका समन्वय  
(संगति) आज तक इस मत के विद्वान नहीं कर सके हैं और समा-  
वना भी नहीं देखनी। सूर्यसिद्धान्त १४ मन्वन्तरों के ६२४  
चतुर्थियों के मान का तो मानना ही है नाथ ही १५ मधियों भी  
मानता है जिसका समस्त चतुर्थियों का बराबर है। फिर उनके  
प्रतिस्वन प्रथम अध्याय के २४ वें अनुक्तानुसार नरानरमोष्ट एक  
काल ३० वर्ष ६४ वर्षों का बाद गई। इस मति रचना के समय  
का कोई भी विद्वान् या १४ मन्वन्तरों या १५ मधियों के साथ  
जाकर मति का ३० वर्ष १४ मन्वन्तर चतुर्थियों पूरा कर सकता है ?  
यदि इनका समन्वय नहीं हो सकता है तब इसमें परस्पर विरोधी  
बातों का कौन विद्वान स्वीकार करेगा ?

इस ऊपर की पवित्रता से ये सब है सूर्य सिद्धान्त की कमीटी  
और अपने विपक्षी विद्वानों की कमीटी करने परन्तु यह इनका ही  
बुद्धि और कमीटी की दूषित कर रहा है। भला इनसे पूछो कि सूर्य  
सिद्धान्त में नरानर मति रचना के इस काल की ब्रह्म दिन, जो  
उसके अनुसार १४ मन्वन्तरों और १५ मधियों का काल है, उससे  
पृथक् क्या माना गया है। यह काल तो वह ब्रह्मदिन जो १४  
मन्वन्तरों और १५ मधियों का काल है उसके अन्तर्गत मानता है।

वह जो यह लिख रहा है वह तो ब्रह्म दिन का मानने के लिए ही  
लिख रहा है। फिर १४ मन्वन्तर १५ मधियों और इस मति-  
काल को जाकर ब्रह्मदिन की एक हजार चतुर्थियों बनाने का प्राय-  
काल का मतान शेष रहता ही कैसा है ? एक ब्रह्म दिन एक हजार चतुर्थियों  
का होता है। इसमें १४ मन्वन्तर और १५ मधियों होता है। मति  
की उत्पत्ति में लेकर अब तक जो मन्वन्तर और मधियों बोली है वह  
सूर्यसिद्धान्त उसके अन्तर्गत है पृथक् नहीं। प्रायः व्यर्थ का शेष दिखाने  
का प्रयत्न कर रहे। इसका कारण यह है कि उनके मतिरक्त में  
आपका एक ही रह नहीं है कि छत्तरीय विद्या परन्तु तीन जाती है  
और बाद में १४ मन्वन्तर जीतने है। इसी कमीटी पर आप सूर्य-  
सिद्धान्त को भी देख रहे हैं और दोष दिखाने रहे हैं। परन्तु आपकी  
माना कल्पना यह का प्रमाण ज्योतिष का सिद्धान्त अथवा शास्त्रोंय  
मन्वन्तरों की नहीं है कि उसके आधार पर सब कैसे जावेंगे।

सूर्यसिद्धान्त में प्रतीत भी है। पौराणिक वातें भी मिलती गई हैं।  
कुछ ज्ञान विद्वान भी है यह हीन है। इसके आधार पर इसमें  
दिखाये गये ज्योतिष के सिद्धान्त सब असम्भव और गलत ही ऐसा  
नहीं। संगति की बात नीजिग। वह इस प्रकार है—

यत्तं देव देव्यादि मृत्तान्तर्य नरानरम्।

कुत्तादिपशु दिव्यादि शतधा दशमा गता । सू० म० १२४

अथवा यह नक्षत्र, देव और देव्यादि सम्पूर्ण स्थावर और  
जंगमात्मक जगत् ही रचना करने में ब्रह्मा जी को ४७४०० दिव्य  
वर्ष अथवा १७०६४००० और वर्ष व्यतीत हुये हैं।

यह समय इस प्रकार देख :—

तीन चतुर्थियों का समय—	१२६६०००० वर्ष
एक इतयुग का समय—	१७०६००० वर्ष
एक वेता का समय—	१२६६००० वर्ष
एक द्वापर का समय	८६४००० वर्ष
आधा कल्पयुग—	२१६००० वर्ष

योग १७०६४०००

पहले कहा जा चुका है कि सूर्य पृथ्वी ओषधि प्रादि की रचना  
में तीन चतुर्थियों का समय वेद के अनुसार लगता है। पुनः पृथिवी

पर मनुष्य की सृष्टि होती है। सूर्य-मिद्धान्त के इलोक में चराचर व जल-जड़म की ज्योतिष की भी समय जोर दिया। इस प्रकार उस समय में तीन चतुर्गुणों और चौथा चतुर्गुण का एक कृतयुग एक त्रेता, एक द्वापर और आधा कलियुग सम्मिलित है। उससे भी तीन चतुर्गुणों वाले पक्ष पर प्रकाश पड़ता है। उस कल्पना का सूर्य-मिद्धान्त की प्रकिया और बाद के प्रक्षेपों के द्वारा इसके दुर्गमों से भी १ अरब ६९ करोड़ वर्ष वाला सृष्टिमन्वन्त नहीं बनता है। १ अरब ६७ करोड़ वाला ही बनता है। जब ब्रह्मादिन का प्रारम्भ हुआ तब प्रथम सन्धि का पूरा काल, स्वायम्भव जो १८ में प्रथम मन्वन्तर है उसकी भी तीन चतुर्गुणों और चौथा चतुर्गुणों का एक त्रेता, एक द्वापर और आधा कलियुग जितना समय लगा सूर्य-मिद्धान्त कथित चराचर सृष्टि में। बाकी समय आगे बीतता गया अतः यह समय ब्रह्मादिन, सन्धियों और मन्वन्तरों के अन्दर है वाहर नहीं। यदि आप जैसी ही उत्पत्त्याग मारनी हो तो कोई आपसे भी पूछे कि १३ सन्धियां तो आप भी मान बैठें, चौदह मन्वन्तर भी मानते हैं और छः चतुर्गुणों सृष्टि की रचना में भी मानते हैं। आप ही ब्रह्मादिन का समय इन सब के योग से पूरा करें। जब छः चतुर्गुणों मन्वन्तरों से पूर्व बात चुकी और मन्वन्तर बाद में चाल हुये तो आपका माना मन्वन्त सृष्टि मन्वन्त कैसे? और छः चतुर्गुणों का समय जोड़ कर जरा १ अरब ६६ करोड़ बना ही दीजिए?

#### ६—सूर्यमिद्धान्त से एक और ज्योतिष का रहस्य खुलता है

सृष्टिकाल का ज्योतिष तो आप अपनी तुर्र मिनाकर कर रहे हैं जो ठीक बन नहीं पा रहा है। परन्तु एक जीव की मुक्त होने पर ३१ १०,८०,००,००,००,००,०० (एकलौम नील दस खरब चालीस अरब वर्ष) जो मुक्ति में रहता पड़ता है यह किस ज्योतिष से आप मिट्ट करोगे। इसे ही परान्तकाल कहा जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि ज्योतिष की गणना केवल ब्रह्मा दिन तक ही नहीं परान्त-काल की भी अपने अन्दर लेती है। महर्षि दयानन्द जैसे महान् ज्योतिर्विद ने लिखा है जो सन्त्यार्थ प्रकाश के ६वें मसुल्लस में इस प्रकार है—“इसकी (महासन्धि) की मन्था यह है कि तैत्तिरीयस लाख बीस सप्तस वर्षों की एक चतुर्गुण, दो सप्तस चतुर्गुणियों का एक महो-रात्र, ऐसे तीस महोरात्रों का एक महोना, ऐसे बारह महानों का एक वर्ष ऐसे शत वर्षों का परान्तकाल होता है।”

उत्तर—“मुक्ति जन्ममरण के मरण नहीं, क्या कि जन्म तक ३६००० इलाक सप्तस बार ज्योतिष और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों का मुक्ति के अन्तर्द में रहना और दुख का न होना क्या छोटी बात है?”

महर्षि ने जो यह ज्योतिष के तथ्य लिखे हैं—उत्तरा मन्त्र क्या है और इस ललौम महस वाली पद्धति का आधार क्या है अदि बातों को यह वर्तमान मय को प्राप्त सूर्यमिद्धान्त खो जाता है। सूर्य मिद्धान्त के इलोक निम्न है :—

ममन्धयस्ते मन्त्रः कल्पे ज्ञेयाश्चतुर्दश।

कृतप्रमाणः कल्पादौ सन्धिः पचदशमस्तु ॥

इत्थं युगसहस्रण भूत महारकारकः।

कल्पो ब्राह्ममत्र प्रोक्तं सर्वरी तस्य तावती ॥

परमायः शतं तस्य तयाहोरात्रसम्यया।

आयुषार्धमितम् तस्य शेष कल्पोऽयमदिमः ॥

सू. मि. १६, २०, २१

एक कल्प वा ब्रह्मादिन में अपनी सन्धियों सहित १४ मन्वन्तर होते हैं। वह सन्धि कृतयुग के समय जितनी होती है और कल्प में १५ होती है ॥ १६

उसी प्रकार एक हजार चतुर्गुणों के तुर्र भूतों का महार करने वाला ब्रह्मा तयात्मक कल्प होता है। सृष्टि-मन्वन्धी काल ब्रह्मादिन कहा गया है और उतने ही काल का प्रलय ब्रह्मागति है ॥ २०

इस पूर्वोक्त ब्रह्मादिन और ब्रह्मागति के प्रमाण से उस (ब्रह्मा) परान्तकाल का आयु शतवर्ष की होती है। उस चाल परान्तकाल की आयु समय आधा बीत चुका है और शेष में यह प्रथम ब्रह्मादिन है ॥ २१

इन इलोकों से ज्ञात हो गया कि १४ मन्वन्तर और १५ सन्धियों के काल का एक ब्रह्मादिन है जो १ हजार चतुर्गुणों का भी कहा जाता है। उतने ही काल का ब्रह्मागति है जो प्रलय है। ये दोनों मिलकर आठ अरब चौमठ करोड़ वर्षों के होते हैं। ये ब्रह्मा के महो-रात्र है। इनका महीना और उन महीनों के वर्ष और उन वर्षों के शत गुना वर्ष का परान्तकाल है। इसे ब्रह्मा मुक्त जीव की मुक्ति की आयु कहा गया है। अथवा ब्रह्मा के सृष्टि और प्रलयरूपी दिनों का गणित-चक्र ब्रह्मा के शत वर्ष के काल तक चलता है और उसके प्रति-



रिक्त सृष्टि-प्रवाह मत्तादि वा अनन्त शब्द से व्यक्त किया जाता है। परन्तु परान्त काल तक का चक्र ज्योतिष की गणित की परिधि में आता है। उसमें भी ब्राह्मदिन मात्र का ज्योतिष के पूरे व्यवहार में आता है। उसमें भी मन्वन्तर और मधियों का मापदण्ड केवल ब्राह्मदिन के मापने में आता है। प्रलय वा रात्रि के मापने में नहीं। सूर्य-सिद्धान्त मा० १८ २२ से सुतराम् स्पष्ट है।

इस २१वें श्लोक के अनुसार ब्राह्म महोरात्र साठ अरब चौसठ करोड़ वर्षों का बनता है। ऐसे तीस महोरात्रों का एक मास, बारह मासों का एक वर्ष और शत वर्षों का एक परान्तकाल। ब्राह्म महो-  
रात्र  $\times$  ब्राह्ममास  $\times$  ब्राह्मवर्ष  $\times$  शत वर्ष  $= 30 \times 12 \times 100 = 36000$ । यह है वनमान सूर्यसिद्धान्त का गणित जिसे महर्षि ने मन्वार्थ प्रकाश के नवम समुल्लास में अपनाया है तथा लिखा है कि सृष्टि और प्रलय का ३६००० बार बीतने का जितना समय होता है उतने में एक मुक्त जात्र मुक्ति का आनन्द भोगता है।

इस प्रकार  $360000000 \times 36000 = 3120000000000$  इकतास नौल दस सत्रह और चालीस अरब वर्षों का एक परान्तकाल का समय होता है। सूर्य सिद्धान्त का यह गणित कितना पूर्ण है और महर्षि ने इसे ही मन्वार्थ प्रकाश में दिखाया है, क्या वनमान सूर्य-सिद्धान्त का अप्रमाण कहा जा सकता है। कोई उन्नीस बृद्ध बाला ही ऐसा कहेगा। उस ऊपर दिये गये २१वें श्लोक में और भी स्पष्ट कर दिया है कि वनमान चतुर्गुणों के कृतयुग में, जिसके अन्त में यह सूर्य-सिद्धान्त बना इस वनमान परान्त काल चक्र में आधा अर्थात् १८००० बार सृष्टि और उत्पत्ति का समय व्यतीत हो चुका है और आधे में यह प्रथम ब्राह्मदिन है। इसी दृष्टि से मनुस्मृति के प्रथम अध्याय के ८४ श्लोक में जिसे महर्षि ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उद्धृत किया है, 'मन्वन्तराण्यमस्यानि सिद्धा' है। हिन्दी में वे लिखते हैं कि इसी प्रकार अमस्यानि मन्वन्तरो कि जिनका मर्यादा नहीं हो सकती है अनेक बार सृष्टि हो चुकी है और अनेक बार होगी। मनु भी उदात्तशस्त्र के १८ आचार्यों में है अतः उसने भी सकें कर दिया।

### ७—कुछ प्रश्न

ये नया वाद चलाने वाले इन प्रश्नों का उत्तर तो दें—

(१) ब्राह्मदिन का प्रारम्भ कब से हुआ? छ. चतुर्गुणियों के प्रारम्भ के प्रथम दिन से अथवा आपका माने १ अरब ६६ करोड़ वर्षों के सम्बन्ध के प्रारम्भ के प्रथम दिन से? यदि पहला पक्ष माने तो सृष्टि सम्बन्ध १ अरब ६६ करोड़ वर्ष नहीं होगा। उसमें छ. चतुर्गुणियों का समय और जोड़ना होगा और ब्राह्मदिन के भाग में दोष हाल भी जो आप मानते हैं वह गलत होगा।

यदि आप दूसरा पक्ष मानें तो आपका माना ब्राह्मदिन केवल १४ मन्वन्तरो अर्थात् ६६४ चतुर्गुणियों का ही बनता है और आपका माना सिद्धान्त छ. चतुर्गुणियों की ब्राह्मदिन में खोटा दिखाना है। दूसरा दोष यह भी आवेगा कि छ. चतुर्गुणों आपके माने ब्राह्मदिन में पूर्व अर्थात् प्रलय समय में ही प्रारम्भ हो गई।

(२) यदि आप कहें कि ब्राह्मदिन तो छ. चतुर्गुणियों संहित काल का होता है परन्तु ऐतिहासिक सम्बन्ध केवल १४ मन्वन्तर अर्थात् ६६४ चतुर्गुणियों का ही होता है। उसमें ये छ. चतुर्गुणियाँ नहीं जल्दी। यह पक्ष भी ठीक नहीं है। क्योंकि महर्षि ने ऐसा न तो माना है और न यह किमा शास्त्र में ही सिद्ध है। महर्षि सृष्टि सम्बन्ध और जिसे आप ऐतिहासिक कहते हैं दोनों को एक ही मानते हैं तथा वे अपना गणित ब्राह्मदिन का ही कर रहे हैं। जरा ध्यान से देख—एकमन्वन्तरचतुर्गुणानि ह्यं केवल्प मना भवन्ति। ते च कस्मिन् ब्राह्मदिने (१४) चतुर्दशभक्तभोगा भवन्ति। एकमत्र चतुर्गुणानि ब्राह्मदिनस्य परिमाण भवति। आप इसे सिद्ध कर। बिना नधि के माने यह सम्भव नहीं। महर्षि का स्थान और गणित त्रियाकल्प केवल मन्वन्तर मात्र का है, मन्वार्थ का उसमें जोड़ने से सब समस्या ठीक हो जाता है।

पुनः आप पर प्रश्न होता है कि आप छ. चतुर्गुणों का काल पूर्व बीता मानते हैं वा पश्चात बीतने वाला मानते हैं अथवा मनुष्यों के काल के साथ ही साथ उसका बीतना मानते हैं? यदि प्रथम पक्ष माने तो आपके सम्बन्ध में उसे जोड़ना चाहिए और दोष को सुधारना चाहिए। यदि दूसरा पक्ष मानते हैं तो दोष रहे वर्षों में जोड़ना चाहिए। यदि साथ-साथ बीतता मानते हैं तो सृष्टि सम्बन्ध १ अरब ६६ करोड़ वर्ष आदि बनेगा। आपकी इस प्रकार मारी व्यवस्था गड़बड़ और निराधार है।

### ६—सूर्यसिद्धान्त के अनुसार वर्तमान सृष्टिसम्बन्ध

सूर्यसिद्धान्त के अनुसार सृष्टि सम्बन्ध १ अरब ६७ करोड़ सालों ही बनेगा। १ अरब ६५ वे करोड़ अथवा १ अरब ६६ वे करोड़ सालों नहीं। उसकी गणना इस लेख में रूप कर दी गई है, परन्तु यहाँ पर सृष्टि के लिए पुनः की जाती है। वह इस प्रकार है। यह सूर्यसिद्धान्त जैसा कि इसके म. १५७ इलाक में सिद्ध है, उस बीते हुए कृतयुग के अन्त में बना। उस समय की लेकर उसमें अब तक के समय की जाड़ने पर गणित में फल ठीक मन्था में आ जावेगा। सूर्यसिद्धान्त कहता है —

कल्पादस्माच्च मनव पृथ्व्यन्तीना समन्धय ।

वैवस्वतस्य च मनायुं गानाम् त्रिघना गतः ॥ ११०२

आर्ताविशाखादस्माद्यातमेतत्कृतम् यगम् ।

अतः काल प्रमथ्याय मथ्यामेकत्र पिण्डयेत् । २३

अर्थात् इस वर्तमान कल्प (वर्षादिन) के छ मनु अपनी मान सधियों सहित इस कृतयुग के अन्त तक बीत चके हैं। वैवस्वत मनु जो वर्तमान है उसकी भी २३ चतुर्गुण्य बीत चुकी है ॥ २२ ॥ इस वैवस्वत मनु की २३वीं चतुर्गुणी में भी यह कृतयुग व्यतीत हो गया है। इसके अन्तर्गत का जितना समय हो वह इसमें जोड़ देना चाहिए ॥ २३ ॥

इसके आधार पर गणित करने पर कृतयुग तक का बीता समय इस प्रकार होगा —

६ मनु का काल	—	१८६०३२००००
७ मन्थि का काल	—	१२०६६०००
२३ चतुर्गुणी का काल	—	११६६४००००
कृतयुग का काल	—	१३२८०००

सब का योग १८७०७८४०००

इस गणित करने से पता लगा कि १ अरब ८७ करोड़ ७ लाख ८ हजार वर्षों की सृष्टि सम्बन्ध के कृतयुग के अन्त तक ही हो चुके हैं। इसमें कृतयुग के बाद के इस २८वीं चतुर्गुणी के बीते समय का अब तक का जोड़ना है।

रचना का काल	—	१२६६०००
द्रापर का काल	—	८६६०००
कलियुग का बीता समय	—	५०३६
सब का योग	—	२१६५०३६

इस २१ लाख ६५ हजार ३६ वर्ष के काल का कृतयुग पर्यन्त के काल में जोड़ने पर वर्तमान सम्बन्ध आवेगा—

कल्प के प्रारम्भ से कृतयुग तक	१८७०७८४०००
कृतयुग से अब तक	२१६५०३६
	१८९२४३४०३६

यह १ अरब ८९ वे करोड़ २६ लाख ४६ हजार ३६ सृष्टि का वर्तमान सम्बन्ध है। जब कृतयुग तक ही १ अरब ८७ करोड़ तक समय आ चुका था तो आज तक १ अरब ८९ वे करोड़ तक कैसे आ सकता है।

रही बात सूर्यसिद्धान्त कथित सृष्टि रचना के १७०६६००० वर्ष घटाने के इसका तो यहाँ कोई प्रश्न ही नहीं है। वह काल तो इसमें सम्मिलित है और रहना ही चाहिए। इसके घटाने का प्रक्रिया ज्योतिष के दूसरे गणित कार्यों के लिए है सृष्टि सम्बन्ध के लिए नहीं। वह तो वहाँ पर सृष्टि के लिए है। जब कोई दम्भावेज लिखा जाता है तो यह प्रक्रिया बर्ती जाती है—अमुक ने ५० हजार रुपये दिये जिसके बाधे २५ हजार होते हैं—आदि। यह कथन ठीक ५० हजार की परिपूर्ति और कमीवर्षों की कल्पना को दूर करने के लिए होता है। उसी प्रकार यहाँ पर सूर्यसिद्धान्त में बना दिशा कि कृतयुग पर्यन्त इस सृष्टि के १ अरब ८७ वे करोड़ ७ लाख ८४ हजार वर्ष बीत चुके हैं, जिसमें से १७०६६००० वर्ष चराचर के निकालने पर १ अरब ८५ करोड़ ३७ लाख २ हजार वर्ष होते हैं। इस प्रकार वर्णित काल को कोई गड़बड़ न कर दे, इसके लिए बताया कि उसमें से इतना निकालने पर इतना योग बनता है। वस्तुतः सूर्य सिद्धान्त और हर प्रकार के ज्योतिष सम्बन्धी गणित में सृष्टि का सम्बन्ध यही वर्तमान सम्बन्ध ही है।

उसी प्रसंग में यह भी जानना ठीक ही होगा कि परोपकारिणी सभा अजमेर की स्थापना के समय से उसके सदस्य आदि पक्षों पर

विराजमान और मणि के समय में जो विद्यमान थे ऐसे स्वर्गों की मोहनवान विष्णुनाम पण्डित ने धाय समाज के दस नियमों की अप्रव व्याख्या नामक एक पुस्तिका लिखी थी। यह पुस्तिका मन् १८६८ ईस्वी में सर्व प्रथम प्रकाशित हुई थी। यही इसका प्रथम संस्करण था। इसमें मन्त्रों और उनके द्वारा स्थापित सिद्धांतों के विषय में पण्डित जी ने जिस प्रकार की भक्ति-भावना का प्रदर्शन किया है वह देखने पढ़ने और अनुकरण करने योग्य है। लेखक ने सृष्टि-सम्बन्ध के विषय में जो विचार प्रकट किये हैं वे इस प्रकार हैं—

इस वर्तमान जगत् और वंश की उत्पत्ति की आर्यसमाजस्थ लोग तो मात्र विद्यमान सम्बन्ध १६५३ शालिवाहन शक १८१८ ईसवी १८६९ ई० और दयानन्दाय १४ में १६७८ ई० १८६८ तक अरब मनानवें करोड़ उत्तम लाख शालिवाहन हजार तो भी अष्टानवें सौर्य वर्ष का मानते हैं और उनके मानने का आधार वेद और मनान्त वेदांग ज्योतिष अर्थात् गणित शास्त्र पर है। नीचे लिखे अथर्ववेद के मन्त्रों में ब्राह्म दिन और रात्रि की संख्या स्पष्ट प्रकाशित होती है कि जिसका मन्त्राचार वर्णन सूर्यसिद्धान्त और सिद्धान्त-शिरोमणि आदि में किया गया है

अह्ने च त्वा रात्रय चोभाभ्या परि ददमामि ।

प्रगायेभ्यो जिघ्रमुभ्य एम मे परि रक्षत ॥

एत ते यत् हापनात्त यमे वाणि चत्वारि कणम ।

इन्द्राग्नी विश्वे देवाग्ने नृ संयन्तामहूणीयमानाः ।

अथर्व० काण्ड ८ । प्र० १८ । अनु० १ । म० २० । २१

इस ब्राह्म अष्टोरात्रि अथर्व-कल्प की गणना इस प्रकार से है —  
 क्रतुयुग १०२००००० त्रैता १०६०००० द्वापर ८५४०००० कलि  
 ४३२०००० चतुर्गुणी ८२००००० ५१ अहर्तर चतुर्गुणी ३०६७-  
 २००००० मन्त्रा १०२०००० एक मन्त्रान्तर ३०८४००००० १५४  
 चौदह मन्त्रान्तर ४२१८०००००० कल्पार्थि मन्त्रा १७००००० कल्प  
 अथवा ब्राह्म दिन ४३२०००००००० ब्राह्म रात्रि के ४३२०००००००००  
 महाकल्प अथवा ब्राह्म अष्टोरात्रि ८६४०००००००० अष्ट अथर्व चौमठ  
 कराट वर्ग का होता है। अथ इस पर से समाजों की मानी हुई वर्ष  
 संख्या की गणना नीचे लिखे प्रमाण है —

कल्पार्थि मन्त्रा १७०००००

गत छः मन्त्रान्तर के ३०८४००००० × ६ = १८५०४०००००

वर्तमान मन्त्रान्तर की २० चतुर्गुणी के

४३२००००० × २० ११६९६००००

वर्तमान मन्त्रान्तर की २०वीं चतुर्गुणी के

तीन युग के १७२००००० + ११६९६००० + ८६४००० ३०००००००

शक १८१८, विद्यमान १६५३, ईसवी १८६९ ई० म कलि — ४२६८

अथ तक हुए

१६७०६८०६८८८

भोगने रहे

६६६७०५१००२

महाकल्प अथवा अष्टोरात्रि

८६४००००००००

### प्रमाण सन्दर्भ

१—सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयन् । ऋग्वेद १०।१६०।३

२—वायातय्यतोऽर्थान् श्ववधात्तदाऽननीभ्यः समाम्य यथापूर्वमकल्पयन्

यजुः ६०।८ तथा ऋग्वेद १०।१६०।३

३—इत्य पुत्रयमूकत मभी वेदो का ।

४—या श्रीयधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रिगुण पुन इत्यादि । ऋग्वेद १०।६७।१

तथा उपहृरे च गिरीणाम मगमे च नदीनाम् । धिया विश्रोत्रापन् ॥

यमूर्वेद

५—“पश्य देवस्य काश्यम न ममार न जीर्वति” । अथर्ववेद

इसी प्रकार जब जब परमेश्वर मूर्ति हो रहता है तब तब प्रजा के हित के लिए मूर्ति की छादि में सब विद्याया में देवी का भी उपदेश करता है और जब जब मूर्ति का प्रलय होता है तब तब वेद, उसके ज्ञान में सदा बने रहते हैं। ऋग्वेदादि आयुषमिका प्रदातृ सम्करण पृष्ठ ३०३, यज्ञेन वाचः पदवीयम आयःनामन्त्रविदन्विन् प्रविष्टाम् । ऋग्वेद १०।७१।३, वाचा विरूप निरुपया । ऋग्वेद ८।७५।६।

६—एते अमूर्णमिदं च निर पवित्रमाशय । विश्वान्यभि मोभवा ॥ साम उत्त , ६।२०।१।१ शब्द इति येनान प्रनयान् । वेदान्त । १।३।२।८, भूरिति व्याहरन् समूहममृजन् । तं० २।२।६।२, स भूर्वाग्नि व्याहरन् अन्त-रिक्षममृजन् । तं० २।२।६।२-३, स भूर्वाग्नि व्याहरन् स दिवममृजन् । तं० २।२।६।३, भूरिति वं प्रजापतिर्वागममृजन् यत् भूव इत्यन्तरिक्षम् ॥ शत० २।१।६।११, मन्त्रेणान् स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशास्त्रेभ्य एवावो पृथक् मन्त्राः च निर्दिष्टे ॥ मन्त्र० १।२१, ऋषोणा नामधेयाधि, यादश्च वेदेय दृष्टय । शर्ववेदं प्रसूनाता नान्येव पुनर्दश-स्यजः । आकर भाष्य वेदान्त ।

७—अविष्णु प्रविष्टात् । अ० १०।३१।३

८—देवो अग्नेवादि भार्य भूमिका, वेदोपनि विषय । इतने ही वष वेदों की उत्पत्ति और जगत् की उत्पत्ति से हो गये हैं । अना० संस्करण पृ० २८५; "एतावन्मयेव वर्णाणि वर्तमानकल्पमन्त्रेणेति ॥ पृ० २८३; "यही व्यवस्था सृष्टि और वेदों की उत्पत्ति की ठोक है । पृ० २८८ ।

९—या घोषयो । यादि मन्त्र घोषे पशु पर देव ।

१०—एतद्विभक्तिं सर्वं वयन नष्टम् । जनपदः ॥ देवीवाच मजनयन् देवास्ताम् विद्वत्तया पशवो वदन्ति । अग्नेव ८।१०।११; वाग्वं पशवि प्रत्याकृता-वदन्तिमन्त्रो मयत्तोऽवहृय । याकरोत तस्मादियम् । याकृता वाक् उच्यते । तं० शाखा ६।४।३ तथा देवो अग्नेव १०।१३० सूक्त ।

११—कियता रक्षन्ः प्रविष्टेन मुन कियद्भुविपयवत्राजयेद्य ।

एक यद्वज्रमकृणोऽमहत्तया कियता रक्षन्ः प्रविष्टेन तत्रः अथर्व १०।३।६ यहा महत्त चतुर्वर्गो का वर्णन है । महत्तम्य प्रमाति महत्तम्य प्रतिमा अस्ति ।

१२—जान मे अयनं शायनात् ह्ये यो ग्रीणि वाचार्चि कृण्वः । अथर्व ८।२।२१ यहा सृष्टि की याय वा वाचार्चि वाच अथर्व बलीम कणोड वष बताया गया है, 'वीर्यतमा मामतेयो जन्मवान् वदामे यो । अग्नेव १।१५।६; यहा यह बताया गया है कि चतुर्वर्गो १० कल्पवर्गो की होती है ।

१३—एव मनःसृति १।३३, ३४ । अग्नेवादि भार्यभूमिका, सूर्यमिहान्त १२०

१४—मनःसृति १।३१, ३२

१५—देवो सूर्यमिहान्त १।१६ तथा मनः १।३६, ८० देव ।

१६—वीर्यतमा मामतेयो जन्मवान् वदामे यो । अग्नेव १।१५।६ सूर्य-मिहान्त १।१३ ।

१७—सूर्यमिहान्त १।२६ ।

१८—मनः १।३६ तथा ६६, ७० ।

१९—सूर्यमिहान्त १।१६ ।

२०—सूर्यमिहान्त १।१८ ।

२१—सूर्यमिहान्त १।१८ ।

२२—और सृष्टि का रक्षक नया पुराना प्रति मन्त्र-तर से बदलता जाता है इसीलिए मन्त्र-तर सदा बाधा है ।

॥ इति ॥

## पुस्तक में उद्धृत वेदमन्त्रों की अनुक्रमणिका

अग्नि कवि अ० ८।६६।२० पृ० ४६

अनूनात् यजुः १।५ पृ० ११६

अश्मात् यजुः १०।१३ पृ० १३४

अग्निच० यजुः १०।१४ पृ० १३५

अग्नि० यजुः १०।१५ पृ० १३५

अशुभ० यजुः १०।१६ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।१७ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।१८ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।१९ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२० पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२१ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२२ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२३ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२४ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२५ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२६ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२७ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२८ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।२९ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।३० पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।३१ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।३२ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।३३ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।३४ पृ० १३५

अग्निच० यजुः १०।३५ पृ० १३५





57 4 1 23 40 . 3 7. 228

1944. 1945. 1946. 1947. 1948. 1949. 1950. 1951. 1952. 1953. 1954. 1955. 1956. 1957. 1958. 1959. 1960. 1961. 1962. 1963. 1964. 1965. 1966. 1967. 1968. 1969. 1970. 1971. 1972. 1973. 1974. 1975. 1976. 1977. 1978. 1979. 1980. 1981. 1982. 1983. 1984. 1985. 1986. 1987. 1988. 1989. 1990. 1991. 1992. 1993. 1994. 1995. 1996. 1997. 1998. 1999. 2000. 2001. 2002. 2003. 2004. 2005. 2006. 2007. 2008. 2009. 2010. 2011. 2012. 2013. 2014. 2015. 2016. 2017. 2018. 2019. 2020. 2021. 2022. 2023. 2024. 2025. 2026. 2027. 2028. 2029. 2030. 2031. 2032. 2033. 2034. 2035. 2036. 2037. 2038. 2039. 2040. 2041. 2042. 2043. 2044. 2045. 2046. 2047. 2048. 2049. 2050. 2051. 2052. 2053. 2054. 2055. 2056. 2057. 2058. 2059. 2060. 2061. 2062. 2063. 2064. 2065. 2066. 2067. 2068. 2069. 2070. 2071. 2072. 2073. 2074. 2075. 2076. 2077. 2078. 2079. 2080. 2081. 2082. 2083. 2084. 2085. 2086. 2087. 2088. 2089. 2090. 2091. 2092. 2093. 2094. 2095. 2096. 2097. 2098. 2099. 2100. 2101. 2102. 2103. 2104. 2105. 2106. 2107. 2108. 2109. 2110. 2111. 2112. 2113. 2114. 2115. 2116. 2117. 2118. 2119. 2120. 2121. 2122. 2123. 2124. 2125. 2126. 2127. 2128. 2129. 2130. 2131. 2132. 2133. 2134. 2135. 2136. 2137. 2138. 2139. 2140. 2141. 2142. 2143. 2144. 2145. 2146. 2147. 2148. 2149. 2150. 2151. 2152. 2153. 2154. 2155. 2156. 2157. 2158. 2159. 2160. 2161. 2162. 2163. 2164. 2165. 2166. 2167. 2168. 2169. 2170. 2171. 2172. 2173. 2174. 2175. 2176. 2177. 2178. 2179. 2180. 2181. 2182. 2183. 2184. 2185. 2186. 2187. 2188. 2189. 2190. 2191. 2192. 2193. 2194. 2195. 2196. 2197. 2198. 2199. 2200. 2201. 2202. 2203. 2204. 2205. 2206. 2207. 2208. 2209. 2210. 2211. 2212. 2213. 2214. 2215. 2216. 2217. 2218. 2219. 2220. 2221. 2222. 2223. 2224. 2225. 2226. 2227. 2228. 2229. 2230. 2231. 2232. 2233. 2234. 2235. 2236. 2237. 2238. 2239. 2240. 2241. 2242. 2243. 2244. 2245. 2246. 2247. 2248. 2249. 2250. 2251. 2252. 2253. 2254. 2255. 2256. 2257. 2258. 2259. 2260. 2261. 2262. 2263. 2264. 2265. 2266. 2267. 2268. 2269. 2270. 2271. 2272. 2273. 2274. 2275. 2276. 2277. 2278. 2279. 2280. 2281. 2282. 2283. 2284. 2285. 2286. 2287. 2288. 2289. 2290. 2291. 2292. 2293. 2294. 2295. 2296. 2297. 2298. 2299. 2300. 2301. 2302. 2303. 2304. 2305. 2306. 2307. 2308. 2309. 2310. 2311. 2312. 2313. 2314. 2315. 2316. 2317. 2318. 2319. 2320. 2321. 2322. 2323. 2324. 2325. 2326. 2327. 2328. 2329. 2330. 2331. 2332. 2333. 2334. 2335. 2336. 2337. 2338. 2339. 2340. 2341. 2342. 2343. 2344. 2345. 2346. 2347. 2348. 2349. 2350. 2351. 2352. 2353. 2354. 2355. 2356. 2357. 2358. 2359. 2360. 2361. 2362. 2363. 2364. 2365. 2366. 2367. 2368. 2369. 2370. 2371. 2372. 2373. 2374. 2375. 2376. 2377. 2378. 2379. 2380. 2381. 2382. 2383. 2384. 2385. 2386. 2387. 2388. 2389. 2390. 2391. 2392. 2393. 2394. 2395. 2396. 2397. 2398. 2399. 2400. 2401. 2402. 2403. 2404. 2405. 2406. 2407. 2408. 2409. 2410. 2411. 2412. 2413. 2414. 2415. 2416. 2417. 2418. 2419. 2420. 2421. 2422. 2423. 2424. 2425. 2426. 2427. 2428. 2429. 2430. 2431. 2432. 2433. 2434. 2435. 2436. 2437. 2438. 2439. 2440. 2441. 2442. 2443. 2444. 2445. 2446. 2447. 2448. 2449. 2450. 2451. 2452. 2453. 2454. 2455. 2456. 2457. 2458. 2459. 2460. 2461. 2462. 2463. 2464. 2465. 2466. 2467. 2468. 2469. 2470. 2471. 2472. 2473. 2474. 2475. 2476. 2477. 2478. 2479. 2480. 2481. 2482. 2483. 2484. 2485. 2486. 2487. 2488. 2489. 2490. 2491. 2492. 2493. 2494. 2495. 2496. 2497. 2498. 2499. 2500. 2501. 2502. 2503. 2504. 2505. 2506. 2507. 2508. 2509. 2510. 2511. 2512. 2513. 2514. 2515. 2516. 2517. 2518. 2519. 2520. 2521. 2522. 2523. 2524. 2525. 2526. 2527. 2528. 2529. 2530. 2531. 2532. 2533. 2534. 2535. 2536. 2537. 2538. 2539. 2540. 2541. 2542. 2543. 2544. 2545. 2546. 2547. 2548. 2549. 2550. 2551. 2552. 2553. 2554. 2555. 2556. 2557. 2558. 2559. 2560. 2561. 2562. 2563. 2564. 2565. 2566. 2567. 2568. 2569. 2570. 2571. 2572. 2573. 2574. 2575. 2576. 2577. 2578. 2579. 2580. 2581. 2582. 2583. 2584. 2585. 2586. 2587. 2588. 2589. 2590. 2591. 2592. 2593. 2594. 2595. 2596. 2597. 2598. 2599. 2600. 2601. 2602. 2603. 2604. 2605. 2606. 2607. 2608. 2609. 2610. 2611. 2612. 2613. 2614. 2615. 2616. 2617. 2618. 2619. 2620. 2621. 2622. 2623. 2624. 2625. 26

६५५ ५५५ ५५५ ५५५ ५५५

अथर्व का. ८। प्र १८। अनु १। मन्त्र १। पृ. २४०

संख्या : ४८७०/१४४

मात्र ६ अक्षर, यत् १३ ०६ २० २२

सदस्यता, वृत्त : १९६६ पृ. १३१

महोदय २६/०५/७३

मन्त्र च सं. यत् १२.५ गु. १३४

सूचक में पत्र १२२१ पृ. १३५

मज्झिमा-निकाय, पृष्ठ ३११६ पृ० १४२

मृगं एकाक्षी, यत् २३।४६ पु० १५२

मुद्राबन्धम्, क्र. १०१६०३ पृ. २५१

ज्ञातव्यं यत् ११४ पृ० १२०

पुस्तकोद्धृत अन्य शास्त्र-वचना की अनुक्रमणिका

५०॥१॥४॥ १३

10-17-68

1991 年 7 月 1 日 星期一

सर्वज्ञानं यत्तु सर्वं विदुः सः ।

[illegible]

प्रतिपक्षः प्रमाणः । ३१००

[illegible]

अतः,  $\bar{r} = 92.175$

अथवा १ १ १ ४ ७ २

श्रीगणेशाय नमः । ॥ १ ॥

[illegible]

अ. नं. १६५३, दि. २९.०८.४७

अभिज्ञानः, आ. ३। - २५ - २६ -

अमानुष २६, पृ. १०० ७० ५-६

अ ११११ अ १ १ १ १ १ १

अथवा - १२७० ई. ११११ ई. ८

अ० : प्र० अ० : ११-१८ : ५०

श्री १५ अथवा १६

श्रीगुरुभ्यो नमः ॥ १ ॥

अग्निव. प्र. ॥ १०३॥ १॥ १००

બાંસચણ માં, ૩૦ ૬૦.૦૮ રૂ. ૧૦.૪

अभ्युक्तः राजा गणेशः ।

अथ ते गोः प्र. १।२।- ३१ ७ १८

श्रीगणेशाय नमः । १०८ । १२४१-७५५५

संस्कृत-संज्ञा-सूची

अ. प्र. १०००, मू. १३, १०००, १०००

संस्कृत-भाषायां चतुर्थेऽध्याये

अथवा अथवा अथवा अथवा

आत्मा वं. की. १२४२







## पुस्तक में उद्धृत ग्रन्थों की सूची

|                             |                               |
|-----------------------------|-------------------------------|
| अथर्ववेद संहिता             | तैत्तिरीय ब्राह्मण            |
| अष्टाध्यायी                 | तैत्तिरीयारण्यक               |
| अष्टाध्यायी महाभाष्य        | द्राह्मण्य गृह्यसूत्र         |
| अथर्ववेदीय सर्वांगसूत्र     | निरुक्त और उद्भव भाष्य        |
| अथर्ववेद मायण भाष्य         | न्यायदर्शन                    |
| आपस्तम्ब गृह्यसूत्र         | न्याय वात्स्यायन भाष्य        |
| आपस्तम्ब श्रौत सूत्र        | पारस्कर गृह्यसूत्र            |
| आश्वलायन गृह्यसूत्र         | पंचमहायज्ञविधि                |
| आश्वलायन श्रौतसूत्र         | पाराशर स्मृति                 |
| ऋग्वेद संहिता               | बहदेवता                       |
| ऋग्वेद मायणभाष्य            | मीमांसा दर्शन                 |
| ऋग्वेद संहिता दयानन्द भाष्य | मशक सूत्र                     |
| गणपति ब्राह्मण              | मनुस्मृति                     |
| कठ शास्त्र                  | मुद्रकापनिषद्                 |
| कठोपनिषद्                   | मानव श्रौतसूत्र               |
| काण्वशास्त्र                | बोधायन गृह्यसूत्र             |
| काण्वश्रौतसूत्र             | बोधायन श्रौतसूत्र             |
| कौपीनकी                     | भारद्वाज सूत्र                |
| कौशिक गृह्यसूत्र            | मय ब्राह्मण                   |
| खडिर गृह्यसूत्र             | सैनायणी शास्त्र               |
| गोपथ ब्राह्मण               | यजुर्ब्रह्मसंहिता और यजुर्वेद |
| गोभिल गृह्यसूत्र            | शांख दर्शन एवं व्यास भाष्य    |
| क्रान्दाय्यापनिषद्          | लारवायन श्रौत सूत्र           |
| जैमिनीय ब्राह्मण            | सोमसिद्धि गृह्यसूत्र          |
| ज्यातिष चन्द्रिका           | वाजसनेय ब्राह्मण              |
| ताण्ड्य ब्राह्मण            | वाजसनेय प्रार्तिशाक्य         |
|                             | वितान सूत्र                   |

वैखानस सूत्र  
वैदिक ज्योतिष  
वेदान्तदर्शन  
वैशेषिक दर्शन  
शतपथ ब्राह्मण  
शबरभाष्य  
शब्द कल्पद्रुम  
शास्त्र दीपिका  
सत्याश्रित श्रौतसूत्र

संस्कार विधि  
सौम्य दर्शन  
सांख्यिक श्रौतसूत्र  
सांख्यिक आश्वलायन  
साम संहिता  
सर्वांगसूत्र (कण्वसूत्र इति)  
संन्याय प्रकाश  
सिद्धांतजिरीमणि  
सूर्य सिद्धान्त

## पुस्तक में उद्धृत अंग्रेजी ग्रन्थों की सूची

Aryasamaj Its Cult And Creed : A V. Shastri  
Gems of Aryan Wisdom  
History Of Ancient Sanskrit Literature : Max Müller.  
Oriental Philosophy : Francis Grant.  
Religion of the Veda : M. Bloomfield  
S. B. I., Vol. XLVI Olden burge  
Sciences In the Vedas : A V. Shastri  
Vedic Terminology, G. D. Vidyarthi  
Vedic Age : B V. B. Bombay

### कुछ पारिभाषिक पदों का स्पष्टीकरण

अधमर्षण - स्वयं द्वारा किसी व्यक्ति के प्रति अपने विचार प्रकट करना और  
 दूसरों से उसकी चर्चा कराना या प्रचार करना ।

अन्तर—जहाँ तक मैं जानता हूँ, मैंने अभी तक किसी भी व्यक्ति को नहीं देखा है।

[illegible]

माहर्षि जन पुत्रः सन् हि शान्तं म रतं विद्यः ज्ञानं वाचा यत प्रपन्नः  
भगवत्पुत्रः सन्मानाः ॥

उत्तरमीमांसा— यज्ञ इति इत्यादिनां नाम उत्तरमीमांसा है ।

[illegible]

श्रुतिगः यज्ञः च यज्ञान्तरात्तु यज्ञो यज्ञो यज्ञः ।

कल्प—वेद के दृष्ट अंगों में कल्प का स्थान है। इसमें प्रमाण के मा-  
मलों का व्यवसाय व्यवस्था करने की विद्या वर्णित है। यह वर्ण प्रम-  
थम, उत्तरीनाथ, प्रथम अनाम, मद्र अनाम और दक्षिणोत्तर की  
अतीतिवृत्त प्रमाणों का ज्ञान देता है।

कन्यादान - वर की माता या पिता के द्वारा दिये गए वधूत्वन की ग्रहण  
करना है। यह इस प्रकार की कन्यादान कहा जाता है। प्रायश्चित्त  
इसी के अनुसार होता है। कन्या - आदान अर्थात् कन्या स्वीकार  
वा ग्रहण करना कन्यादान है। कन्या - दान अर्थात् कन्या का दान  
नही होता है। माता-पिता कन्या का दान नहीं करते। वर की  
वधू की उमर के गुणकमानुसार बतने की स्वीकृति देने है परन्तु

अपना अधिकार ले किसी वं प्रदान नहीं करता है। यह तो माना-गिया की बात है। यही हो सकती है।

गान्ध्या जिन सेना में म. १९४५, १९४६ में आर्य समाजियों के साथ मिलकर  
कड़ी जुताई की।

दशमनाम—यस वरुण, जो भी मेरे शत्रु, दुश्मन, या दुःखदायी  
 को प्राप्त हो, मैं उसे तब तक नहीं छोड़ूँगा जब तक कि वह  
 मुझे क्षमा न करे।

दशगोपनीयम् असाध्यता का नाम है। यह एक विशेष प्रकार का वायु है।  
यह है जो कि गुणवत्ता के साथ ही साथ वायु का एक विशेष रूप है।  
यह है जो कि प्रकृति के द्वारा बनाया गया है।  
यह है जो कि प्रकृति के द्वारा बनाया गया है।

दाखतगी—रुग्णां दशा मन्त्रो गी पायां हे , दाखत मः । यत्तु यत्तु हे । यत्तु  
दाखत मः यत्तु यत्तु हे । यत्तु यत्तु हे ।

देखा जा सकता है कि भा. मा. की रचना, जो कि १९३० के दशक में की गई थी, उसमें भी बहुत सी बातें हैं जो कि आज भी प्रासंगिक हैं।

नमो भगवते वासुदेवाय ।  
 भगवत्पदं ध्यात्वा भक्त्या नमस्कृत्य ।  
 भगवत्पदं ध्यात्वा भक्त्या नमस्कृत्य ।  
 भगवत्पदं ध्यात्वा भक्त्या नमस्कृत्य ।

नागशर्मा—नागशर्मा एक मन्त्रा की पुत्री है जिसके माता-पिता प्राद्वि अरबों  
पूज का वर्णन मिलता है। पूज के माता-पिता शर्मा करत है अथवा  
पूज की नागशर्मा कहा जाता है।

न्युट्रल—पंद्रह मात्रा युक्त आकार को न्युट्रल कहा जाता है।

पुराण सृष्टि विद्या को वैदिक भाषा में पुराण कहा जाता है। भागवतादि का नहीं। अथर्व ११।७।२४ में 'पुराण यजत्रा मह' वाक्य में पुराण पद इसी अर्थ को देता ? ।

पूर्वमीमांसा — जैमिनिवृत्त मीमांसा शास्त्र का पूर्वमीमांसा कहा जाता है ।

बाह्य—बाह्य का अर्थ यह विज्ञान है जिसमें यज्ञ के रूप की समृद्धि, उसके उत्प्रेष की सिद्धि और उसकी प्रशस्ति द्वारा लोका में उसके प्रति भेदा का स्थापन होता है। अथवाद प्रायः इसी उत्प्रेष की दूरा करत है।

यज्ञ—यज्ञ वह विज्ञान कर्म है जिसमें ऋषिभिः यज्ञमान द्वारा धृत सामग्री आदि का प्रयोग यज्ञ के दत्तता के लिए अग्नि में किया जाता है और हृदय-तमस बोलकर स्थापन किया जाता है।

यज्ञमान—यज्ञधारण करके यज्ञ करने वाले पुरुष या स्त्री को यज्ञमान कहा जाता है।

यज्ञ—कर्मकाण्ड की यज्ञ कहा जाता है। अध्याय १.७.७.२८ में "पुराण यजुषा सह" वाक्य में यज्ञ, यज्ञही अभिप्रेत है।

लौकिकी—वेदान्तिरिक्त वाक् लौकिकी वाक् है।

विनियोग—जिसी मन्त्र का विनियोग किया के साथ सम्बन्ध नियुक्त करना जो अर्थ अदि की दृष्टि में समत हो वह विनियोग कहा जाता है। जैसे समिधानिमन्त्र आदि मन्त्र में समिधा जाने। यह विनियोग है।

वैदिकी वाक्—मण्डिता में प्रयुक्त मन्त्र वैदिकी वाक् है।

अव्ययवृत्त—पथक की गई वस्तु को अव्ययवृत्त कहते हैं। न पथक की गई को अव्ययवृत्त कहते हैं। जैसे तिल में तेल बनान में तेल अव्ययवृत्त है और अब तिल में है तब अव्ययवृत्त है।

समिधा—यज्ञ में प्रयुक्त की जान वाली लकड़ी का समिधा कहा जाता है।

चतुष्पदी—चारों पदा का सम्मन्त्र स्थापना है।

परात-काल—२६००० वर्ष मण्डित की उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उसका २१ नील १० सूर्य ६० अरब वर्ष के काल का नाम परात-काल है। यही ब्रह्मा का सी वर्ष है।

ब्रह्म दिन—चार अरब १० करोड़ वर्षों अर्थात् जितने समय यह सृष्टि विद्यमान रहता है उसका नाम ब्रह्म दिन है।

ब्रह्म रात्रि—प्रलय का चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों का समय ब्रह्म रात्रि है।

मन्वन्तर—३१ चतुर्गवता के काल का नाम मन्वन्तर है।

सधि—एक वृत्तवर्ग के जितना काल जो २४ मन्वन्तरा के आगे पीछे बीतता है वह सधि है और ये १४ मन्वन्तरा की १५ सधियां होती हैं।

## लेखक द्वारा लिखित अन्य ग्रन्थ

१. कर्मसंश्लेषा
२. वैदिक-व्याप्ति
३. शिखरतरंगिणी
४. दयानन्द मिश्रान्त प्रकाश
५. आर्यसिद्धान्त सागर
६. सामवेद भाष्य (संपूर्ण)
७. वैदिक-इतिहास-विमर्श
८. वैदिक विज्ञान-विमर्श
९. वैदिक युग और आदि मानव
१०. तत्त्वार्थदर्श
११. छ. दर्शना का सम्बन्ध
१२. दर्शन-तन्त्र-विमर्श
१३. सृष्टि का साधन ज्ञान कर्म-समुच्चय
१४. मरण का तन्त्र-निधि
१५. आर्य समाज स्थापनानिधि
१६. ब्रह्माचार-यज्ञ ही सकता है
१७. श्री-मानजी भाई की जीवनी
१८. पाण दर्शन-पञ्चभाष्य का अनुवाद (अमूर्तित)
१९. अन्तर-रश्मि आर्य सम्मन्त्र मारिजस के वेद सम्मन्त्र का अध्ययन भाषण
२०. आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के अवसर पर दृष्ट, वेद सम्मन्त्र का व्याख्या-प्रकाश भाषण और विविध विषयों पर लेख।
२१. कल्पदशास्य दर्शन मण्डल
२२. काल
२३. साधुसम्प्रदायान्वेषणम्
२४. वैदिक वाग्बिज्ञानम्
२५. सदाचार

## English

26. The Arya Samaj Its Cult And creed.
27. Sciences In The Vedas.
28. Sanskarvidhi of Swami Dayananda
29. Gems Of Aryan Wisdom
30. The Commentary On Alharva Veda (Complete 20 Kandas.) manuscript in Sarvodashik Sabha, New Delhi-2
31. The Vedic Marriage Ceremony.
32. Vedic Sandhya.
33. Havan Mantras.
34. The Vedic Caste system.
35. The Canon of Vedic Interpretation Adopted by Swami Dayananda.
36. Some Prints of Vedic political Philosophy.
37. The Miscellanea of Vedic Religion and Philosophy (Un published)
38. Unity At home and in the World.
39. Ban on Cow-slaughtering I part
40. " " " II "
41. Philosophy Of Swami Dayananda.
42. Morality is the Ultimate End Of Religion.

## लेखक के साथ जिनकी हार्दिक सहानुभूति रही है ।

|                              |       |   |                          |   |
|------------------------------|-------|---|--------------------------|---|
| श्री दीवान चन्द जी साहनी     | बम्बई | ॥ | रामरत्नपाल जी अग्रवाल    | ॥ |
| ॥ युधिष्ठिर जी पोषल          | ॥     | ॥ | चतुर्भुज साहू            | ॥ |
| ॥ के. एल आनन्द एण्ड संस      | ॥     | ॥ | रूपलाल जी मेहरा          | ॥ |
| ॥ बालकृष्ण जी. एम. गुप्ता    | ॥     | ॥ | रमेश भारद्वाज            | ॥ |
| ॥ जे. टी दिवेवा              | ॥     | ॥ | जयदेव सिंग जी            | ॥ |
| ॥ मणि भाई के पटेल            | ॥     | ॥ | अश्वनीदय कन्सट्रक्शन     | ॥ |
| ॥ विजय कुमार जी कपूर         | ॥     | ॥ | (मनवानाजी)               | ॥ |
| ॥ नरेन्द्र भाई शिवलाल गुप्ता | ॥     | ॥ | आर्यसमाज बोरीयली         | ॥ |
| ॥ शान्ती स्वकप जी गुप्ता     | ॥     | ॥ | आर्यसमाज नातिक           | ॥ |
| ॥ सी. गुप्ता                 | ॥     | ॥ | आर्य समाज भयूर           | ॥ |
| ॥ मुखबर्धन जी शर्मा          | ॥     | ॥ | आर्य समाज देवलाजी कैंप   | ॥ |
| ॥ ब्रह्मपत जी (पाल साहू)     | ॥     | ॥ | नटवरलाल धामजी            | ॥ |
| ॥ कपूर प्रोपेसिंग हाउस       | ॥     | ॥ | जयदेव जी आर्य            | ॥ |
| ॥ ओम प्रकाश जी अरोरा         | ॥     | ॥ | रमणदास अधिवाणी           | ॥ |
| ॥ धीमती नीलम जेठी            | ॥     | ॥ | मेहरचन्द गुप्त           | ॥ |
| ॥ केसरदेव लालजी भाई          | ॥     | ॥ | महवि दयानन्द महाविद्यालय | ॥ |
| मिहरी                        | ॥     | ॥ | आर्यसमाज घाटकोपर         | ॥ |
| श्री धर्मेश जी कपूर          | ॥     | ॥ | पृथ्वी पिकचर्स           | ॥ |
| ॥ केवलकृष्ण मेहरा            | ॥     | ॥ | कान्तीलाल पैन्टर         | ॥ |
| ॥ मेघराज सेठी                | ॥     | ॥ | देवीसिंह                 | ॥ |
| ॥ गोपाल दास जी               | ॥     | ॥ | विजय स्टील               | ॥ |
| ॥ सुरेन्द्र जी गोदल          | ॥     | ॥ | चेतन स्टील               | ॥ |
| ॥ बलबोर जी गोयल              | ॥     | ॥ | आर्य समाज टाउनकोट        | ॥ |
| ॥ रामप्रसाद अग्रवाल          | ॥     | ॥ | आर्य रबीसमाज काकड़वाड़ी  | ॥ |
| ॥ राधेलाल जी अग्रवाल         | ॥     | ॥ | धीमती राधा देवी          | ॥ |
| ॥ बी. पी. गुप्त (मेहराना)    | ॥     | ॥ | गंगादा देवी              | ॥ |
| ॥ आर्य समाज सात रस्ता        | ॥     | ॥ | प्रभादेवी आर्य           | ॥ |



|                             |                               |
|-----------------------------|-------------------------------|
| श्री गण्डाराम जी मेहता      | ॥ एस. बी. चड्ढा               |
| श्रीमती ईश्वरी देवी प्रभाकर | ॥ हरीश भाई जेठा भाई           |
| ॥ पुष्पा खन्ना              | ॥ मोहन लाल शाम जी राठोर       |
| ॥ कृतप्रिया आर्य            | श्रीमती जयाबेन मोहन लाल राठोर |
| श्री के. एल. सुरवीर         | श्री चाकू भाई मूलजी भाई राठोर |
| ॥ विद्याभूषण केशव जी        | श्रीमती रम्भाबेन चाकू भाई     |
| ॥ आश्विन दाबला              | श्री नारनदास हरजी भाई         |
| ॥ शंकरलाल चौधरी             | ॥ आर. बी. बजारा               |
| ॥ श्रीराम अग्रवाल           | ॥ अर्जुन सुरेश कुमार          |
| ॥ बालकृष्ण शास्त्री         | ॥ लालता प्रसाद पाठक           |
| ॥ कृष्ण लाल अरोरा           | ॥ सखा राम                     |
| ॥ पूरणकुमार त्रिवेदी        | ॥ शिवराम हरी जगताप            |
| ॥ शोभाकान्त मिश्र           | ॥ नटवरलाल भावसार              |
| ॥ शिल्प शिल्क मिल           | ॥ आर्य समाज बिनय नगर          |
| ॥ देवीकान्त शास्त्री        | ॥ आर्य समाज भड़ौच             |
| ॥ विष्णु पण्ड्या            | ॥ चम्पक लाल मिस्त्री          |
| ॥ जनश्याम दास               | ॥ नन्दलाल भी. त्रिवेदी        |
| ॥ राम निरंजन अग्रवाल        | ॥ गोकुलदास बलभदास संघवी       |
| श्रीमती जगतपन देवी          | ॥ शुक्ला एण्ड असोसियेट्स      |
| श्री यशजी आहूजा बांद्रा     | ॥ बर्मा ब्रदर्स               |
| ॥ रामरतन जी कीचर            | ॥ विपिन भाई भाईलाल ठक्कर      |
| ॥ अमरनाथ जी कपूर            | ॥ भूषण धर्मपाल                |
| ॥ महाजन सिल्क मिल           | ॥ आर्य समाज फोर्ट             |
| ॥ हरीश टेक्सटाइल            | श्रीमती शान्ति देवी करसन दास  |
| ॥ हरीचन्द जी पाल            | श्री भोरुका चरिटेबल ट्रस्ट    |
| ॥ आर. के. चोपड़ा            | ॥ के. पी. मोदी                |
| ॥ महेशचन्द एन. शाह          | ॥ आर्यसमाज जामनगर             |
| ॥ अटलास प्रिण्टिंग प्रेस    | ॥ भगवती प्रसाद जी गुप्त       |
| ॥ जगदीश चन्द्र दुआ          | ॥ आर्य समाज कारेली बाग बड़ोदा |
| ॥ छोटलाल केशव लाल           | ॥ अइनेल भाई थाफ               |
| ॥ जसवन्त लाल खाटलावाला      | ॥ जमनादास जी आर्य             |
| ॥ यश जी चोपड़ा              | ॥ रोशन लाल जी हबलानी          |

|                               |       |                               |
|-------------------------------|-------|-------------------------------|
| श्री बत्ती मदान               | बम्बई | ॥ कालाभाई करसन दास नन्द-      |
| ॥ भीखू भाई जोशी               | ॥     | वाणा ॥                        |
| श्रीमती रुक्मिणी देवी आर्य    | ॥     | ॥ एल. के. नन्दवाणा ॥          |
| श्री मणीलाल मोती लाल          | ॥     | ॥ आर्य समाज ॥                 |
| ॥ अम्बा लाल पटेल              | ॥     | ॥ आर्यसमाज अहमदाबाद ॥         |
| ॥ वाई. एन. वर्मा              | ॥     | ॥ बी. आर. पटेल ॥              |
| ॥ आर. डी. चौहान               | ॥     | ॥ परशुराम दुधाल ॥             |
| ॥ डी. बी. मोरे                | ॥     | ॥ आर्यसमाज बान्द्रा ॥         |
| ॥ आर्यसमाज सान्ताक्रूज        | ॥     | श्रीमती अमृता बहेन ॥          |
| ॥ गुलजारी लाल आर्य            | ॥     | ॥ शीला बहेन गुलाटी ॥          |
| ॥ जगदीश चन्द्र मेहरा          | ॥     | श्री वजरंग लाल गोयल ॥         |
| ॥ एलकन मिल्क मिल              | ॥     | ॥ श्रीराम नारायण दास ॥        |
| ॥ गोविंदकुमार दयाल जी         | ॥     | ॥ आर्यसमाज गोंरे गांव ॥       |
| चन्दन                         | ॥     | ॥ नारायणदास जुनेजा ॥          |
| ॥ आर्यसमाज मोटर स्टेड         | ॥     | ॥ ओमप्रकाश जी आर्य ॥          |
| अमरावती                       | ॥     | ॥ श्री नवीनचन्द्र पाल ॥       |
| ॥ आर्यन इलेक्ट्रिकल्स         | ॥     | ॥ प्रकाश चन्द्र मुन्ना ॥      |
| ॥ के. मोतीराम वकील            | ॥     | श्रीमती लीलावती जाधवभाई       |
| ॥ चन्द्रकान्त आर. पटेल        | ॥     | परमार ॥                       |
| ॥ सी. एफ. मेहता               | ॥     | ॥ प्रमिलाबेन शाह ॥            |
| ॥ शान्ताराम जी तारकर          | बम्बई | ॥ एम. डी. कन्धारिया ॥         |
| ॥ आर्य समाज सूरत              | ॥     | श्री किशनचन्द परशुराम ॥       |
| ॥ श्री मंगलसेन जी चोपड़ा      | ॥     | ॥ ओमप्रकाश कक्कड़ ॥           |
| श्रीमती माताजी स्नेहर्लालाबेन | ॥     | ॥ जयचन्द भूपचन्द जी ॥         |
| ठक्कर                         | ॥     | ॥ रघुनाथ वर्मा ॥              |
| श्री हरदयाल जी रामसहाय        | ॥     | ॥ गुलाबदास प्रवासी ॥          |
| ॥ दयाशंकर सिंह                | ॥     | ॥ नगीनदास शेठ ॥               |
| ॥ रमेश टोरेनेजा               | ॥     | ॥ प्रतिमा प्रताप राय चौधरी ॥  |
| ॥ नरेन्द्र बी. मढीवाला        | ॥     | ॥ जगदीश चन्द शिवाजी पार्क ॥   |
| ॥ महेंद्र जी कपूर             | ॥     | श्रीमती प्रेमदेवी नागपाल ॥    |
| ॥ अरोरा ब्रदर्स               | ॥     | श्री पद्माकर अहले ॥           |
| ॥ जगदीशचन्द्र जी प्रवासी      | ॥     | ॥ नाथू भाई प्रेमजी मिस्त्री ॥ |

|                        |   |   |                    |   |
|------------------------|---|---|--------------------|---|
| श्रीमता कलावती जी      | " | " | सुरेशजी टण्डन      | " |
| श्री रोजन लाल जी चड्ढा | " | " | रामचन्द्र जी नन्दा | " |
| " प्रेमनाथ जी शर्मा    | " | " | सन्तराम जी अग्रवाल | " |
| " डा. दिवाकर गुप्ता    | " | " | श्रेम अरोरा        | " |
| " आनन्दकुमार तिवारी    | " | " | लाल सिंह जी        | " |



